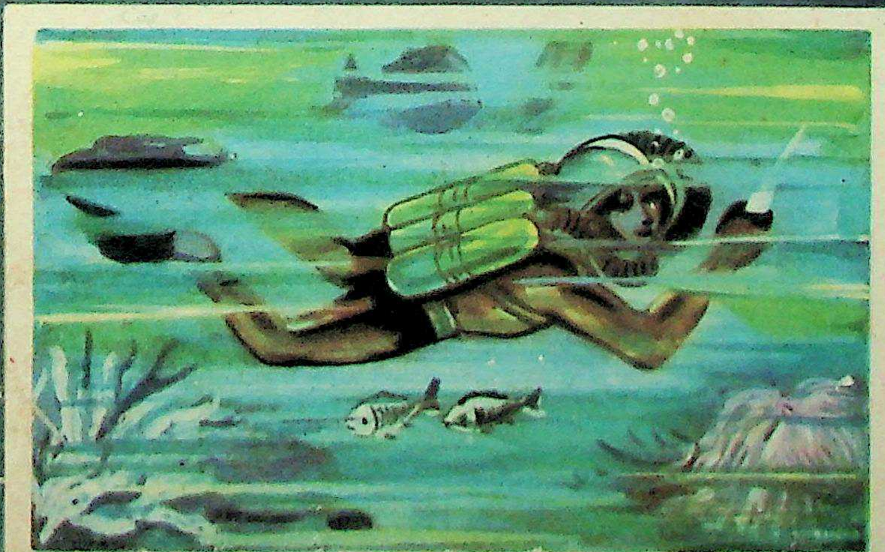
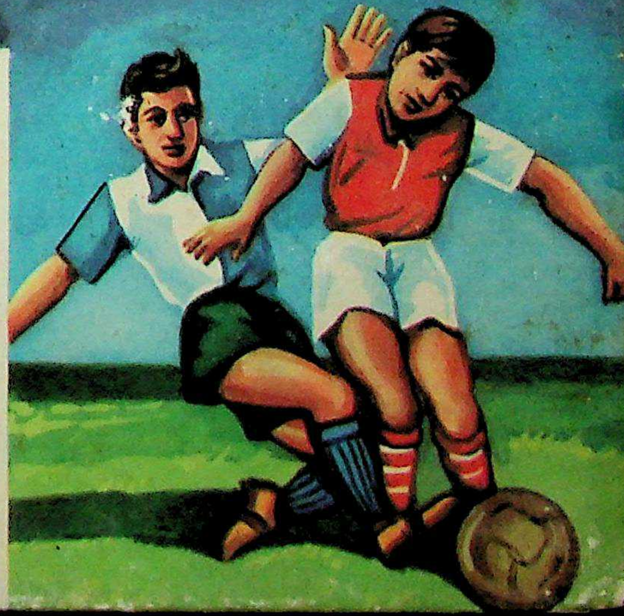
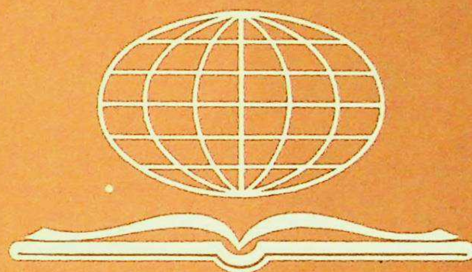
सचित्र विश्वकोश

3 मनुष्य * स्वास्थ्य * खेलकूद







3

सचित्र विश्वकोश

ज्ञान-विज्ञान की प्रामाणिक, तथ्यपूर्ण और नवीनतम जानकारी तथा
दो हज़ार से अधिक रंगीन और दुर्लभ चित्रों से भरपूर दस सजिल्द
और अपने-आपमें सम्पूर्ण खण्डों का अपने ढंग का अनूठा विश्वकोश

विशेषज्ञों द्वारा रचित तथा विश्व की अनेक भाषाओं में
अनूदित 'गोल्डन बुक इन्साइक्लोपीडिया' का हिन्दी संस्करण

मनुष्य * स्वास्थ्य * खेलकूद


राजपाल एण्ड सन्ज़
कश्मीरी गेट, दिल्ली-6

3

सचित्र विश्वकोश

ज्ञान-विज्ञान की प्रामाणिक, तथ्यपूर्ण और नवीनतम जानकारी तथा
दो हज़ार से अधिक रंगीन और दुर्लभ चित्रों से भरपूर दस सजिल्द
और अपने-आपमें सम्पूर्ण खण्डों का अपने ढंग का अनूठा विश्वकोश

विशेषज्ञों द्वारा रचित तथा विश्व की अनेक भाषाओं में
अनूदित 'गोल्डन बुक इन्साइक्लोपीडिया' का हिन्दी संस्करण

मनुष्य * स्वास्थ्य * खेलकूद



राजपाल एण्ड सन्ज़
कश्मीरी गेट, दिल्ली-6

भूमिका

विश्वकोश की उपयोगिता से सभी परिचित हैं। विश्वकोश के द्वारा आप किसी भी विषय के सम्बन्ध में प्रामाणिक और नवीनतम जानकारी आसानी से पा सकते हैं। आज के युग में विश्वकोश एक महत्त्वपूर्ण और बहुत उपयोगी संदर्भ पुस्तक (रेफरेन्स बुक) है जो विद्यार्थियों, विद्वानों और जनसाधारण सभी के लिए मूल्यवान है।

मुझे प्रसन्नता है कि 'गोल्डन बुक एनसाइक्लोपीडिया' पर आधारित यह 'सचित्र विश्वकोश' दस भागों में प्रकाशित हो रहा है। प्रत्येक खण्ड विषयानुसार है और अपने में पूर्ण है। 'गोल्डन बुक एनसाइक्लोपीडिया' अपनी प्रामाणिकता के लिए संसार-भर में प्रसिद्ध है और अनेक देशों में इसके अनुवाद प्रकाशित हो चुके हैं। हिन्दी में इस उपयोगी विश्वकोश का प्रकाशन बहुत ही सुन्दर रूप में हुआ है जिसके लिए प्रकाशक बधाई के पात्र हैं। प्रत्येक पृष्ठ पर चार-रंगे अनेक चित्र हैं और सबसे अच्छी बात यह है कि मात्र अनुवाद न होकर इसमें आवश्यकतानुसार भारतीयकरण भी किया गया है। मेरी सम्मति में ऐसा करने से इसकी उपयोगिता हिन्दी के पाठकों के लिए और भी बढ़ गई है। यह महत्त्वपूर्ण प्रकाशन, एक तरह से, शिक्षा के क्षेत्र में दो मित्र देशों के सहयोग का प्रतीक है।

एक अन्य विशेषता यह भी है कि इसमें भारत सरकार द्वारा निर्धारित टैक्नीकल शब्दावली का उपयोग किया गया है। मुझे आशा है, हिन्दी के विद्यार्थी और पाठक इससे पूरा लाभ उठाएंगे।

नई दिल्ली
अप्रैल, 1967

प्रेम किरपाल
शिक्षा-सचिव, भारत सरकार

प्रकाशकीय

'सचित्र विश्वकोश' की तैयारी में हमें अनेक भारतीय विद्वानों और वैज्ञानिकों का सहयोग मिला है। हम उन सबके प्रति आभार प्रकट करते हैं, विशेषत: श्री श्रीकान्त व्यास के प्रति, जिनकी देख-रेख में यह हिन्दी संस्करण संपादित हुआ है। आवरण-चित्र श्री आर० के० बोस ने बनाए हैं।

—प्रकाशक

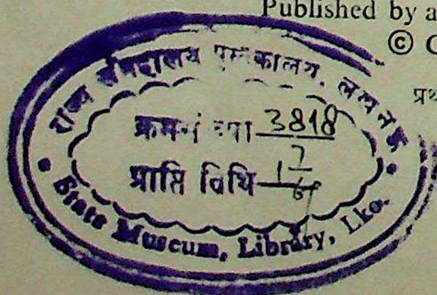
मूल्य : सात रुपये

THE GOLDEN BOOK ENCYCLOPAEDIA
by Bertha Morris Parker

Published by arrangement with Golden Press, Inc. New York.

प्रथम संस्करण © 1967, राजपाल एण्ड सन्ज़

शुचि प्राइवेट लिमिटेड नई दिल्ली में मुद्रित



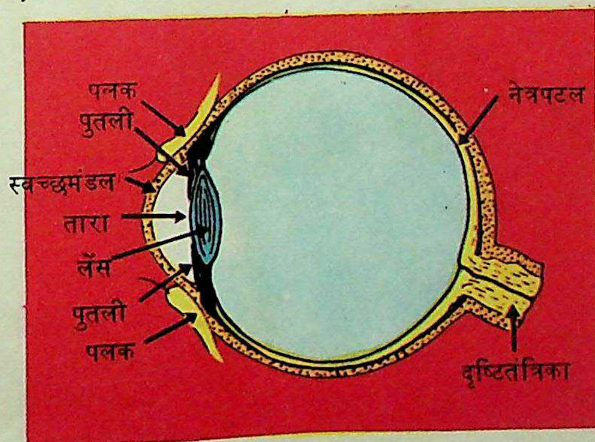
सचित्र विश्वकोश

खण्ड 3

मनुष्य : विकास, शरीर-रचना स्वास्थ्य, खेलकूद

आंख (EYE) : चित्र में बताया गया है कि मनुष्य की आंख की बनावट किस प्रकार की है। प्रकाश आंख के तारे से होकर अंदर आता है। आंख के रंगीन हिस्से के केन्द्र में स्थित काले घेरे को तारा (Pupil) कहते हैं। तारे के ठीक पीछे लेंस होता है। जब कोई चीज़ आंख के सामने आती है तो लेंस नेत्रगोलक के पीछे स्थित दृष्टिपटल (Retina) पर उसकी उल्टी तस्वीर उतार देता है। दृष्टिपटल से मस्तिष्क तक एक दृष्टि-तंत्रिका (Optic Nerve) चली गई है। यह दृष्टि-तंत्रिका हमारे मस्तिष्क को सूचित करती है, और वह उस वस्तु की सीधी तस्वीर को ग्रहण कर लेता है, अर्थात 'देख' लेता है।

आंख का रंगीन भाग या पुतली (Iris) पेशियों का एक ऐसा पर्दा है जो तारे को फैलाता और सिकोड़ता है। तीव्र



प्रकाश में तारा सिकुड़कर छोटा हो जाता है। मद प्रकाश में यह फैलकर बड़ा हो जाता है ताकि आंख में अधिक प्रकाश आ सके।

स्वच्छमंडल (Cornea) नेत्रगोलक की रक्षा करनेवाला पारदर्शी आवरण है। इसका सदैव तर रहना जरूरी है। कुछ क्षणों के बाद नियमित रूप से पलकों के गिरने से अश्रु-ग्रंथियों से एक प्रकार का द्रव स्वच्छमंडल में गिरता रहता है जिससे यह कभी सूखने नहीं पाता। पलकों के कारण धूल भी आंख में नहीं घुस पाती।

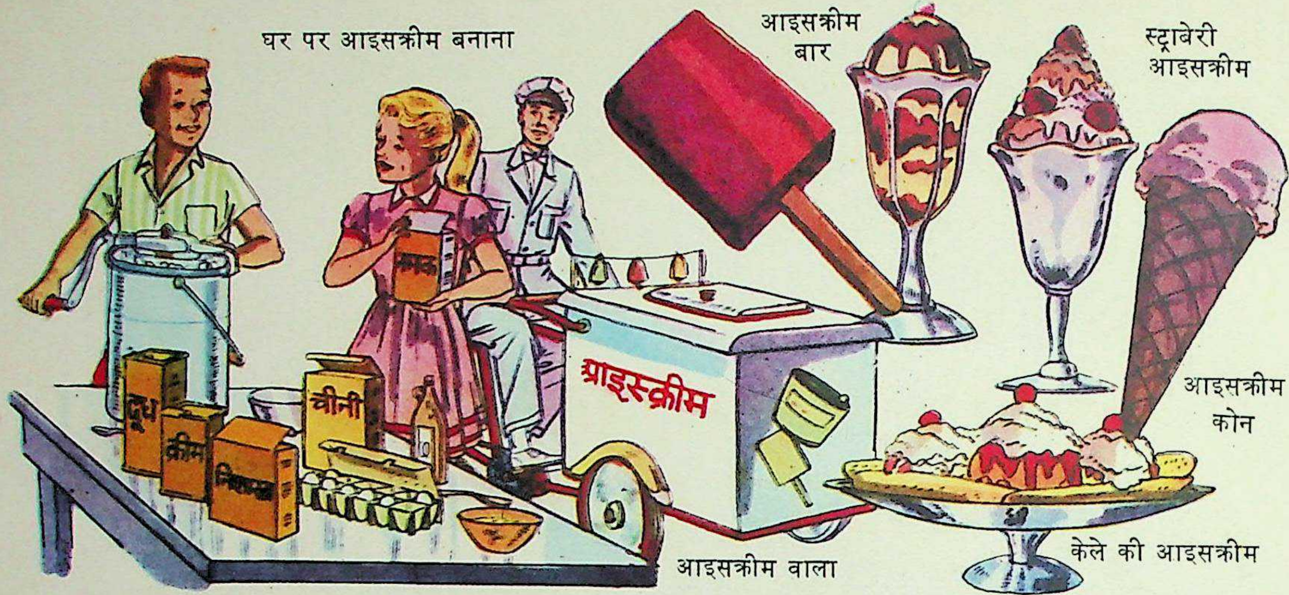
बहुत से जीवों की आंखें हमारी जैसी ही हैं। लेकिन, कुछ जीवों की आंखों की बनावट बहुत सादा है। कुछ जीवों के आंखें हैं ही नहीं। सबसे सादा आंखें संवेदनशील कोशिकाओं के रूप में होती हैं, जो केवल प्रकाश और अंधकार का भेद बता सकती हैं।

ड्रैगनफ्लाई की आंखें सबसे अजीब हैं। इस पतंगे की मिश्रित आंखें अनेक छोटी आंखों से मिलकर बनी हैं। लगभग सभी कीड़ों की आंखें मिश्रित होती हैं, लेकिन ड्रैगनफ्लाई के साथ विचित्रता यह है कि इसकी एक मिश्रित आंख में लगभग 30,000 छोटी-छोटी आंखें होती हैं।

आइसक्रीम (ICECREAM) : बर्फ से जमी हुई मिठाइयों का चलन नया नहीं है। 600 वर्ष से अधिक हुए जब प्रसिद्ध यात्री मार्कोपोलो पूर्वी देशों की अपनी यात्रा से फलों के रस से बनी बर्फ का नुस्खा यूरोप ले गया था। लेकिन आइसक्रीम का चलन बहुत नया है। ब्रिटेन के पुराने कागज़ात में सबसे पहले 1686 में इसके बनने का हवाला मिलता है। उस ज़माने में एक तश्तरी आइसक्रीम का दाम दस रुपये से अधिक था।

पहले आइसक्रीम केवल घरों में ही बनाई जाती थी। जिन-जिन चीज़ों को जमाना होता था उन्हें मिलाकर धातु के एक सांचे में भरकर, लकड़ी की बाल्टी में रख दिया जाता था। बाल्टी के चारों ओर बर्फ के टुकड़े भर दिए जाते थे। एक बेलन के सहारे बाल्टी के भीतर के बर्तन को घुमाते रहते थे, ताकि भीतर की चीज़ हिलती रहे और वह समान रूप से जम सके।

घरों में अब भी आइसक्रीम बनाई जाती है। रेफ्रिजरेटर में रखकर भी तैयार की जाती है। लेकिन अधि-



कांश आइसक्रीम बड़ी-बड़ी फैक्टरियों में बनाई जाती है। बड़ी-बड़ी लारियों में भरकर दूध और मलाई फैक्टरियों में पहुंचाई जाती है। इसी तरह चीनी और उसमें मिलाने की दूसरी चीज़ें भी पहुंचाई जाती हैं।

फल और मेवों को छोड़कर, पहले हर चीज़ को मिला लिया जाता है। इसे बड़े-बड़े हौज़ों में रखकर निर्जीवीकृत (पास्चुराइज़) कर लेते हैं ताकि कहीं किसी रोग के कीटाणु इसमें रह न जाएं। फिर यह मिश्रण ऐसे हौज़ों में जाता है जो इसको एक-रूप कर देते हैं। अब यह जमाने के योग्य हो जाता है। जब यह मिश्रण कुछ जम जाता है तो फल या मेवे आदि जो कुछ डालना होता है इसमें मिला देते हैं। जमी हुई आइसक्रीम एक बहुत ही ठंडे स्थान में कुछ घण्टों के लिए रख दी जाती है जहां यह पूरी तरह जमकर सख्त हो जाती है।

आइसक्रीम आम तौर से सादी ही खाई जाती है। पर इसका बहुत बड़ा भाग आइसक्रीम कोन, मिल्कशेक, आइसक्रीम सोडा, आइसक्रीम बार आदि की शक्ल में भी खपता है।

आइस स्केटिंग (ICE SKATING) : ठंडे मुल्कों में सर्दियों में बच्चे बर्फ पर स्केटिंग करने के लिए मचलने लगते हैं। स्केटिंग के खेल सैकड़ों सालों से चले आ रहे हैं। आज से कोई एक हज़ार साल पहले नार्वे, डेन्मार्क और स्वीडन में लोग हड्डियों के स्केट पहनकर बर्फ पर दौड़ा करते थे।

स्केटिंग का चलन बर्फीले देशों में शुरू में एक जगह से दूसरी जगह जाने के लिए ही हुआ होगा, क्योंकि स्केट पहन लेने पर आदमी की रफ्तार कई गुना बढ़ जाती है। लेकिन आजकल स्केटिंग इतनी लोकप्रिय हो गई है कि इसे ओलिम्पिक खेलों में शामिल कर लिया गया है।

कुछ लोग मनोरंजन या व्यायाम के लिए कभी-कभी स्केटिंग करते हैं। लेकिन कितने ही इसमें गहरी दिलचस्पी लेते हैं और इसकी प्रतियोगिताओं में शामिल होते हैं। स्केट पहनकर बर्फ पर दौड़ें होती हैं, हॉकी खेली जाती है, और तरह-तरह के कौतुक दिखाए जाते हैं जिसे फिगर स्केटिंग कहते हैं।

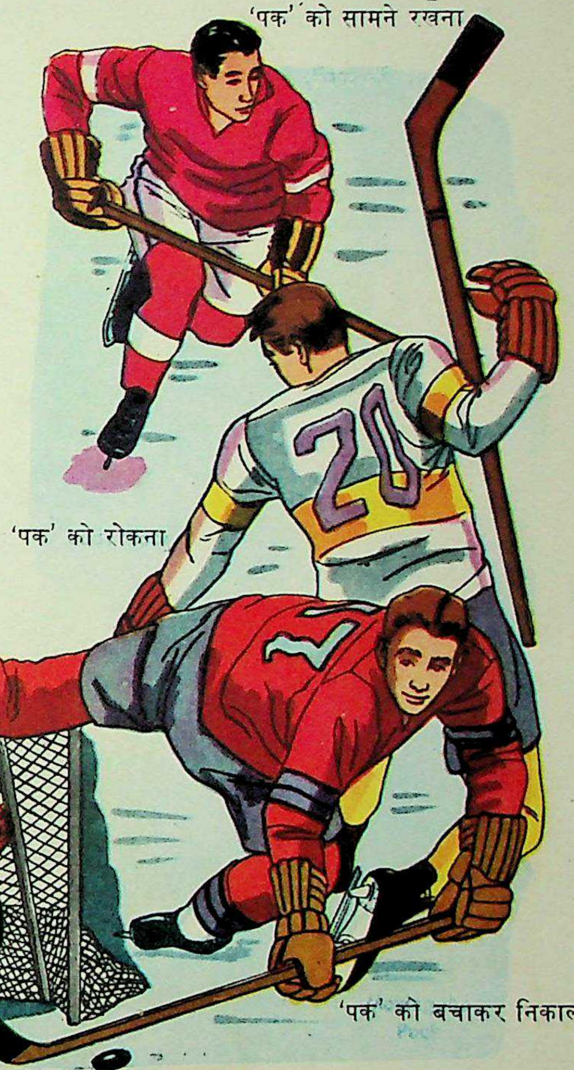
फिगर स्केटिंग में खिलाड़ी बर्फ पर लहराता हुआ कभी 8 की शक्ल में घूम जाता है, कभी लट्टू की तरह एक ही स्थान पर चक्कर खाता रहता है। फिगर स्केटिंग देखने में बड़ी सुन्दर और अद्भुत लगती है। इसके लिए परिश्रम और अभ्यास भी बहुत करना होता है।

बच्चे बर्फ पर स्केटिंग करते स्कूल जा रहे हैं।



आइस हॉकी (ICE HOCKEY) : इस खेल में टीमें छः-छः खिलाड़ियों की होती हैं और गेंद की बजाय रबड़ के छल्ले का प्रयोग किया जाता है, जिसे 'पक' कहते हैं। एक गेम बीस मिनट का होता है। अगर बीस मिनट में कोई फैसला





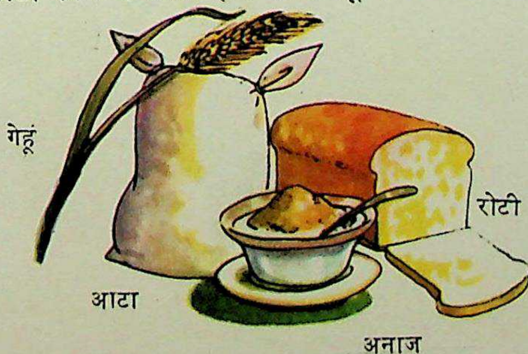
न हो तो दस मिनट का अतिरिक्त समय दे दिया जाता है।

बर्फ पर हॉकी का खेल बड़ा तेज़ होता है। 'पक' बर्फ पर नब्बे मील प्रति घण्टे की रफ्तार से भागता है। अच्छे खिलाड़ी को बहुत बढ़िया स्केटर होना चाहिए। अगर किसी से खेल में गलती हो जाती है, तो उसे पेनाल्टी बॉक्स में भेज दिया जाता है। उसे वहां दो, पांच या दस मिनट खड़ा रखा जाता है।



आटा (FLOUR) : रोटी हो या केक—इस तरह की सभी चीज़ों के लिए आटे की ज़रूरत पड़ती है। आटा गेहूं, जौ, ज्वार, मक्का आदि को चक्की में पीसकर तैयार किया जाता है। छानकर आटे और चोकर को अलग-अलग कर लिया जाता है। रोटी के लिए आम तौर से गेहूं का आटा काम में आता है। आटा गेहूं के उस भाग से बनता है जो बाहरी छिलके के भीतर होता है। चोकर गेहूं के बाहरी छिलके से बनता है। मैदा बनाने के लिए आटे को कई बार छानना पड़ता है। वह आटा सुपाच्य माना जाता है जिसमें से चोकर न निकाला गया हो। आलू, मूंगफली आदि को पीसकर उनका भी आटा तैयार किया जाता है।

(देखें : रोटी)



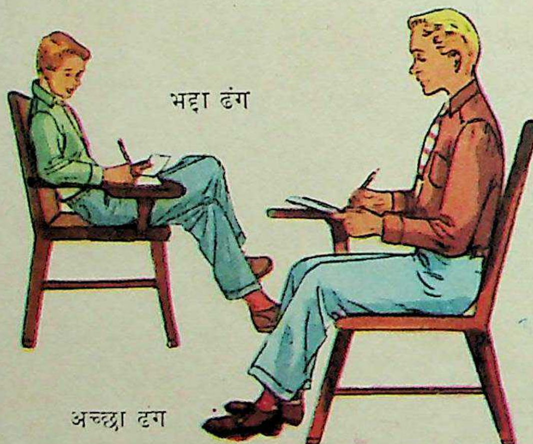
आदत (HABITS) : यदि राह चलते हुए हमें अपने हर कदम के बारे में सोचना पड़े तो थोड़ी दूर जाने में ही बहुत समय लग जाएगा। इसी तरह, यदि लिखते हुए हमें हर अक्षर पर सोच-विचार करना पड़े तो केवल हस्ताक्षर करने में भी हमें काफी देर लगेगी। चलना और लिखना एक बार अच्छी तरह सीख लेने पर हमें उनकी आदत पड़ जाती है। यही बात दूसरे कामों के बारे में है।

अपने अधिकतर काम हम आदत से करते हैं। कपड़े

पहनना, बटन बंद करना, जूतों के तस्मे बांधना, खाना खाने के बाद कुल्ला करना, इन सबकी हमें आदत पड़ी होती है। कमरा बंद करने से पहले हम बिजली बुझा देते हैं। चौराहे पर लाल रोशनी देखकर रुक जाते हैं। ये आदतें नहीं तो और क्या हैं? यदि आदत नाम की चीज़ न हो और हर काम के लिए सोच-विचार करना पड़े तो ज़िन्दगी दूभर हो जाए।

किसी काम को बार-बार करने से उसकी आदत पड़ जाती है। लेकिन इच्छा और आवश्यकता का आदत के बनने में काफी हाथ रहता है। यदि किसी काम की इच्छा या आवश्यकता ही महसूस न हो तो उसकी आदत नहीं पड़ सकती।

आदतें अच्छी और बुरी दोनों तरह की होती हैं। बहुत-से आदमियों को नाखून चबाने की, या इसी तरह की दूसरी बुरी आदतें पड़ जाती हैं, जिन्हें बाद में छोड़ना बहुत ही मुश्किल होता है। इसलिए यदि आप कोई नया काम सीख रहे हों तो उसे ठीक ढंग से सीखिए, क्योंकि शुरू में आप जिस तरह से करेंगे, बाद में उसी तरह की आदत पड़ जाएगी। (देखें : प्रतिवर्त क्रिया)



बैठने का ढंग आदत पर निर्भर करता है।

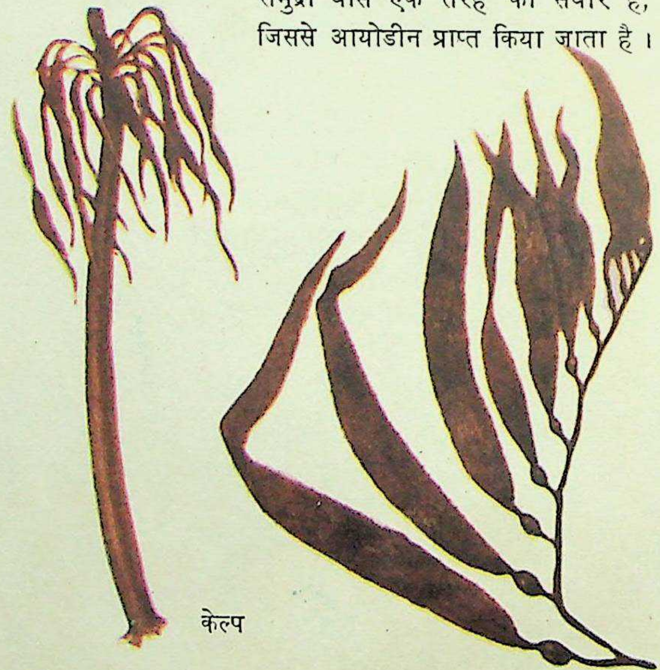
आयोडीन (IODINE) : हम केमिस्ट या रसायन-विक्रेता की दूकान से आयोडीन प्राप्त कर सकते हैं। लेकिन दूकान से मिलनेवाला आयोडीन शुद्ध नहीं होता। इसमें अलकोहल मिला होता है। शुद्ध आयोडीन ठोस होता है और इसकी काली पपड़ियां बनी होती हैं। गरम करने पर इसमें से बैंगनी भाप निकलती है।

हमारे शरीर में आयोडीन का होना आवश्यक है। गलगण्ड (Goitre) नामक रोग आयोडीन की कमी से होता है। अधिकतर आयोडीन का इस्तेमाल दवाओं में होता है। यह रोगाणुरोधक होता है और इससे घाव आदि साफ किए जाते हैं। इस रूप में इसे आयोडीन टिंचर कहते हैं। आयोडीन टिंचर आयोडीन में अलकोहल मिलाने पर तैयार होता है।

आयोडीन उन पदार्थों में गिना जाता है जिन्हें मूल तत्त्व कहते हैं। यह कभी शुद्ध रूप में प्राप्त नहीं होता। इसे समुद्री घास तथा खनिज पदार्थों से प्राप्त किया जाता है।

आयोडीन की खोज एक फ्रांसीसी वैज्ञानिक ने 1811 में की थी। वह नेपोलियन के लिए बारूद बनाने के प्रयत्न में था। उसे समुद्री घास में बारूद मिलने की आशा थी, पर मिला आयोडीन।

समुद्री घास एक तरह की सेवार है, जिससे आयोडीन प्राप्त किया जाता है।



आराम (REST) : बहुत कठिन काम करने या देर तक लगातार काम करते रहने से हमें थकान महसूस होने लगती है। तब हमें आराम की ज़रूरत पड़ती है। यह थकान इसलिए महसूस होती है कि जब पेशियां लगातार गति करती रहती हैं, या उनपर ज़्यादा ज़ोर पड़ता है तो वे ज़्यादा गन्दगी पैदा करती हैं, जो तुरन्त शरीर से बाहर नहीं निकल पाती। आराम की ज़रूरत तब इसलिए होती है कि इस जमा हुई गन्दगी को बाहर निकलने के लिए समय मिल सके। आराम या विश्राम द्वारा हमें अपने शरीर की खर्च की हुई शक्ति फिर से वापस मिल जाती है। नींद से हमें देर तक और पर्याप्त आराम मिलता है, इसलिए शक्ति-संचय की दृष्टि से नींद हमारे लिए सबसे अच्छा टॉनिक है। आराम करने की सही विधि यह है कि शरीर पूरी तरह ढीला छोड़ दिया जाए और सोचना बिलकुल बंद कर दिया जाए।

(देखें : नींद)

इंडियन, रेड (RED INDIANS) : जब कोलम्बस अमरीका पहुंचा तो उसने सोचा कि मैंने 'इंडिया' (भारत) खोज लिया है। उसने वहां के सांवले और लाल रंग के तथा



अमरीकी इंडियनों की विभिन्न जातियां



अमरीकी इंडियन और उनकी वेशभूषा

काले बालों वाले निवासियों को 'इंडियन' (भारतीय) कहना शुरू किया।

रेड इंडियनों का भारत से कोई संबंध नहीं है। लेकिन कुछ विद्वानों का कहना है कि इनके पूर्वज एशिया से आए थे। वे लोग एशिया से आगे बढ़ते हुए अलास्का पहुंचे और वहां से अमरीका महाद्वीप में फैल गए। बाद में रेड इंडियनों ने मैक्सिको और दक्षिणी अमरीका में अपने बड़े-बड़े राज्य कायम कर लिए।

अमरीकी रेड इंडियनों की अनेक जातियां हैं। इन जातियों की अपनी अलग पोशाकें और अलग रीति-रिवाज हैं। यहां तक कि इनकी भाषाएं भी अलग-अलग हैं। अमरीका के अधिकांश नगरों, नदियों और राज्यों के नाम रेड इंडियन जातियों के नाम पर रखे गए हैं।

रेड इंडियन यद्यपि आदिवासी जाति के लोग हैं, लेकिन ये जंगली नहीं हैं। इनकी अपनी एक सभ्यता और संस्कृति है। इनमें से अधिकतर खानाबदोशों की तरह एक जगह से दूसरी जगह घूमते रहते हैं। ये लोग शिकार करते हैं या मछली मारते हैं। कुछ रेड इंडियन घर बनाकर एक जगह रहते हैं और खेती करते हैं। इनके मकान और झोंपड़ियां तरह-तरह की होती हैं। रेड इंडियन लोग आम तौर से सामूहिक जीवन बिताते हैं। इनका एक मुखिया होता है। ये लोग अपनी भड़कीली पोशाक के लिए प्रसिद्ध हैं।

आरम्भ में रेड इंडियनों और अमरीका में बसने के लिए आए गोरे विदेशियों में एक लम्बे समय तक लड़ाई चलती रही। रेड इंडियन अपने खेत-खलिहानों और चरागाहों को छोड़ने के लिए तैयार नहीं थे। लेकिन, अंत में उन्हें पीछे हटना पड़ा और जंगलों की शरण लेनी पड़ी।

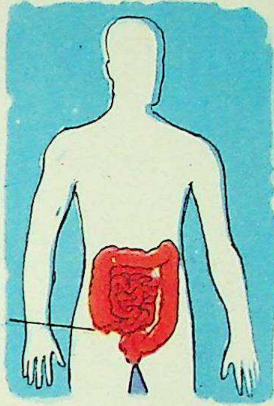
(देखें : टोटेम स्तम्भ)

इंफ्लूएंज़ा (INFLUENZA) : पहले विश्वयुद्ध के समाप्त होने पर पूरे यूरोप और एशिया में एक महामारी फैल गई जिसने बहुत बड़ी संख्या में लोगों की जान ले ली। इस रोग का नाम इंफ्लूएंज़ा या 'फ्लू' है। आम तौर पर यह खतरनाक बीमारी नहीं है। लेकिन जिन लोगों को इंफ्लूएंज़ा होता है वे इसके लक्षणों के कम होते ही बिस्तर छोड़ देते हैं। परिणाम यह होता है कि कुछ ही दिन बाद वे फिर बीमार पड़ जाते हैं और बिस्तर पकड़ लेते हैं। इंफ्लूएंज़ा के रोगी को जाड़ा लगता है और बुखार आता है। कभी-कभी उसके पूरे शरीर में दर्द बना रहता है।

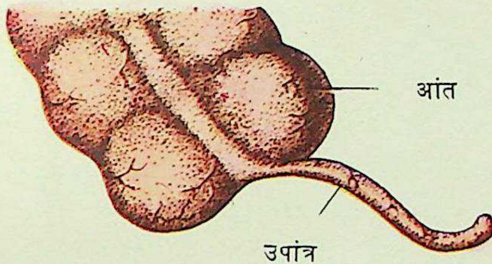
इस बात का पता लगाने में डाक्टरों को काफी कठिनाई का सामना करना पड़ा कि इंफ्लूएंज़ा कैसे पैदा होता है। अब उन्होंने यह पता लगा लिया है कि इसकी उत्पत्ति एक प्रकार के वाइरस या विषाणु द्वारा होती है। एक आदमी बार-बार इसकी लपेट में आ सकता है। लेकिन ऐसे टीके का आविष्कार हो चुका है जिसे लगवा लेने पर इससे बचा जा सकता है।

उपांत्र (APPENDIX) : यह हमारे शरीर के उन अंगों में से है जिनका कोई खास उपयोग या लाभ नज़र नहीं आता। देखने में उपांत्र कीड़े-जैसा लगता है। असल में यह आहार की एक बड़ी नली का भाग है। बड़ी आंत जहां छोटी आंत से मिलती है, यह वहीं पर स्थित है। भोजन इसमें होकर नहीं गुज़रता—वह इसके मुंह के पास से आगे निकल जाता है।

कई लोगों को उपांत्रशोथ या ऐपेंडिसाइटिस (Appendicitis) नामक रोग हो जाता है। इसमें उपांत्र पर सूजन आ जाती है। इसका सबसे आम इलाज यह है कि ऑपरेशन



उपांत्र का पूरा नाम हैं 'कृमिरूप उपांत्र', क्योंकि यह देखने में कीड़े-जैसा लगता है।



द्वारा उपांत्र को ही निकाल दिया जाए। उपांत्र के बिना भी आदमी मज़े में अपना काम चला सकता है।

(देखे : ऐपेंडिसाइटिस)

एस्कीमो (ESKIMOS) : एस्कीमो लोग उत्तरी अमरीका के उत्तरी प्रदेश और ग्रीनलैंड के बर्फ से ढके भाग में रहते हैं। उत्तरी अमरीका के एकदम उत्तर का एक बड़ा हिस्सा आर्कटिक सागर को छूता है। यह सारा क्षेत्र वीरान है। साल के अधिकांश महीनों में यहां बर्फ जमी रहती है। इसी प्रकार ग्रीनलैंड के कुछ भाग में भी प्रायः बर्फ जमी रहती है।



एक एस्कीमो परिवार

ये लोग बर्फ के मकानों में रहते हैं। अपने मकानों को ये इस ढंग से बनाते हैं कि जाड़ों में वहां का तापमान शून्य से बहुत नीचे होने पर भी ये उनमें आराम से रह लेते हैं। ये मछली के तेल का एक लैम्प जलाते हैं जो घर में रोशनी भी देता है और उसे गरम भी रखता है। इनके घर का फर्श आस-पास की ज़मीन और घर के दरवाज़े से ऊंचा होता है, इसलिए बाहर की ठंडी हवा अंदर नहीं आ पाती और न अंदर की गरम हवा बाहर जाती है। बर्फ के इस मकान को 'इगलू' कहा जाता है।

ज़्यादातर एस्कीमो लोग घुमक्कड़ होते हैं। जाड़ों में ये बर्फ की बहती सिलों पर बने मकानों में रहते हैं और सील मछली का शिकार करते हैं। ये उसका मांस खाते हैं और तेल काम में लाते हैं। सील की खाल से ये अपने जूते बनाते हैं।

बसन्त में जब बर्फ पिघलने लगती है तो ये ज़मीन की ओर चल पड़ते हैं। कभी-कभी ये हारपून नामक एक



ग्रीनलैंड में ज़्यादातर आबादी एस्कीमो लोगों की है।

प्रकार के बर्छे से ह्वेल मछली मार लेते हैं। एस्कीमो परिवार में ह्वेल मछली का शिकार एक बहुत बड़ी घटना होती है। एक ह्वेल का मांस एक परिवार के लिए एक महीने को काफी होता है।

गर्मियों में एस्कीमो खाल के तंबुओं में रहते हैं। इन दिनों ये एक प्रकार के धीरे-धीरे चलनेवाले और कस्तूरी की सुगंधवाले बैल का शिकार करते हैं।

पिछले 2,000 वर्षों से यह शिकारी जाति इस निर्जन प्रदेश में रहती आई है। इन्होंने कभी गरम प्रदेशों में जाने की कोशिश नहीं की। इससे पता चलता है कि मनुष्य

चाहे तो हर प्रकार की जलवायु और परिस्थितियों में रह सकता है। आस-पास के उन्नत प्रदेशों के सम्पर्क में आनेवाले कुछ एस्कीमो आधुनिक होते जा रहे हैं, लेकिन अधिकांश अब भी पुराने ढर्रे पर ही चल रहे हैं।



खाल की नौका में अपने को अच्छी तरह बांधकर बैठा एक एस्कीमो



एस्क़ीमो कुत्ता प्रायः सील का मास और मछली खाता है।

ऐपेंडिसाइटिस (APPENDICITIS) :

हमारे पेड़ू में दाहिनी ओर बड़ी आंत के सिरे पर केंचुए जैसी एक छोटी-सी पूंछ है, जिसे ऐपेंडिक्स या उपान्त्र कहते हैं। इसका आंत या उसकी क्रियाओं से कोई संबंध नहीं है। कभी-कभी इसमें सूजन हो जाती है और यह धीरे-धीरे फोड़े का रूप ले लेती है। तब इस रोग को ऐपेंडिसाइटिस या उपान्त्र-शोथ कहा जाता है। इसमें सबसे भयंकर खतरा यह रहता है कि रोगग्रस्त और सूजी हुई उपान्त्र फोड़े की तरह फट सकती है और इसका सारा मवाद पेट में फैलकर उसे विषाक्त बना सकता है। इससे रोगी की मृत्यु तक हो सकती है। इसलिए पेट का दर्द यदि एक घंटे से अधिक बना रहे तो डाक्टर को अवश्य दिखाना चाहिए, भले ही ऐसे दस मामलों में नौ मामले ऐपेंडिसाइटिस के न होकर दूसरे प्रकार के दर्द के क्यों न होते हों।

इस रोग के कुछ मामलों में कई घंटों तक नाभि की जगह दर्द होता रहता है। काफी देर बाद जाकर दर्द नीचे दाहिनी ओर ठहरता है। इसमें कुछ बुखार भी बराबर बना रहता है। इस रोग का इलाज केवल ऑपरेशन है।

(देखें : उपांत्र)

ऐलर्जी (ALLERGY) :

दही एक बड़ी गुणकारी चीज़ है। पर कितने ही लोग पसंद होने पर भी दही नहीं खाते, क्योंकि दही खाने से उनकी तबीयत खराब हो जाती है। ये लोग दही को बरदाश्त नहीं कर सकते। इस तरह किसी चीज़ को बरदाश्त न कर सकना 'ऐलर्जी' कहलाता है। खाने की कितनी ही चीज़ों से कई लोगों को ऐसी ही ऐलर्जी होती है।

ऐलर्जी सिर्फ खाने की चीज़ों से ही नहीं, दवाइयों, छूने, पहनने, सूंघने आदि की चीज़ों से भी हो सकती है, जैसे धूल, खुशबू, ऊन, नायलोन, चमड़ा, साबुन आदि।

ऐलर्जी से कई रोग हो सकते हैं, जैसे बुखार, दमा, खाल पर चित्ते तथा अन्य चर्मरोग आदि।

ओलिम्पिक खेल (OLYMPIC GAMES) :

आज से 2,500 वर्ष से भी पहले यूनान में हर चौथे साल लोग ओलिम्पिया नामक स्थान में खेल-कूद देखने और खेल प्रतियोगिताओं में भाग लेने के लिए इकट्ठे होते थे। प्रारंभ में ये खेल छोटी दौड़ों तक ही सीमित थे, जिन्हें 'स्टेड' कहा जाता था। 'स्टेडियम' शब्द 'स्टेड' से ही निकला है। इसमें प्रथम विजेता जिसने अपना 'रिकार्ड' कायम किया था कोरोबस था, जो एलिस नामक स्थान का बावर्ची था। बाद में इसमें और दूसरी दौड़ें भी शामिल कर ली गईं। ये खेल ज़ीअस के मन्दिर में होनेवाले एक समारोह के उपलक्ष्य में होते थे। धीरे-धीरे इसमें मुक्केबाज़ी, कूद, डिस्कस और जैवेलिन फेंकना, रथों की दौड़, और दूसरे खेल-कूद भी सम्मिलित कर लिए गए। कभी-कभी ये खेल पांच-पांच दिन तक होते रहते थे।

आगे चलकर ओलिम्पिक खेल प्रतियोगिता यूनान का एक महान पर्व बन गई। जब भी नगर-राज्यों के बीच कोई युद्ध समाप्त होता था, इस पर्व के उद्घाटन की घोषणा हो जाती थी। यूनानी साम्राज्य के विभिन्न भागों से लोग इसे देखने आते थे। ओलिम्पिक खेलों में हर विजेता को जैतून की पत्तियों का एक मुकुट पहनाया जाता था। विजेताओं को बहुत बड़ा बहादुर समझा जाता था। जिस नगर के ये विजेता होते थे उनमें उनकी मूर्तियां खड़ी की जाती थीं और सार्वजनिक उत्सवों में उन्हें बहुत सम्मानित स्थान दिया जाता था।

आज से 1,500 वर्ष से भी पहले यूनान में ओलिम्पिक खेलों की परम्परा उठ गई। लेकिन सन् 1896 में उसे फिर शुरू किया गया। सबसे पहली खेल प्रतियोगिता यूनान के एथेंस नगर में हुई थी। तब से आज तक ये खेल हर चौथे वर्ष खेले जाते हैं। इनका क्रम केवल पिछले दो विश्व-युद्धों में टूटा था। हर बार ये खेल प्रतियोगिताएं किसी भिन्न देश में उसके किसी प्रमुख नगर में आयोजित होती हैं।

आजकल ओलिम्पिक खेल प्रतियोगिताएं दो सप्ताह से भी अधिक समय तक चलती हैं। इनमें यूनानी खेलों में से भी अनेक खेल सम्मिलित हैं। इनके अलावा इनमें पानी के खेल, साइकिल चलाने, तलवार चलाने, घुड़सवारी, वज़न उठाने और व्यायाम आदि के खेल भी सम्मिलित हैं। ओलिम्पिक खेलों में बास्केट बॉल, पानी का पोलो, फुटबॉल और हॉकी आदि को भी शामिल कर लिया गया है।

ओलिम्पिक खेलों का उद्घाटन बहुत शानदार होता है। इसके महत्त्वपूर्ण भाग हैं खिलाड़ियों की परेड, और ओलिम्पिक मशाल का आगमन। परेड में हर देश के खिलाड़ी

अपने देश का झंडा लेकर चलते हैं। दो देशों को छोड़कर शेष सभी देश वर्णक्रम से चलते हैं। यूनानी दल हमेशा परेड में आगे रहता है, और जिस देश में ओलिम्पिक प्रतियोगिता होती है, उसका दल सबसे पीछे रहता है।

परेड के बाद एक बहुत बड़ा जत्था तुरही बजाता है और एक आदमी जलती हुई मशाल लेकर दौड़ता हुआ आता है। इसे 'ओलिम्पिक फायर' कहते हैं। फिर पवित्र आग (सैक्रेड फायर) जलाई जाती है, जो तब तक जलती रहती है, जब तक प्रतियोगिता समाप्त नहीं हो जाती।

नीचे दी हुई तालिका में उन स्थानों का उल्लेख है जहां अब तक ओलिम्पिक खेल हुए हैं :

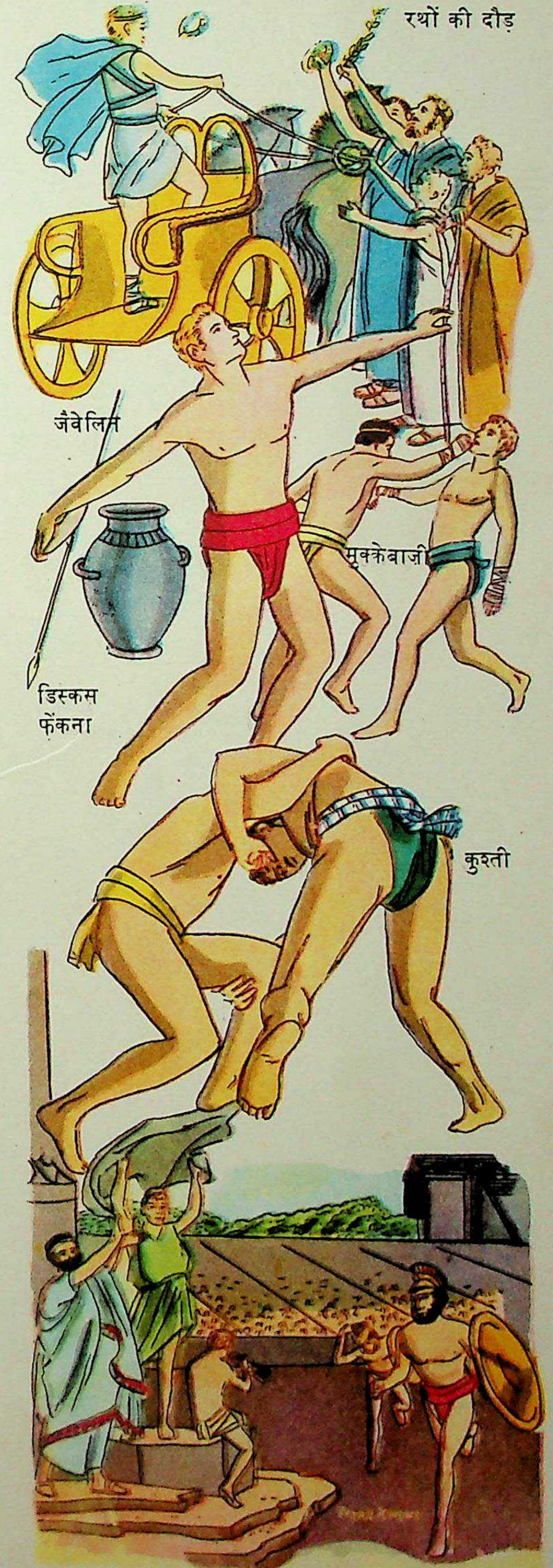
1.	एथेन्स (यूनान)	1896
2.	पेरिस (फ्रांस)	1900
3.	सेंट लुइस (अमरीका)	1904
4.	लन्दन (ब्रिटेन)	1908
5.	स्टाकहोम (स्वीडन)	1912
6.	*बर्लिन (जर्मनी)	1916
7	ऐण्टवर्प (बेल्जियम)	1920
8.	पेरिस (फ्रांस)	1924
9.	ऐम्सटर्डम (नीदरलैंड)	1928
10.	लास ऐंजेल्स (अमरीका)	1932
11.	बर्लिन (जर्मनी)	1936
12.	*टोकियो (जापान)	1940
13.	*लन्दन (ब्रिटेन)	1944
14.	लन्दन (ब्रिटेन)	1948
15.	हेलसिंकी (फिनलैंड)	1952
16.	मेल्बोर्न (आस्ट्रेलिया)	1956
17.	रोम (इटली)	1960
18.	टोकियो (जापान)	1964

*विश्वयुद्धों के कारण रद्द।

अठारहवीं ओलिम्पिक प्रतियोगिता : सन् 1964 में अठारहवीं ओलिम्पिक प्रतियोगिता का आयोजन जापान की राजधानी टोकियो में किया गया। यह प्रतियोगिता दस अक्तूबर से चौबीस अक्तूबर तक चली, और इसमें लगभग सौ देशों व दुनिया के चुने हुए आठ हज़ार से अधिक खिलाड़ियों ने भाग लिया, और एक लाख साठ हज़ार से भी अधिक दर्शकों ने रोज़ खिलाड़ियों के कारनामों को देखा।

टोकियो की इस ओलिम्पिक प्रतियोगिता में एक ओर जहां इथोपिया के बिकिला, न्यूज़ीलैंड के पीटर स्नेल, अमरीका के अल ओएर्टर, रूस की तमारा प्रेस और आस्ट्रेलिया की डान फ्रेज़र जैसे खिलाड़ी पहली प्रतियोगिताओं की तरह ही सफल रहे और स्वर्णपदक प्राप्त कर सके,

प्राचीन ओलिम्पिक खेल



आधुनिक ओलिम्पिक खेल



वहां दूसरी ओर अमरीका के लंबी कूद के विश्वविख्यात खिलाड़ी बोस्टन इंग्लैंड के डेवीज़ से परास्त हो गए। आस्ट्रेलिया के विश्वविख्यात धावक रॉन क्लार्क ने दस हज़ार मीटर दौड़ में इसी वर्ष विश्व-रिकार्ड (28 मिनट 15·6 सेकंड) कायम किया था। लेकिन ओलिम्पिक प्रतियोगिता में वे तीसरे नम्बर पर (28 मिनट 25·8 सेकंड) ही रह गए, और अमरीका के डब्ल्यू० एम० मिल्स (28 मिनट 24·4 सेकंड) ने स्वर्णपदक जीत लिया। चक्का (डिस्कस) फेंकनेवाले विख्यात चेक खिलाड़ी लुडविक डेनेक के साथ भी यही हुआ। सन् 1964 में ही उन्होंने 64·55 मीटर यानी 211 फुट 9¼ इंच चक्का फेंककर विश्व-रिकार्ड कायम किया था, लेकिन ओलिम्पिक प्रतियोगिता के अंतिम परिणामों के अनुसार वे 198 फुट 6¾ इंच चक्का फेंककर दूसरे स्थान पर ही रह गए, जबकि अमरीका के अल ओएर्टर ने 200 फुट 1⅝ इंच चक्का फेंककर स्वर्णपदक जीत लिया।

लेकिन, खेलों में यह सब न हो तो खिलाड़ियों और दर्शकों का मनोरंजन ही कैसे हो। अठारहवीं प्रतियोगिता में अमरीका ने 36 स्वर्णपदक जीते। रूस ने 30, जापान ने 16 तथा जर्मनी, इटली और हंगरी ने 10-10 स्वर्णपदक जीते। भारत को केवल हॉकी के खेल में एक स्वर्णपदक प्राप्त हुआ। (देखें : क्रीड़ा-प्रतियोगिताएं)

कनपेड़ (MUMPS) : कभी-कभी किसी व्यक्ति के कान के नीचे गले पर एक तरफ सूजन हो जाती है, जो उसे बहुत तकलीफ देती है। इस रोग को कनपेड़ या कर्णमूल प्रदाह कहते हैं। इसमें बुखार भी हो जाता है।

कनपेड़ का कारण एक प्रकार के विषाणु होते हैं जो लार या थूक बनानेवाली ग्रंथियों में पहुंच जाते हैं। इससे वे ग्रंथियां सूज जाती हैं। कनपेड़ एक संक्रामक रोग है। इसमें आदमी 14 से 25 दिन तक बिस्तर पर पड़ा रहता है। कनपेड़ कभी-कभी गले पर दोनों तरफ भी हो जाता है।

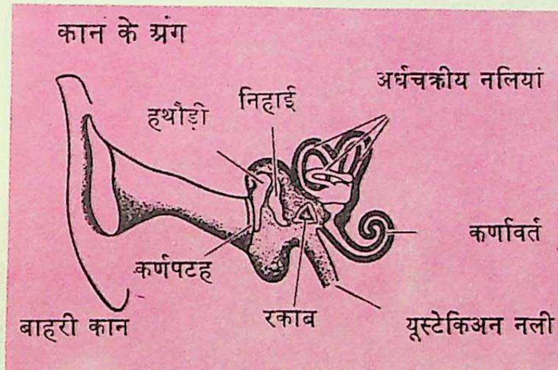
कनपेड़ बच्चों की बीमारी मानी जाती है, क्योंकि यह ज़्यादातर 5 से 15 साल तक की उम्र में होती है। पर कभी-कभी यह रोग बड़ी उम्र में भी हो जाता है।

कान (EARS) : हम अपने कानों की मदद से ही सुन पाते हैं। दो कान होने के कारण हम यह आसानी से जान लेते हैं कि आवाज़ किस दिशा से आ रही है।

मनुष्य के कान के तीन भाग होते हैं : बाहरी कान, मध्य कान और भीतरी कान। बाहरी कान वह भाग है जो हमें दिखाई देता है। यह ध्वनि की तरंगों को पकड़ता या समेटता है और उन्हें एक नली के जरिये कर्णपटह (Eardrum) तक भेजता है। कर्णपटह महीन खाल का एक टुकड़ा है जो कसकर तना रहता है। मध्य कर्ण में कर्णपटह

के ठीक नीचे तीन बहुत छोटी-छोटी हड्डियां हैं। ये हड्डियां हथौड़ी, निहाई और रकाब के आकार की हैं। ये छोटी हड्डियां आवाज़ को भीतरी कान या अंतःकर्ण में पहुंचाती हैं। वहां स्नायु या तंत्रिकाएं आवाज़ के संकेतों को ग्रहण





करती हैं और उन्हें मस्तिष्क तक पहुंचा देती हैं। इन तंत्रिकाओं के सिरे कान के उस भाग में जुड़े होते हैं जिसका आकार घोंघे के समान होता है। उसके पास ही घोड़े की नाल के आकार की तीन छोटी नलियां होती हैं, जिनमें एक प्रकार का तरल पदार्थ भरा होता है। इन्हें अर्धचक्राकार नलियां कहते हैं। यूस्टेकिअन नली (Eustachian Tube) मध्यकर्ण से गले तक जाती है। इसके ज़रिये हवा मध्यकर्ण तक पहुंच सकती है।

अन्य कई जीवों के भी कान होते हैं। लेकिन उनमें से कुछ के कान हमारे कानों से भिन्न होते हैं। चिड़ियों के बाहरी कान नहीं होते। उनके कानों के छेद परों के नीचे छिपे रहते हैं। मेंढक के कान उसकी आंखों के ठीक पीछे चमड़े के बड़े-बड़े चक्रों के रूप में दिखाई देते हैं। टिड्डों के कान उनके सामने के परों पर होते हैं।

कुछ प्राणी हमारी अपेक्षा अधिक अच्छा सुन सकते हैं। कुत्ते उच्च-तारत्व (High-pitched) की ऐसी आवाज़ को भी सुन सकते हैं, जिसे हम नहीं सुन सकते।

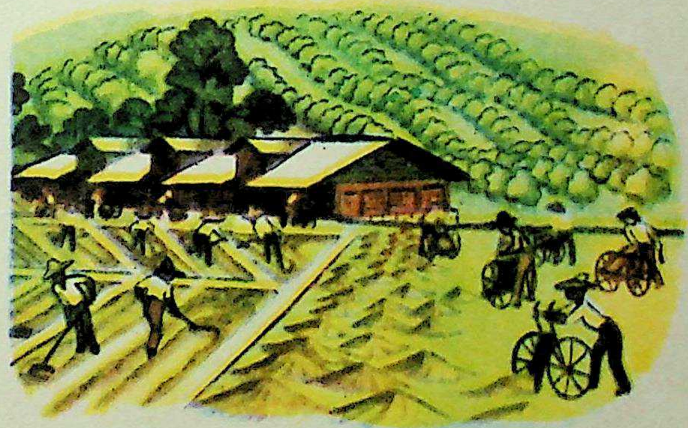
कॉफी (कहवा) (COFFEE) : उत्तर भारत में अधिकतर चाय पी जाती है और दक्षिण भारत के लोग कॉफी या कहवा पीना पसंद करते हैं। कॉफी की प्याली कॉफी के बीजों के चूर्ण से बनाई जाती है। कॉफी के फल नन्हे और लाल होते हैं। एक फल में दो बीज होते हैं। कॉफी की झाड़ी 5 से 15 फुट तक ऊंची होती है।

पके फल चुने जाते हैं। उनमें से बीज निकालने के लिए सूखी या गीली विधि काम में लाई जाती है। सूखी विधि में फलों को धोकर 3-4 सप्ताह तक धूप में सुखाया जाता है। छिलका उतारा जाता है और फिर बीज बाज़ार में भेज दिए जाते हैं। गीली विधि में फलों का छिलका उतारते हैं, गूदे को सड़ाकर धो देते हैं और बीजों को सुखा लेते हैं।

पेय बनाने से पहले बीज भूने और पीसे जाते हैं। भुनी हुई कॉफी की स्वादिष्टता बहुत दिनों तक नहीं रहती। इसलिए बीजों को बिना भूने ही दूर के देशों में भेजा जाता है।



कॉफ़ी के फल पहले हरे होते हैं, पर पकने पर सुर्ख हो जाते हैं। हर फल में दो बीज होते हैं जो भूनने पर कॉफ़ी के रंग के गहरे भूरे हो जाते हैं।

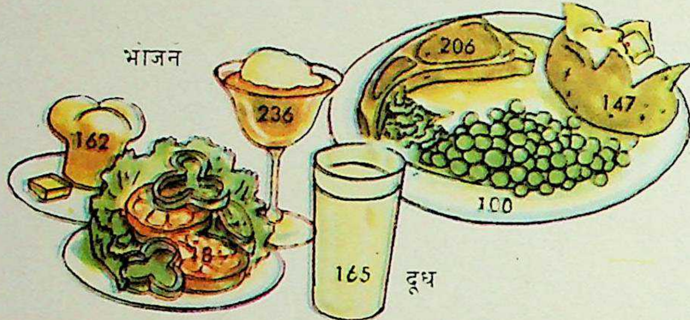


धूप में सूखते कॉफ़ी के बीजों को उलटा-पलटा जा रहा है।

कैंसर (CANCER) : हमारे शरीर की रचना नन्ही कोशिकाओं या सेलों से हुई है। इनमें से किसी एक कोशिका को बिना सूक्ष्मदर्शी की सहायता के नहीं देखा जा सकता। कभी-कभी ऐसा होता है कि किसी व्यक्ति की कुछ कोशिकाएं बहुत तेज़ी से बढ़ने लगती हैं। धीरे-धीरे ये दूसरी कोशिकाओं को दबाने लगती हैं और उनके लिए आवश्यक आहार का खुद प्रयोग करने लगती हैं। इस तरह ये कैंसर की बीमारी पैदा कर देती हैं।

पहले कैंसर का इलाज नहीं हो पाता था। लेकिन आजकल कैंसर के अनेक रोगी अच्छे हो जाते हैं। अगर इसका पता ठीक समय से लग जाए तो रोगी के अच्छा हो जाने की बहुत संभावना रहती है।

कैलोरी (CALORIE) : खाने के बिना कोई अधिक समय तक जीवित नहीं रह सकता। इसका एक कारण तो यह है कि जीवित रहने के लिए हमारे शरीर को ईंधन की आवश्यकता होती है। हम जो भोजन करते हैं, वह ईंधन का काम करता है। वह धीरे-धीरे जलता रहता है और



यह भोजन 1034 कैलोरियां प्रदान करता है।

हमारे जीवित रहने के लिए आवश्यक गर्मी और शक्ति प्रदान करता है। कौन-सा भोजन शरीर को कितनी गर्मी प्रदान करता है, इसे कैलोरियों में गिना जाता है।

कुछ भोज्य पदार्थ दूसरों की अपेक्षा अधिक शक्ति और गर्मी प्रदान करते हैं। जैसे अगर एक औंस लौकी से 8 कैलोरियां प्राप्त होती हैं तो एक औंस कागज़ी बादाम से 182 कैलोरियां प्राप्त होती हैं।

बढ़ रहे बच्चों को अधिक कैलोरीयुक्त भोजन की ज़रूरत होती है। अगर उनकी अवस्था 9 से 12 वर्ष तक की है तो उन्हें प्रतिदिन 2,500 कैलोरियों की आवश्यकता पडेगी। अगर उन्हें इतनी कैलोरियां न मिलें तो उनके शरीर की चर्बी का कुछ भाग नष्ट हो जाएगा। अगर चर्बी हो ही नहीं, तो उसके स्थान पर उनके शरीर की कोशिकाएं नष्ट होती जाएंगी।

कैलोरी तालिका

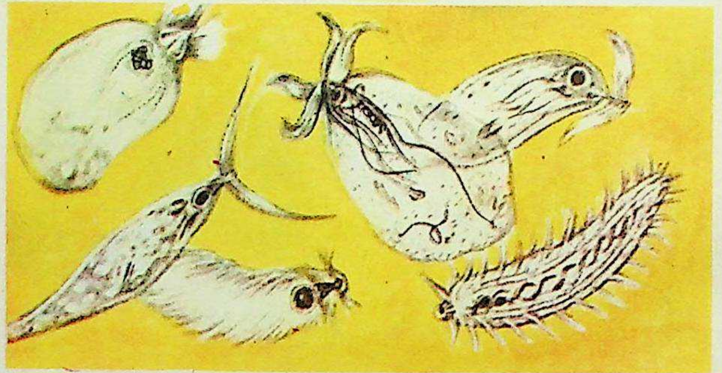
भोजन	मात्रा	कैलोरी
चावल	एक औंस	114
जौ	एक औंस	100
दाल	एक औंस	100
सेब	एक (सामान्य)	75
उबला हुआ आलू	एक (सामान्य)	95
आम	एक औंस	23
केला	एक औंस	11
लौकी	एक औंस	8
बैंगन	एक औंस	10
बादाम	एक औंस	182
मूंगफली	एक औंस	155
जमींकन्द	एक औंस	25
अंडा	एक	75
टमाटर	एक छोटा	16

जिन खाद्य पदार्थों में सबसे अधिक कैलोरियां होती हैं, वे हर दशा में सबसे अच्छे खाद्य ही हों यह आवश्यक नहीं है। जब हम किसी चीज़ को खाने के लिए चुनें तो हमें सिर्फ कैलोरियों का ही ध्यान नहीं रखना चाहिए, बल्कि दूसरी चीज़ों, जैसे विटामिन आदि का भी ध्यान रखना चाहिए।

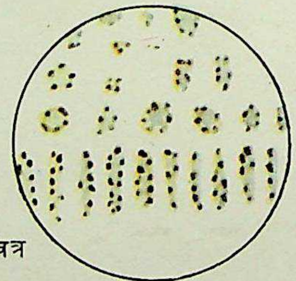
(देखें : भोजन)

कोशिका (CELL) : शेर, तितली, घास, पौधे, कुत्ते, मनुष्य आदि सभी जीवधारी कोशिकाओं या सेलों से बने हैं। अधिकतर जीवों और पौधों के शरीर में करोड़ों कोशिकाएं हैं। लेकिन कुछ पौधों और जीवों का शरीर केवल एक कोशिका से ही बना होता है।

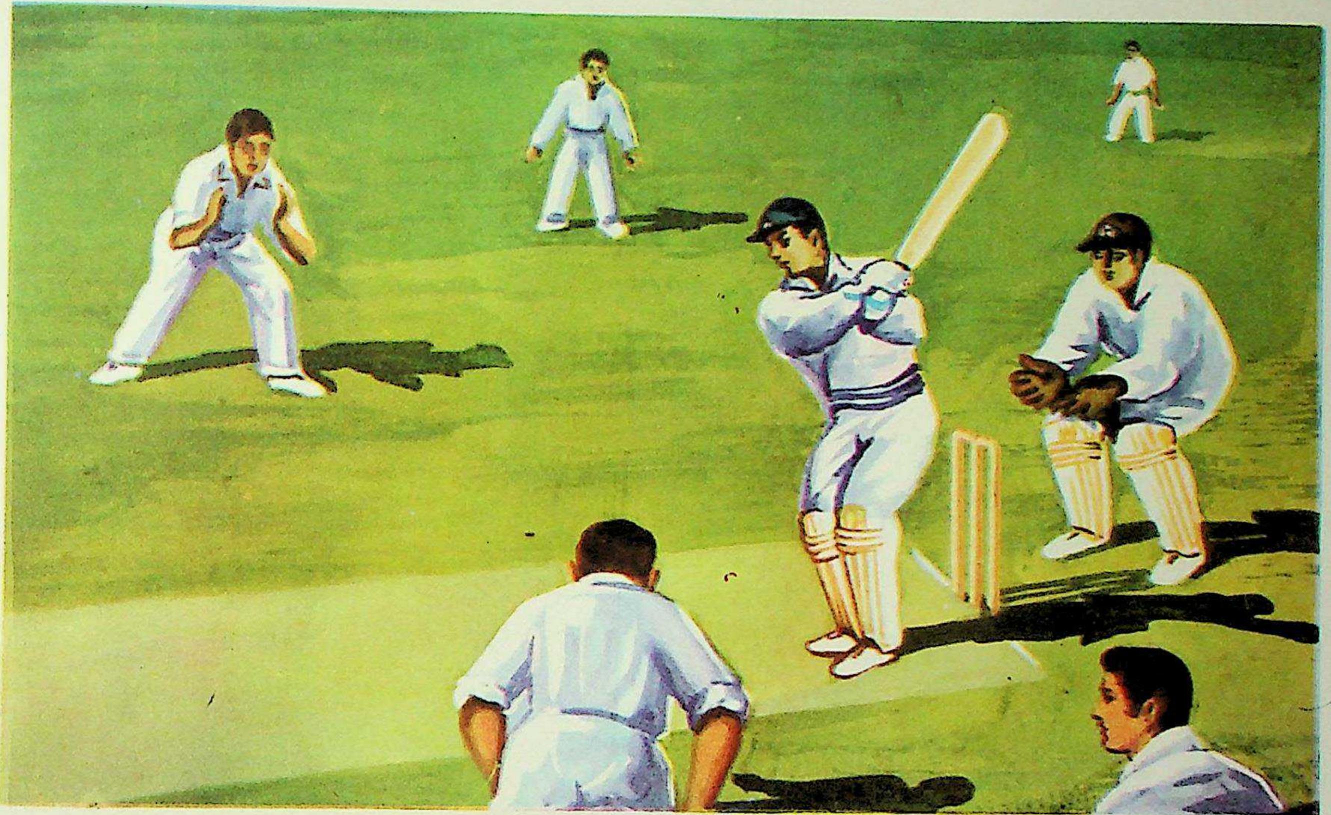
सभी कोशिकाएं एक ही आकार या शक्ल की नहीं


एक कोशिकावाले जीव या प्रोटोज़ोआ


एक कोशिकावाली काई


पत्ती की कोशिकाओं का आवर्धित चित्र

होतीं। रक्त में पाई जानेवाली लाल कोशिकाएं तवा-नुमा होती हैं। पेशियों में पाई जानेवाली कोशिकाएं लम्बी और पतली होती हैं। स्नायुओं की कोशिकाओं की बनावट कई तरह की होती है। कुछ पौधों की कोशिकाएं ईंटनुमा होती हैं और कुछ की गोलाकार। अधिकांश कोशिकाएं इतनी छोटी हैं कि उन्हें बिना सूक्ष्मदर्शी के देखा ही नहीं जा सकता। कुछ सिर्फ इतनी बड़ी हैं कि उन्हें किसी तरह नंगी आंखों से देखा-भर जा सकता है। कुछ कोशि-काओं में चूंकि भोजन संचित रहता है, इसलिए वे काफी बड़ी होती हैं। उदाहरण के लिए, मुर्गी के ताज़े अंडे की



क्रिकेट को अब भारत में भी बहुत अधिक लोकप्रियता प्राप्त है।

ज़र्दी एक कोशिका है।

विभिन्न तरह की कोशिकाएं, विभिन्न प्रकार के काम करती हैं। जीवधारियों के शरीर की कुछ कोशिकाएं संदेश पहुंचाती हैं। कुछ ऑक्सीजन पहुंचाती हैं। कुछ कोशिकाओं की बदौलत जीवधारी चलता-फिरता है। पौधों के शरीर में पाई जानेवाली कुछ कोशिकाओं में पानी भरा रहता है। कुछ कोशिकाएं भोजन तैयार करती हैं। इसी तरह कुछ अन्य प्रकार की कोशिकाएं अन्य तरह के काम करती हैं।

लेकिन सभी कोशिकाओं में कुछ समानताएं भी पाई जाती हैं। इन सबके चारों ओर एक दीवार-सी बनी होती है और भीतर एक लसलसी चीज़ भरी होती है। इसे जीवद्रव्य (Protoplasm) कहते हैं। अधिकांश कोशिकाओं के भीतर गोलाकार जमा हुआ जीवद्रव्य होता है। इसे नाभिक या 'न्यूक्लियस' (Nucleus) कहते हैं। यह नाभिक ही अपनी कोशिका का शासक होता है। इसके ऊपर ही कोशिका का जीवन निर्भर करता है, और इसीकी बदौलत वह जो कुछ काम कर सकती है, करती है।

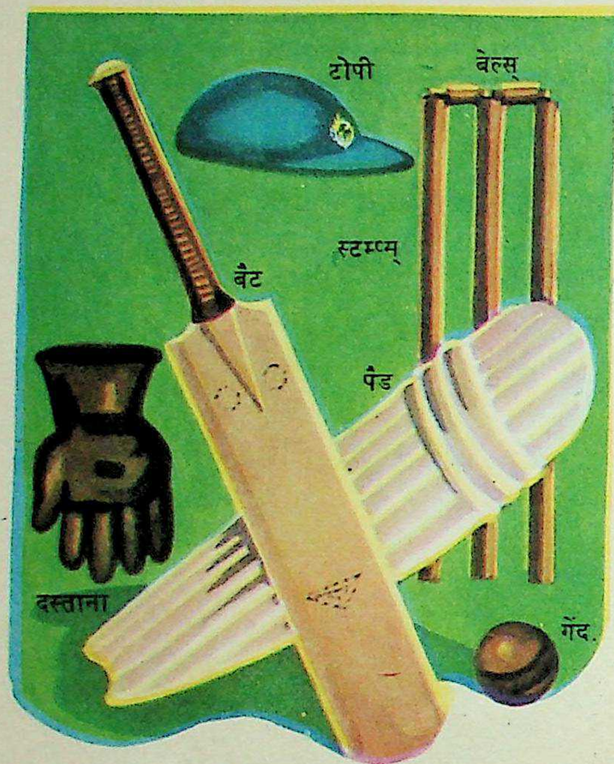
जीवद्रव्य के बिना कोशिकाएं जीवित नहीं रह सकतीं। इसे ही बदलकर कहें तो जिस चीज़ में कोशिका नहीं है, वह सजीव नहीं है, क्योंकि केवल कोशिकाओं में ही जीवद्रव्य पाया जाता है।

क्रिकेट (CRICKET) : यह ब्रिटिश राष्ट्रमंडल का खेल है और लगभग पन्द्रहवीं शताब्दी से चला आ रहा है। सबसे पहला मैच केण्ट और लंदन के बीच 1719 में खेला गया था। कुछ वर्ष बाद इसके नियम बनाए गए। पिच की लम्बाई 22 गज़ निश्चित की गई। दो डंडों का विकिट बनाया गया। आरम्भ में क्रिकेट के बल्ले हॉकी के डंडों की भांति मुड़े हुए होते थे।

मारली बोन क्रिकेट क्लब (एम० सी० सी०) 1887 में बना। अब यह इस खेल की प्रमुख संस्थाओं में से एक है। इसका अपना मैदान लॉर्ड्स में है। इंग्लैंड के दूसरे प्रसिद्ध क्रिकेट मैदान ओवल (लंदन), ट्रेंट ब्रिज (नाटिंघम), ओल्ड ट्रैफोर्ड (मैनचेस्टर) और हैडिंगले (लीड्स) में हैं। दूसरे देशों की टीमों से अधिकतर टेस्ट मैच इन्हीं मैदानों में खेले जाते हैं।

जब इंग्लैंड की टीम आस्ट्रेलिया के साथ खेलती है तो विजयी को 'ऐशेज' (राख) मिलती है। यह क्रिकेट के डंडों की राख है। इसे 1882 में कुछ आस्ट्रेलियन महिलाओं ने भेंट किया था। इसपर व्यंग्य से लिखा था: 'अंग्रेज़ी क्रिकेट की मृत्यु के प्रति'।

पर क्रिकेट इंग्लैंड में, और किसी दूसरे स्थान पर भी, मरा नहीं। यह बात इस खेल के महान खिलाड़ियों की शृंखला से सिद्ध होती है। इसके शायद सबसे प्रसिद्ध खिलाड़ी



क्रिकेट के खेल के लिए कुछ जरूरी चीजें

डब्लू० जी० ग्रेस हैं जो 1880 और 1889 के बीच तेरह बार इंग्लैंड के कप्तान रहे। दूसरे प्रसिद्ध अंग्रेज़ खिलाड़ी सी० बी० फ्राई, पर्सी फेंडर, सर जॉन (जैक) हाब्स, हर्बर्ट सटक्लिफ़, 'पेस्टी' हैंड्रन और हैरोल्ड लारवुड हैं। दूसरे विश्वयुद्ध के बाद वाल्टर हामंड, सर ल्योनार्ड हटन और डेनिस काम्पटन आदि प्रसिद्ध अंग्रेज़ खिलाड़ी रहे हैं।

अन्य देशों के प्रसिद्ध खिलाड़ियों में आस्ट्रेलिया के सर डोनाल्ड ब्रैडमैन, क्लेरेंस ग्रिमेट, विलियम पौंसफोर्ड और कीथ मिलर; वेस्ट इंडीज़ के लियरी कॉन्सटैनटाइन, जार्ज हैडले, फ्रैंक वोरेल, इवर्टन वीक्स; दक्षिण अफ्रीका के डडले नोर्स और भारत के के० एस० रणजीतसिंह जी हुए हैं। भारत के आधुनिक क्रिकेट-खिलाड़ियों में विजय मर्चेंट, विजय हजारे, विनू मांकड़ और पोली उमरीगर के नाम उल्लेखनीय हैं। वास्तव में इन नामों का अंत नहीं है।

(देखें : खिलाड़ी, भारत के प्रमुख)

क्रीड़ा-प्रतियोगिताएं (ATHLETICS)

: हर प्राचीन संस्कृति में क्रीड़ा-प्रतियोगिताएं बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान रखती थीं। वर्ष के कुछेक निश्चित दिनों पर लोग क्रीड़ांगण में एकत्र होते और दौड़, तीरंदाज़ी, मल्ल तथा द्वन्द्व प्रतियोगिताएं, शस्त्रचालन आदि की होड़ें होतीं। लेकिन प्राचीन यूनान में उन्होंने जितना संगठित तथा व्यापक रूप प्राप्त किया, उतना और कहीं नहीं। यूनान तब कितने ही नगर-राज्यों में विभक्त था, और इन राज्यों में आपस में प्रायः युद्ध भी होते रहते थे। पर क्रीड़ा-प्रतियोगिताओं के अवसरों पर हर राज्य के प्रतिनिधि एकत्र होते और उनमें मिलकर भाग लेते थे।

प्राचीन यूनान में क्रीड़ा-प्रतियोगिताओं का आरम्भ ओलिम्पिक खेलों के रूप में तेरहवीं सदी ई० पू० में हुआ। क्रीड़ा-प्रतियोगिता के जिस पहले विजेता का नाम हमें मालूम है, वह 776 ई० पू० की दौड़-प्रतियोगिता जीतनेवाले कोरोबस का है। इस दौड़ के लिए प्रतियोगियों को एक 'स्टेड'—192 मीटर—की दौड़ लगानी होती थी। 'स्टेडियम' शब्द 'स्टेड' से ही निकला है। प्राचीन प्रति-

क्रीड़ा-प्रतियोगिताएं



योगिताओं का एक और रिकार्ड स्पार्ता के निवासी चिओनिस का है—656 ई० पू० में लम्बी कुदान में वह 23 फुट 1½ इंच (लगभग 7·5 मीटर) कूदा था।

लेकिन बाद में सारा यूनान रोमन साम्राज्य का एक अंग बन गया और 393 ई० में रोमन सम्राट थिओडोसिअस ने इन प्रतियोगिताओं को बन्द करवा दिया।

आधुनिक क्रीड़ा-प्रतियोगिताओं का प्रारम्भ इंग्लैंड में हुआ। 1810 में सैंडहर्स्ट की शाही सेना अकादेमी में इस तरह की प्रतियोगिताएं हुई थीं। कैंब्रिज विश्वविद्यालय में इनका आरम्भ 1857 में, और ऑक्सफोर्ड में 1860 में हुआ। 1880 में शौकिया क्रीड़ा-प्रतियोगिता संस्था की स्थापना हुई और 1913 में अंतर्राष्ट्रीय शौकिया क्रीड़ा-प्रतियोगिता संघ स्थापित किया गया। इसके तत्वावधान में ही विश्व ओलिम्पिक खेल-प्रतियोगिताएं आयोजित की जाती हैं।

क्रीड़ा-प्रतियोगिताओं का उद्देश्य मनुष्य में खिलाड़ी-भावना पैदा करना है। इससे लोग हिलमिलकर रहना सीखते हैं। अब तो इन प्रतियोगिताओं का इतना प्रचार हो गया है कि विद्यार्थी-जीवन के बाद भी लोग इनका अभ्यास करते हैं और इनमें भाग लेते रहते हैं।

(देखें : ओलिम्पिक खेल)

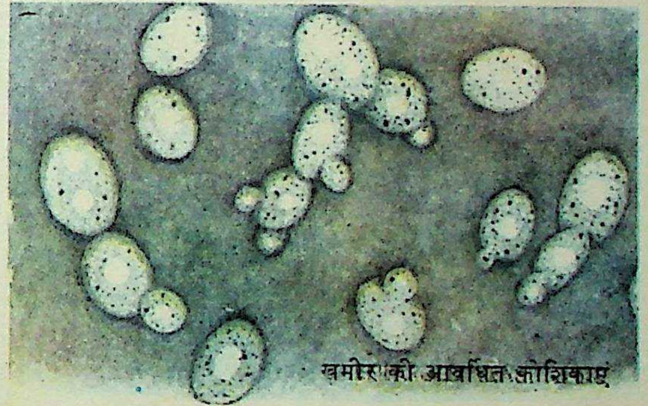
क्षय रोग (TUBERCULOSIS) : पहले बहुत बड़ी संख्या में लोग इस रोग के शिकार होते थे। अब डाक्टरों ने पता लगा लिया है कि इस रोग के कारण क्या हैं और इसे फैलने न देने के क्या उपाय हैं तथा इसे किस प्रकार ठीक किया जा सकता है।

क्षय रोग छड़ी की शक्ल के बैक्टीरिया या दंडाणुओं (Bacilli) के कारण होता है। क्षय छूत का रोग है और इसके बैक्टीरिया एक आदमी से दूसरे में बड़ी जल्दी पहुंच जाते हैं। इसलिए क्षय के रोगियों को स्वस्थ मनुष्यों से दूर रखना बहुत आवश्यक है।

अगर प्रारंभिक अवस्था में ही इस रोग का पता चल जाए तो इसे ठीक किया जा सकता है। दुर्भाग्य से यह रोग ऐसा है कि रोगी बहुत दिनों तक यह समझ ही नहीं पाता कि उसे क्षय रोग हो गया है। इसलिए सबसे अच्छा उपाय यह है कि मनुष्य साल में एक बार अपनी डाक्टरी परीक्षा कराता रहे। अगर परीक्षा में यह सिद्ध हुआ कि उसे क्षय रोग है तो डाक्टर उसका इलाज शुरू कर देगा। क्षय के रोगी के लिए आराम, ताज़ी हवा और अच्छी खूराक बहुत ज़रूरी है।

क्षय को तपेदिक, दिक और टी० बी० भी कहा जाता है। सामान्य जनता आज भी इसे असाध्य रोग मानती है, यद्यपि यह सत्य है कि हमारे देश के दर्जनों अस्पतालों और सेनिटोरियमों में प्रति वर्ष हज़ारों व्यक्ति इस रोग पर विजय प्राप्त करने में सफल होते हैं। असल बात यह है कि इस रोग का इलाज इतना लम्बा और महंगा है कि देश के अधिकांश गरीब लोग उसे निभा नहीं पाते। इसीलिए कभी-कभी क्षय को 'राज रोग' भी कहा जाता है। स्वतन्त्रता के बाद से भारत सरकार ने इस महारोग का उन्मूलन करने का बीड़ा उठाया है। प्रति वर्ष क्षय उन्मूलन के लिए टी० बी० सील की बिक्री द्वारा धन-संग्रह किया जाता है। सरकार को अपने प्रयास में सफलता भी मिली है।

खमीर (YEASTS) : कुछ पौधे इतने छोटे होते हैं कि उन्हें बिना सूक्ष्मदर्शी के देखा ही नहीं जा सकता। खमीर या यीस्ट की गणना भी इन्हीं में होती है। खमीर का हर पौधा एक ही कोशिका का बना होता है। खमीर डबल रोटियां और अलकोहल (मद्यसार) बनाने के काम आता है।


खमीर की आवर्धित कोशिकाएं

खमीर के पौधे लगभग रंगहीन होते हैं। ये हरे पौधों की तरह अपना भोजन तैयार नहीं कर सकते। इनको अपना भोजन तैयार मिलना चाहिए। इनकी खूराक शर्करा है। लेकिन शर्करा पानी में घुली होनी चाहिए।

जहां तापमान अधिक हो और खमीर के पौधों को अपना भोजन मिल जाए, वहां ये बड़ी आसानी से उग सकते हैं। खमीर के बड़े पौधों पर अधिकतर छोटी-छोटी गांठें उभर आती हैं। ये वास्तव में या तो कल्ले होते हैं या नन्हे पौधे। फिर इन कल्लों में से भी और कल्ले फूटते हैं। कभी-कभी ये कल्ले एक लड़ी की शक्ल ले लेते हैं। प्रायः ये टूटकर अलग भी हो जाते हैं और इनकी अपनी लड़ियां शुरू हो जाती हैं।

अपनी खूराक ग्रहण करने और बढ़ने के क्रम में इनसे कुछ पदार्थ निकलते हैं जो इनके लिए बेकार होते हैं। ये पदार्थ होते हैं, अलकोहल और कार्बन डाइऑक्साइड नामक गैस।

खमीर के पौधों से निकलनेवाली कार्बन डाइऑक्साइड के कारण ही डबल रोटी फूलती है। डबल रोटी की लोई लोचदार होती है। लोई में मिली हुई शर्करा को खाकर खमीर के पौधे अलकोहल और कार्बन डाइऑक्साइड पैदा

करते हैं। कार्बन डाइऑक्साइड लोई को फुलाती है। इस गैस को स्थान देने के लिए लोई फैलती है। कुछ समय बाद लोई में कार्बन डाइऑक्साइड के बुलबुले तैयार हो जाते हैं। इस तरह लोई और अधिक स्थान घेर लेती है। जब डबल रोटी सेंकी जाती है तो गर्मी से खमीर के पौधे मर जाते हैं, अलकोहल उड़ जाता है और कार्बन डाइऑक्साइड भी उड़ जाती है। जहां गैस के बुलबुले थे वहां खाली स्थान रह जाता है। डबल रोटी अब हल्की हो जाती है।

फलों में पाई जाने वाली शर्करा भी खमीर के पौधों की खूराक होती है। ये शर्करा को खा जाते हैं और तब फल खट्टा हो जाता है। उसकी अधिकांश कार्बन डाइऑक्साइड उड़ जाती है और अलकोहल का अधिकतर भाग फल के रस में रह जाता है।

फल के रस के खट्टा होने को खमीर उठना कहते हैं। लोग अक्सर शराब तैयार करने के लिए ही फलों के रसों में खमीर उठाते हैं।

हवा में हमेशा खमीर के पौधे मौजूद रहते हैं। अगर फल के रस को खुला छोड़ दिया जाए तो उसमें खमीर के पौधे आ गिरेंगे और अपनी क्रिया शुरू कर देंगे।

खमीर की 'टिकियाएं' पंसारी की दूकान से खरीदी जा सकती हैं। हर टिकिया में लाखों खमीर के पौधे होते हैं। टिकिया में इतनी शर्करा या पानी नहीं होता कि वे बढ़ सकें। इसके अलावा, उन्हें ठंडे स्थान पर रखा जाता है ताकि खमीर के पौधे बढ़ न सकें। खमीर की टिकिया से डबल रोटी बनाने में आसानी होती है। (देखें : रोटी)

खसरा (MEASLES) : यह प्रायः बच्चों का रोग माना जाता है। बड़ों को भी खसरा निकल सकता है, लेकिन उनमें से अधिकांश को यह तभी निकल चुकता है जबकि वे बच्चे होते हैं। किसी व्यक्ति को यदि एक बार खसरा निकल आए तो प्रायः उसे फिर नहीं निकलता।

खसरा छूत का रोग है। जिसे यह रोग हो उसके साथ रहने से दूसरे को भी हो जाता है। साधारणतया छूत लगने के लगभग 10 दिन बाद व्यक्ति खसरे से बीमार पड़ता है।

शुरू-शुरू में खसरा बहुत कुछ जुकाम जैसा होता है। यह सिरदर्द और छींकों से शुरू होता है, किन्तु शीघ्र ही बीमार के शरीर पर छोटे-छोटे दाने निकल आते हैं। उसे तेज़ ज्वर भी हो सकता है और वह अधिक बीमार भी पड़ सकता है। खसरे वाले व्यक्ति की तीमारदारी आवश्यक है। खसरा रोगाणुओं से होता है। ये रोगाणु इतने छोटे होते हैं कि शक्तिशाली सूक्ष्मदर्शी से भी दिखाई नहीं देते।

खांसी (COUGH) : किसी भी कारण से जब गले या श्वास-नलिकाओं में उत्तेजना पैदा होती है तो आदमी खांसता है, चाहे वह उत्तेजना धुएं, धूल या गर्द के कारण हो, या कीटाणुओं के कारण, या बलगम के कारण। कभी-कभी थोड़ा-बहुत खांसना कोई बीमारी नहीं है, लेकिन यदि खांसी बार-बार उठे तो वह ज़रूर चिन्ता का विषय है और उसका इलाज करवाना चाहिए।

मोटे तौर पर खांसी तीन तरह की होती है : सूखी खांसी, जिसमें बलगम नहीं आता या बहुत ही कम आता है; तर खांसी, जिसमें आसानी से, बल्कि ज़्यादा मात्रा में बलगम निकलता है; और दौरे के रूप में उठनेवाली खांसी, जिसमें रोगी खांसते-खांसते परेशान हो जाता है और उसका मुंह लाल हो जाता है। खांसी कई बार क्षय (तपेदिक) और श्वास (दमा) जैसे गंभीर रोगों का लक्षण या पूर्वरूप होती है, इसलिए इसकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए।

खानाबदोश (NOMADS) : खानाबदोश लोगों का कोई निश्चित ठिकाना नहीं होता। ये किसी एक जगह अधिक दिन टिककर नहीं रहते और न खेती वगैरह करते हैं। ये लोग अपने जानवरों के लिए चरागाहों आदि की तलाश में बराबर घूमते रहते हैं।

ये लोग आराम की ज़िंदगी नहीं जीते। अधिकतर खानाबदोश कबीले तंबुओं में रहते हैं। ये अपने साथ कम से कम और बहुत ही ज़रूरी सामान रखते हैं। उठने-बैठने और सोने वगैरह के लिए ये कंबलों और खालों का प्रयोग



रेगिस्तानों के खानाबदोश चरागाहों की तलाश में अपने पशुओं के साथ इधर से उधर घूमते रहते हैं। वे जब चलते हैं तो तंबुओं के अपने घरों को उखाड़कर व लपेटकर पशुओं पर लाद लेते हैं।

करते हैं। ये लोग खाने-पकाने के लिए कुछ वर्तन और पहनने-ओढ़ने के लिए कुछ कपड़े ही अपने साथ रखते हैं।

आजकल खानाबदोश अधिकतर रेगिस्तानों या रेगिस्तानी इलाकों में रहते हैं। सहारा और अरब के रेगिस्तानों में बहुत से खानाबदोश कबीले घूमते रहते हैं। लैप और एस्कीमो जाति के अधिकांश लोग खानाबदोश हैं। गरम रेगिस्तानों के खानाबदोश भेड़, बकरी, घोड़े और ऊंट पालते हैं। उत्तर के बर्फीले प्रदेशों के खानाबदोश रेंडियर पालते हैं।



एस्कीमो खानाबदोश अपनी बर्फगाड़ी में कुत्तों को जोतते हैं।

आम तौर से खानाबदोश लोग शांतिप्रिय होते हैं। जब ये किसी बस्ती के पास पहुंचते हैं तो बस्ती के लोगों के साथ मिलजुलकर रहते हैं। ये बस्ती के लोगों को भेड़, बकरी, ऊंट, लकड़ी और ऊन वगैरह देते हैं और बदले में उनसे अनाज और ज़रूरत की दूसरी चीज़ें प्राप्त करते हैं।

लेकिन ऐसे मौके भी आए हैं जब खानाबदोशों को अपने लिए और अपने जानवरों के लिए खाने की चीज़ें जुटाना मुश्किल हो गया। तब इन्होंने बस्ती के लोगों को लूटना शुरू कर दिया। एशिया और पूर्वी यूरोप में कई बार खानाबदोश जातियों ने हमले किए। इनमें से कुछ लोग वहीं बस गए और बस्ती के लोगों की तरह रहने लगे। संसार के उन क्षेत्रों में जहां अब उपजाऊ ज़मीनें और उद्योग-धंधे हैं, वहां कभी सिर्फ खानाबदोश जातियां रहती थीं। लेकिन संसार के उजाड़ इलाकों में शायद हमेशा खानाबदोश लोग घूमते रहेंगे। (देखें : जिप्सी)

खिलाड़ी, भारत के प्रमुख (NOTABLE INDIAN PLAYERS AND ATHLETES) : खेल-कूद के क्षेत्र में भारत को विश्व के अग्रणी राष्ट्रों में तो नहीं गिना जा सकता, लेकिन समय-समय पर यहां ऐसे अनेक खिलाड़ी हुए हैं जिनपर विश्व का कोई भी राष्ट्र गर्व कर सकता है।

भारत की राष्ट्रीय क्रिकेट प्रतियोगिता का नाम रणजी ट्राफी प्रतियोगिता है। इसका यह नाम भारत के महानतम क्रिकेट खिलाड़ी जामनगर के जामसाहेब स्व० रणजीतसिंह के नाम पर रखा गया है। रणजी भारत की ओर से कभी क्रिकेट नहीं खेले। रणजी के ज़माने में भारत के इने-गिने लोग ही क्रिकेट खेलते थे। रणजी की शिक्षा-दीक्षा इंग्लैंड में हुई और वे इंग्लैंड की ओर से ही क्रिकेट खेलते थे। इंग्लैंड और आस्ट्रेलिया में वे रणजी के नाम से विख्यात थे। क्रिकेट के प्रायः सभी श्रेष्ठ समीक्षकों ने रणजी की गणना विश्व के सर्वश्रेष्ठ बल्लेबाज़ों में एकस्वर से की है।

आजकल भारतीय क्रिकेट टीम के कप्तान हैं नवाब पटौदी। इनके स्वर्गीय पिता भी (वे भी नवाब पटौदी के नाम से ही प्रसिद्ध थे) भारत के ही नहीं, विश्व के माने हुए बल्लेबाज़ थे। अस्वस्थ हो जाने के कारण नवाब पटौदी अधिक समय क्रिकेट न खेल सके, लेकिन अल्पकाल में ही उन्होंने संसार के सभी क्रिकेट-प्रेमी देशों पर अपनी धाक जमा दी। किसी भी टीम के खिलाफ सौ-पचास रन बना देना उनके लिए मामूली बात थी और जब तक वे आउट नहीं हो जाते थे तब तक इंग्लैंड की टीम को अपनी जीत का पूरा विश्वास रहता था।

क्रिकेट के क्षेत्र में सुभाष गुप्ते का नाम विश्व के सर्वश्रेष्ठ धीमे गेंदबाज़ों में आता है। दरअसल क्रिकेट के क्षेत्र में अंतर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त भारतीय खिलाड़ियों की संख्या बहुत अधिक है। उनमें से कुछ के नाम इस प्रकार हैं—अमरसिंह, निसार, विजय मर्चेंट, हजारे, के० सी० नायडू, विनू मांकड़, दत्तू फडकर, उमरीगर, अमरनाथ और जसू पटेल।

हॉकी में तो भारत हमेशा विश्व की चोटी पर रहता आया है। ध्यानचन्द को दुनिया-भर में 'हॉकी के जादूगर' के रूप में ही याद किया जाता है।

इस महान खिलाड़ी की कप्तानी में भारत अनेक वर्षों तक विश्वविजेता रहा है। ध्यानचन्द के अलावा अनेक भारतीय खिलाड़ी अपने उत्तम खेल के लिए विश्वविख्यात हैं जिनमें रूपसिंह, केशव, जेंटिल, दिग्विजयसिंह 'बाबू', बलबीर, राजेन्द्रसिंह, लक्ष्मन, चिरंजीतसिंह और ऊधमसिंह आदि के नाम लिए जा सकते हैं। इनमें 'बाबू' का नाम विशेष उल्लेखनीय इसलिए है कि उसे विश्वप्रसिद्ध 'हैम्स' ट्राफी प्रदान की गई थी जो विश्व के सर्वश्रेष्ठ खिलाड़ियों को ही प्रदान की जाती है।

टेनिस के क्षेत्र में भारत के रामनाथन कृष्णन् विश्व के श्रेष्ठतम खिलाड़ियों में माने जाते हैं। कृष्णन् से पहले के खिलाड़ियों में गौस मुहम्मद, सुमन्त मिश्रा और नरेश कुमार तथा उनके बाद के खिलाड़ियों में जयदीप मुखर्जी, प्रेमजीत लाल और शिवप्रकाश मिश्र के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

फुटबॉल में चुन्नी गोस्वामी, जरनैलसिंह, रामबहादुर, बलराम, थंगराज आदि भारत के श्रेष्ठ खिलाड़ी हैं। दरअसल भारत में आजकल फुटबॉल का पुनरुत्थान हो रहा है और यह आशा की जा रही है कि जल्दी ही भारत की

गणना फुटबॉल खेलनेवाले श्रेष्ठ देशों में होने लगेगी।

खेल-कूद के प्रसंग में भारत के विश्वविख्यात 'हवाई सिख' मिलखासिंह का उल्लेख हमेशा आदर के साथ किया जाता है। 'बाबू' के बाद मिलखा ऐसा एकमात्र भारतीय खिलाड़ी है जिसे 'हैम्स' ट्राफी से सम्मानित किया गया है। बाधा-दौड़ के राष्ट्रीय विजेता और भारतीय ओलिम्पिक दल के कप्तान गुरुवचनसिंह को भी भारत के सर्वश्रेष्ठ खिलाड़ियों में माना जाता है।

बैडमिंटन में नंदू नटेकर अंतर्राष्ट्रीय स्तर के ख्यातिप्राप्त भारतीय खिलाड़ी हैं। डेन्मार्क के विश्वविख्यात खिलाड़ी अर्लैंड कौप्स को वे अनेक बार हरा चुके हैं।

बिलियर्ड में भारत ने एक महान खिलाड़ी उत्पन्न किया है जिसका नाम है विल्सन जॉन्स। जॉन्स को 1964 में बिलियर्ड का विश्वविजेता घोषित किया गया था।

अन्य अंतर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त खिलाड़ियों में विख्यात निशानेबाज़ बीकानेर-नरेश कर्णीसिंह, जकार्ता में हुए एशियाई खेलों में दुहरा स्वर्णपदक प्राप्त करनेवाले मुक्केबाज़ पद्मबहादुरमल्ल, इंग्लिश चैनल को पार करनेवाली प्रथम एशियाई महिला आरती गुप्ता, कारों की दौड़ में अपनी धाक जमानेवाले आर्थर किन्नीलाल आदि का नाम उल्लेखनीय है।

विश्वविजेता गामा और अद्भुतकर्मा राममूर्ति का जन्म भी भारत में ही हुआ था। मलवा, गणपति अंडेलकर, मारुति माने आदि पहलवान आज भी भारत की कीर्तिपताका को ऊंचा किए हैं।

खेलकूद (GAMES AND SPORTS) : दुनिया के हर कोने में बच्चे और वयस्क तरह-तरह के खेल खेलते हैं। कुछ खेलों में हर आदमी स्वतन्त्र रूप से सिर्फ अपने लिए खेलता है जबकि कुछ खेलों में वह किसी टीम का एक अंग होता है। हर खेल के कुछ अपने नियम होते हैं, और हर खेल एक प्रकार की प्रतियोगिता होता है। अंग्रेज़ी में फुटबॉल, मुक्केबाज़ी, टेनिस और पोलो आदि खेलों को 'स्पोर्ट्स' के नाम से पुकारा जाता है। इन खेलों में



विशेष शारीरिक योग्यता की आवश्यकता होती है। खेल-कूद में मज़ा तो आता ही है, इसके और भी अनेक लाभ हैं। टीम बनाकर खेले जानेवाले खेलों से आदमी दूसरे लोगों से मिल-जुलकर रहना सीखता है। सभी खेल



खिलाड़ियों को हार-जीत की परवाह न कर ईमानदारी से खेलना सिखाते हैं। बहुत-से खेल आदमी के शरीर को मज़बूत बनाते हैं। प्राचीन यूनानी लोग शारीरिक शक्ति-प्रतियोगिताओं में इतना विश्वास करते थे कि उन्होंने ओलिम्पिक खेल प्रतियोगिता का श्रीगणेश कर दिया।

(देखें : ओलिम्पिक खेल; क्रीड़ा-प्रतियोगिताएं)

खेल, प्रमुख भारतीय (POPULAR INDIAN GAMES): लोगों का अनुमान है कि संसार का सबसे पुराना खेल शिकार है। भारत में इसका प्राचीन नाम आखेट या मृगया है। आदिम युगों में मनुष्य अपना पेट भरने के लिए जानवरों को मारता था, लेकिन आगे चलकर मृगया को मनोरंजन और शारीरिक शक्ति बढ़ाने का साधन मान लिया गया। वास्तव में किसी भी खेल की ये दो अनिवार्य विशेषताएं हैं—यानी एक तो यह कि उससे खिलाड़ी का मनोरंजन या मनोविनोद होता हो और दूसरी यह कि उससे खिलाड़ी की शारीरिक शक्ति बढ़ती हो। मृगया का एक अतिरिक्त लाभ यह भी था कि निहत्थे और सीधे-सादे लोगों को इसके कारण राजा या सरदारों द्वारा खूंख्वार जंगली जानवरों से मुक्ति मिल जाती थी।

मृगया के कारण ही अस्त्र-विद्या का महत्त्व बढ़ गया। अस्त्र-विद्या वैसे तो युद्ध में काम आती थी लेकिन हमारे यहां अस्त्र-विद्या और युद्ध दोनों को ही शस्त्रधारी क्षत्रियों का धर्म और मनोविनोद माना गया है। आज बन्दूक और पिस्तौल की निशानेबाज़ी की जैसी प्रतियोगिता होती है, वैसी ही शस्त्रास्त्र-प्रतियोगिताएं भारत में पुराने ज़माने से होती आई हैं।

इसी प्रकार मल्लविद्या भारत का एक अत्यन्त प्राचीन खेल है। प्राचीन काल में हमारे यहां धर्मयुद्ध होता था। एक आदमी से एक आदमी ही लड़ता था। बाकी सब दर्शक होते थे। युद्ध करते-करते यदि किसी योद्धा के शस्त्रास्त्र खत्म हो जाते थे तो दूसरा योद्धा अपने निहत्थे शत्रु पर शस्त्र नहीं चलाता था। ऐसे में हार-जीत का निर्णय मल्ल-युद्ध से होता था। जो योद्धा दूसरे को पटक देता था वही विजयी माना जाता था। इसलिए प्रायः सभी योद्धा—चाहे उनका प्रिय शस्त्रास्त्र कोई भी हो—मल्लविद्या में निपुणता अवश्य प्राप्त करते थे। भीम, दुर्योधन, मुष्टिक, चाणूर और जरासंध महाभारत काल के विख्यात मल्ल थे।

हमारे देश में आज जो खेल प्रचलित हैं उन्हें मुख्य रूप से दो भागों में बांटा जा सकता है—मैदान में खेले जानेवाले खेल और घर में खेले जानेवाले खेल। इन दोनों को भी फिर दो तरह से बांटा जा सकता है—भारतीय खेल और विदेशी खेल। यहां केवल उन्हीं खेलों का परिचय दिया जा रहा है जिन्हें भारतीय कहा जा सकता है।

सबसे पहले पोलो को लें। यह मूल रूप से भारतीय नहीं ईरानी खेल है। लेकिन एक तो यह अत्यन्त प्राचीन काल से यहां प्रचलित है, दूसरे इसने अपना वर्तमान रूप भारत में ही लिया है, इसलिए इसे भारतीय खेल कहा जा सकता है। पहले इसे चौगान कहा जाता था। कुतुब मीनार का निर्माता और गुलाम वंश का प्रथम प्रतापी सम्राट कुतुबुद्दीन एबक चौगान खेलते समय ही घोड़े से गिरकर मरा था। पोलो भारत के जन-साधारण का खेल नहीं है। यह राजा-महाराजाओं और अमीरों का खेल है। भारतीय सेना पोलो के अच्छे खिलाड़ी पैदा करती रही है। प्रसिद्ध भारतीय पोलो टीम 'रटनडा' विश्व की श्रेष्ठ टीमों में गिनी जाती है।

कबड्डी को भारत का राष्ट्रीय खेल कहा जा सकता है। बिना लागत का यह अत्यन्त मनोरंजक एवं शक्ति-वर्द्धक खेल प्रायः सम्पूर्ण भारत में किसी न किसी रूप में प्रचलित है। महाराष्ट्र में इसीका एक पृथक् रूप प्रचलित है जिसे 'खो खो' कहते हैं और जो सम्पूर्ण महाराष्ट्र में अत्यन्त लोकप्रिय है।

मैदान के अन्य लोकप्रिय भारतीय खेलों में गुल्ली-डंडा, गेंदतड़ी, पतंगबाज़ी और बटेरबाज़ी आदि का नाम लिया जा सकता है। शहरी जनता का रुझान धीरे-धीरे इन खेलों की ओर से हटकर हॉकी-क्रिकेट आदि आधुनिक खेलों की ओर होता जा रहा है जो एक हद तक अच्छा ही है क्योंकि अधिकांश भारतीय खेलों में अब मनोरंजन ही प्रमुख हो गया है, उनकी शक्तिवर्द्धकता नष्टप्राय हो चली है।

घर में खेले जानेवाले खेलों में मनोरंजन ही प्रधान होता है। ताश, चौपड़ और शतरंज भारत में अत्यन्त प्राचीनकाल से खेले जा रहे हैं। इसके अलावा अलग-अलग प्रदेशों में अन्य अनेक खेल प्रचलित हैं। दरअसल ऐसे खेलों का आविष्कार निरन्तर होता ही रहता है।

गुर्दे (KIDNEYS) : पीठ के निचले भाग में, रीढ़ के दोनों ओर, सेम के बीज की शक्ल का एक-एक अंग है। इन्हें गुर्दे या वृक्क कहते हैं। प्रत्येक गुर्दा करीब चार इंच लम्बा, दो इंच चौड़ा और एक इंच मोटा होता है। प्रत्येक गुर्दे में लाखों कुंडलीदार पतली नलियां होती हैं। रक्त इन नलियों के अन्दर से होकर बहता है और रक्त में घुली गन्दगी इनमें छन जाती है।

गुर्दों का काम तरल मल-पदार्थों की सफाई करना है। रक्त में मिले अनावश्यक अम्ल या क्षार को और अन्य हानिकारक पदार्थों को गुर्दे मूत्र के रूप में शरीर से बाहर निकाल देते हैं। गुर्दे मूत्र की मात्रा को आवश्यकतानुसार घटा या बढ़ा देते हैं और इस तरह रक्त को ज़्यादा पतला या ज़्यादा गाढ़ा होने नहीं देते हैं। ये शरीर की अनावश्यक गर्मी को भी, मूत्र द्वारा, बाहर निकाल देते हैं और इस प्रकार ताप को नियंत्रित रखते हैं।

गुर्दों द्वारा छानी गई सारी गन्दगी गुर्दों में से एक थैली में चली जाती है, जहां वह कुछ देर के लिए जमा रहती है। इस थैली को मूत्राशय (ब्लैडर) कहते हैं। जब-जब यह थैली काफी भर जाती है तो हमें इसे खाली करने की ज़रूरत महसूस होती है और मूत्र-त्याग करना पड़ता है।



गोता लगाने के विभिन्न ढंग

गोता लगाना (DIVING) : तैरने की कला जितनी पुरानी है उतनी ही पुरानी गोता लगाने की कला भी है। हमें मालूम है कि सदियों से लोग मोती और स्पंज की खोज में समुद्र में गोता लगाते रहे हैं। मोती की खोज करनेवाले गोताखोर किसी भारी वज़न को कमर में बांधकर सतह से 15 या 20 मीटर नीचे तक गोता लगा सकते हैं।

कुछ प्रसिद्ध लोककथाओं और पौराणिक कथाओं में भी गोता लगाने की घटनाओं के वर्णन मिलते हैं। अगर आप कभी वाराणसी, प्रयाग या ऐसे ही किसी तीर्थस्थान की यात्रा करें तो आपको वहां नदी के किनारे मछुओं के लड़के गोता लगाते हुए दिखाई दे जाएंगे। ये लड़के गोता लगाने में इतने होशियार होते हैं कि अगर आप नदी की बीच धारा में इन्हें दिखाकर पैसा फेंकें तो ये पलक मारते ही डुबकी लगाकर बीच पानी में से पैसा निकाल लाएंगे।

लेकिन तैराकी के एक खेल के रूप में गोता लगाने की

कला अभी कुछ ही वर्षों में लोकप्रिय हुई है। अब ओलिम्पिक के समान खेल-कूद प्रतियोगिताओं में भी तैराकी और गोताखोरी या 'डाइविंग' को सम्मिलित कर लिया गया है। गोताखोर या 'डाइवर' कई प्रकार के करतब दिखाते हुए गोता लगाते हैं। कुछ लोग सिर के बल, कुछ पैरों के बल और कुछ गुलांट लगाते हुए पानी में कूदते हैं।

सामने की सादी छलांग में गोताखोर अपनी बांहों को सिर के ऊपर सीधा फैला लेता है। हथेलियां अलग-अलग खुली रहती हैं, सिर्फ अंगूठे एक-दूसरे को छूते हैं। छलांग लगाकर जब वह कूदता है तो सबसे पहले उसकी हथेलियां पानी में प्रवेश करती हैं। इसे 'फ्रंट डाइव' भी कहते हैं। अच्छा गोताखोर जब इस प्रकार पानी में प्रवेश करता है तो छींटे बहुत कम या बिलकुल ही नहीं उड़ते।

गोता लगाने के पहले हवा में उछलने के लिए गोताखोर तख्ते या 'स्प्रिंगबोर्ड' का प्रयोग करता है। फ्रंट डाइव में वह अपने कद की लगभग दो-तिहाई ऊंचाई तक हवा में उछलता है। इस प्रकार उछलने से वह पानी में अधिक सफाई से प्रवेश कर सकता है।

साथ के चित्र में गोता लगाने के अनेक प्रकारों में से कुछ दिखाए गए हैं। गोता लगाने के लिए काफी अभ्यास और होशियारी की ज़रूरत होती है।

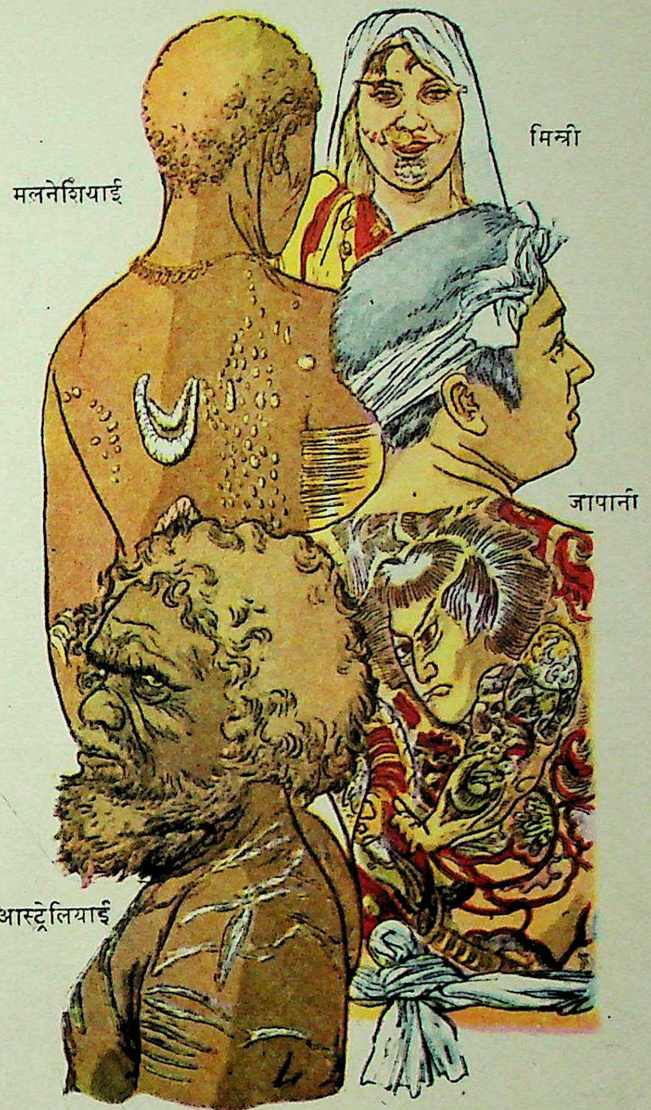
अनाड़ी गोताखोर सीधा पेट के बल पानी पर गिरकर अपने को गंभीर चोट पहुंचा सकता है। पानी में हमेशा हाथों और सिर के बल या पैरों के बल प्रवेश करना चाहिए। कम गहरे पानी में ऊंचाई से गोता लगाने पर बड़ी गंभीर चोट आ सकती है। कूदने के पहले पता लगा लेना चाहिए कि पानी काफी गहरा तो है।

'स्किन-डाइविंग' एक नये प्रकार की गोताखोरी है। इसमें गोताखोर सांस लेने के यन्त्रों आदि से सुसज्जित होकर पानी में डुबकी लगाता है और काफी लम्बे समय तक पानी के नीचे रह सकता है। गहरे समुद्र में की जानेवाली गोताखोरी मामूली गोताखोरी से बहुत भिन्न होती है। (देखें : स्किन-डाइविंग)

गोदना (TATTOOING) : शरीर पर विभिन्न प्रकार के चिह्न आदि गुदवाने का रिवाज बहुत पुराना है। प्राचीन मिस्र देश की किसी-किसी ममी के शरीर पर गोदने के चिह्न बने हुए हैं। किसी ज़माने में विश्व के अधिकांश भागों में यह रिवाज पाया जाता था। अफ्रीका, प्रशांत महासागर के द्वीपों और भारत में रहनेवाले अनेक कबीलों में यह रिवाज आज भी पाया जाता है।

गोदने में एक प्रकार की सूई का प्रयोग किया जाता है जो शरीर की खाल में छेद करने के साथ-साथ उन छेदों में स्याही या रंग छोड़ती चलती है। एक बार गुदवाने के बाद ये निशान कभी नहीं मिटते।

गुदवाने में कष्ट होता है। शायद किसी ज़माने में



लोग इस तकलीफ को हंसते-हंसते सहकर अपनी बहादुरी दिखाने के लिए ही अपना शरीर गुदवाते थे। कुछ लोग सजावट के लिए भी शरीर के विभिन्न अंगों को गुदवाते हैं, लेकिन बहुत से लोग धार्मिक भावना से प्रेरित होकर ऐसा करते हैं।

घी (GHEE) : भोजन में चिकनाई (वसा) का होना आवश्यक है। यूरोपीय देशों में चिकनाई के लिए प्रायः मक्खन का उपयोग होता है। भारत में मक्खन से ज़्यादा चलन घी का है। घी में विटामिन 'डी' की मात्रा पर्याप्त रहती है। घी शुद्ध चर्बी है, और यह शरीर में जलकर शक्ति और गर्मी पैदा करता है।

घी दो तरह से तैयार किया जाता है—दही से और दूध से। दही को पतला करके खूब बिलोया जाता है, जिससे मक्खन अलग हो जाता है। मक्खन को गरम करने और उसमें से छाछ का अंश निकाल देने से घी तैयार हो

जाता है। दूध से घी तैयार करने के लिए, पहले दूध में से क्रीम निकाली जाती है और फिर क्रीम से घी तैयार किया जाता है। गाय का घी हलका पीलापन लिए होता है, भैंस का घी सफेद होता है।

आम बोलचाल में वनास्पति भी घी कहलाता है। वस्तुतः वह घी नहीं, तेल होता है जिसे एक विशेष विधि से जमाकर रंग-रूप में बिलकुल घी-जैसा बना दिया जाता है।

चाकलेट और कोको (CHOCOLATE AND COCOA):

चाकलेट और कोको कैकेओ वृक्ष के बीजों से बनाए जाते हैं। इसके वृक्ष लगभग 20 फुट ऊंचे होते हैं। तने और शाखाओं पर फूल और फल आते हैं।

फल 12 इंच से लम्बे हो सकते हैं। बीज बादाम की आकृति के होते हैं। उन्हें पके फलों में से निकालकर कारखाने भेज देते हैं। वहां उन्हें भूना जाता है। उनका छिलका चटक जाता है। उसे उड़ा देते हैं।

चाकलेट बनाने के लिए गिरियों को गर्म बेलनों के



चाकलेट के फलों में से गूदा और बीज निकाले जाते हैं।

बीच पीसते हैं। कभी-कभी चीनी भी मिलाते हैं। कोको बनाने के लिए चाकलेट में से उसका तेल अलग कर देते हैं। यह तेल जमनेवाला होता है। यह मरहम और

साबुन बनाने में काम आता है।

चाकलेट मैक्सिको का पुराना पेय है। वहां इसमें मसाले डालकर पीते थे। दूध मिलाकर पीने की रीति इंग्लैंड में लगभग 300 वर्ष पहले आरम्भ हुई। आजकल चाकलेट और कोको पेयों और मिठाइयों को स्वादिष्ट बनाने के लिए इस्तेमाल किए जाते हैं। ये अधिकतर ब्राज़ील और अफ्रीका के गर्म देशों से आते हैं।

चाय (TEA) : बाज़ार में हमें डिब्बे में जो चाय मिलती है वह चाय की सुखाई हुई पत्तियों की बनी होती है। ये पत्तियां एक सदाबहार पौधे की हैं। चाय बगानों में इन पौधों को छांट दिया जाता है, ताकि वे तीन फुट से अधिक ऊंचे न हो सकें।

जब चाय के पौधे तीन साल के हो जाते हैं, तब इनकी पत्तियां पहली बार चुनने लायक होती हैं। केवल कलियां और बहुत छोटी पत्तियां ही चुनी जाती हैं। पत्तियां चुनने का काम ज़्यादातर औरतें करती हैं। पीठ पर टोकरियां लटकाए हुए वे पौधों की कतार के किनारे-किनारे बढ़ती जाती हैं। एक ऋतु में पत्तियां कई बार चुनी जाती हैं।

चाय की कई किस्में होती हैं। इनमें से अधिकांश को हरी चाय और काली चाय इन दो वर्गों के अन्तर्गत रखा जा सकता है। दोनों की पत्तियों में कोई अन्तर नहीं होता। अन्तर चुनने के बाद पत्तियों को तैयार करने के तरीके से आता है।

काली चाय तैयार करने के लिए पत्तियों को परातों में एक या दो दिन कुम्हलाने के लिए छोड़ दिया जाता है। फिर उन्हें रोलरों से दबाया जाता है। एक बार उन्हें और फैला दिया जाता है। अब उनमें खमीर उठने लगता है। उनके रंग और गंध में परिवर्तन हो जाता है। काफी दिनों तक खमीर उठते रहने के बाद फिर पत्तियों को गर्म करके खमीर उठना रोक दिया जाता है। उन्हें एक बार फिर रोलरों से दबाया जाता है। इसके बाद उन्हें गर्म घर में रख दिया जाता है, जहां की गरम हवा पत्तियों को सुखा देती है। फिर उनमें से तरह-तरह की पत्तियों (कम टूटी, भुरभुरी, चूरा) को अलग-अलग करके डिब्बों में बन्द कर बाहर भेजने के लिए तैयार कर दिया जाता है।

हरी चाय की पत्तियों में खमीर नहीं उठा होता है। पत्तियों को खमीर उठने के पहले ही दबाकर सुखा लिया जाता है।

चाय की उपज भारत, बर्मा, लंका, चीन, और दक्षिण-पूर्वी एशिया के अन्य देशों में बहुतायत से होती है। चीन आदि देशों में चाय पीने का रिवाज बहुत पुराना है। यूरोप में चाय पीना आज से कोई तीन सौ वर्ष पहले ही शुरू हुआ।

चाय के शौकीन लोगों का चाय बनाने का ढंग भी अपना-अपना होता है। अधिकतर चाय पत्तियों को उबलते हुए पानी में डालकर या पत्तियों पर गरम पानी डालकर बनाई जाती है।

भारत में दार्जिलिंग, असम, कश्मीर, कुमाऊं, नीलगिरि आदि में चाय के बाग हैं। भारत की प्रमुख निर्यात-सामग्रियों में चाय का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

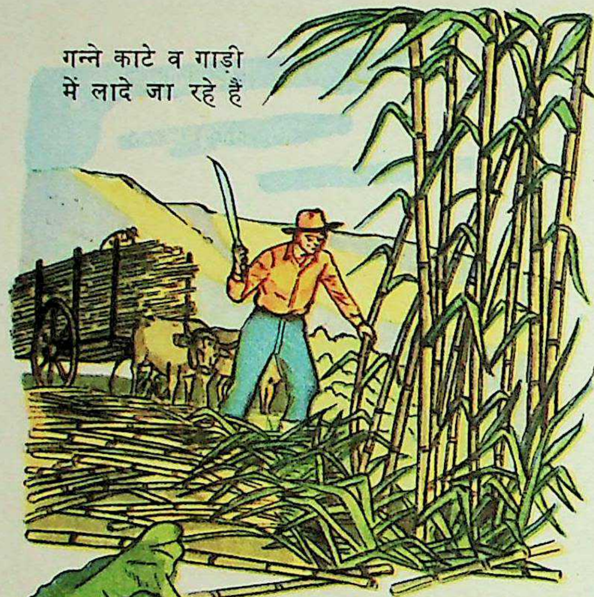
चाय के परिसंस्कार का चीनी और जापानी तरीका

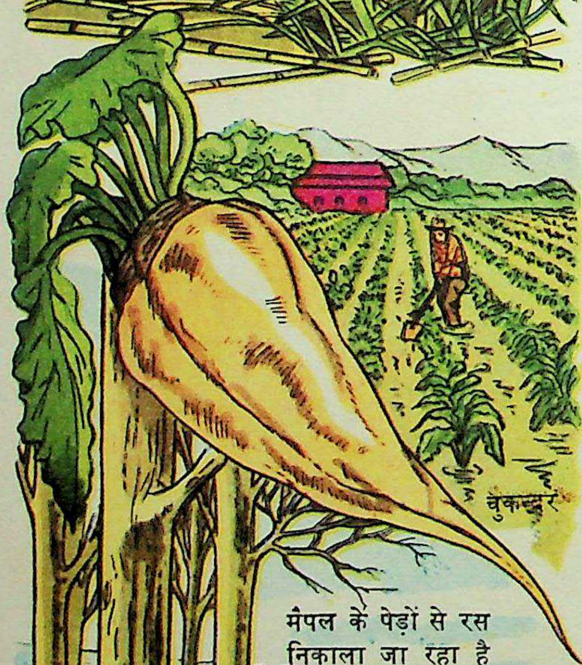


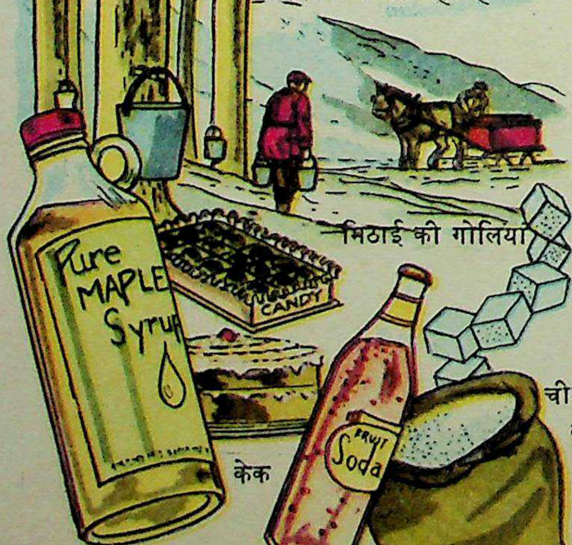
चित्तियां (FRECKLES) : एकदम सफेद मनुष्यों को छोड़कर प्रत्येक मनुष्य की त्वचा में कुछ ऐसा पदार्थ होता है जो त्वचा को रंग देता है। इस पदार्थ को रंगद्रव्य (Pigment) कहते हैं। कुछ जातियों में दूसरों की अपेक्षा अधिक रंगद्रव्य पाया जाता है, मिसाल के तौर पर नीग्रो और आदिवासी लोगों को लिया जा सकता है।

यदि गेहुंए (या गोरे) रंग वाला कोई आदमी बाहर धूप में कई घण्टे लगातार खड़ा रहे तो उसका रंग भूरा-सा पड़ जाता है। ऐसा इसलिए होता है कि धूप के कारण उसकी त्वचा में रंगद्रव्य की मात्रा बढ़ जाती है। कभी-कभी ऐसा होता है कि रंगद्रव्य भूरे रंग की एक पूरी पर्त के रूप में प्रकट नहीं होता, बल्कि उसका रूप छोटे-छोटे धब्बों का होता है। इन्हीं धब्बों को चित्तियां कहते हैं।

चित्तियों और लाल बालों का साथ है। पता नहीं


गन्ने काटे व गाड़ी में लादे जा रहे हैं


चुकन्दर



मैपल के पेड़ों से रस निकाला जा रहा है

मिठाई की गोलियां

चीनी के क्यूब

केक

मैपल चीनी (द्रव)

दानेदार चीनी

क्या कारण है कि जिस आदमी के बाल लाल होते हैं उसकी त्वचा पर चित्तियां ज्यादा होती हैं। ऐसा क्यों होता है—इसके बारे में अभी कुछ नहीं कहा जा सकता।

चीनी (SUGAR) : बहुत से फल मीठे होते हैं क्योंकि उनमें चीनी या शर्करा का अंश होता है। शहद मीठा होता है क्योंकि उसमें भी चीनी होती है। हमारे पूर्वज गुहावासी मानव फल भी खाते थे और शहद भी। इस तरह वे चीनी भी खाते थे, ऐसा कहा जा सकता है। पर हमें चीनी जिस रूप में बाज़ार में मिलती है, इससे मिलती-जुलती कोई चीज़ उनके देखने में कभी नहीं आई होगी।

शुद्ध रूप में चीनी सर्वप्रथम भारतवर्ष में 2,000 साल पहले बनती थी। संस्कृत में इसे 'शर्करा' कहते हैं। भारतीयों से सम्पर्क में आने के बाद अरब लोग भी औषधियों में और उत्सव-भोज आदि के अवसर पर इसका इस्तेमाल करने लगे। अरबी भाषा में इसे 'शक्कर' कहते हैं। अंग्रेज़ी में इसे 'शूगर' कहा जाता है जो अरबी 'शक्कर' से ही बना है। यूरोपीय लोगों को स्पेन में रहनेवाले अरबों से इसका परिचय मिला। उन्होंने इसे पसन्द किया। फिर मसाले आदि ले जाने के लिए भारत आनेवाले व्यापारी-दल अपने साथ चीनी भी ले जाने लगे। धीरे-धीरे चीनी सबके भोजन का अंग बन गई। आजकल संसार में हर साल कोई पांच करोड़ टन चीनी की खपत हो जाती है।

बाज़ार में हमें मिलनेवाली चीनी फलों से या शहद से नहीं बनाई जाती। ज़्यादातर चीनी गन्ने और मीठे चुकन्दर से बनती है।

गन्ने से चीनी बनाने के लिए गन्ने को पेरकर इसका रस निकाल लिया जाता है। इस रस को इतना उबाला जाता है कि इसमें से पानी का अंश करीब-करीब निकल जाता है और गाढ़ा शीरा बन जाता है। शीरे का अधिकांश भाग दानेदार होता जाता है। इसे एक मशीन द्वारा इस तरह तेज़ी से फेंटा जाता है कि दाने शीरे से अलग हो जाते हैं। बचे हुए रस को फिर उबालकर शीरा बनाया जाता है। दानों को सुखा लिया जाता है। ये दाने कुछ रूखे और बादामी रंग के होते हैं। इन्हें कच्ची चीनी कहा जाता है। शुद्ध और रंगहीन होने के बाद यह उस शक्ल में आ जाती है जिसमें कि हम इसे बाज़ार में देखते हैं।

चुकन्दर से चीनी बनाने का तरीका भी करीब-करीब यही है। चुकन्दर की चीनी और गन्ने की चीनी में स्वाद में या देखने में कोई अन्तर नहीं होता।

चीनी अच्छा शक्तिप्रद खाद्य है। पर इसमें कोई विटामिन या खनिज पदार्थ नहीं है। इसमें कोई ऐसा पदार्थ भी नहीं है जो शरीर-निर्माण में सहायक हो। ज़्यादा चीनी खाने से खतरा यह है कि इससे हमारी क्षुधा शान्त हो जाती है और फिर हम ऐसे खाद्य पदार्थों को ग्रहण नहीं कर सकते जो हमारे शरीर के लिए आवश्यक होते हैं।



चूइंग गम (CHEWING GUM) : कुछ वृक्षों का गोंद चबाने से नहीं घुलता। बाज़ार में चूसनेवाली गोलियों के रूप में मिलनेवाला चूइंग गम पहले अमरीका में बनाया गया था। इसके लिए काले स्प्रूस के गोंद को साफ किया जाता था और उसमें मिठास मिलाई जाती थी। सस्ते चूइंग गम पैराफीन के बनाए जाते थे।

आजकल अधिकतर चूइंग गम चिकिल से बनाया जाता है। चिकिल सैपोडिला वृक्ष का रस होता है। यह मध्य और दक्षिण अमरीका में होता है।



चेचक (SMALLPOX) : यह एक छूत की बीमारी है। जिस आदमी को चेचक होती है उसे बहुत तेज़ बुखार हो आता है और शरीर पर छोटे-छोटे दाने निकल आते हैं। उन्हें ही चेचक, शीतला, माता, या मसूरिका कहा जाता है। अंग्रेज़ी में इन्हें 'पाक्स' कहते हैं।

कोई 200 साल पहले एक डाक्टर ने भविष्यवाणी की थी कि उस समय जीवित हर दस आदमियों में से एक की मृत्यु चेचक से होगी। उसका यह भी कहना था कि हर चार आदमियों में से एक के शरीर पर चेचक दाग छोड़ जाएगी। लेकिन प्रसन्नता की बात है कि उसकी भविष्य-वाणी सही नहीं हुई। उसके पहले ही इस रोग का एक ऐसा इलाज निकल आया कि अब बहुत कम लोगों को चेचक हो पाती है। इसका श्रेय एडवर्ड जेनर को है जिसने चेचक के टीके की खोज की।

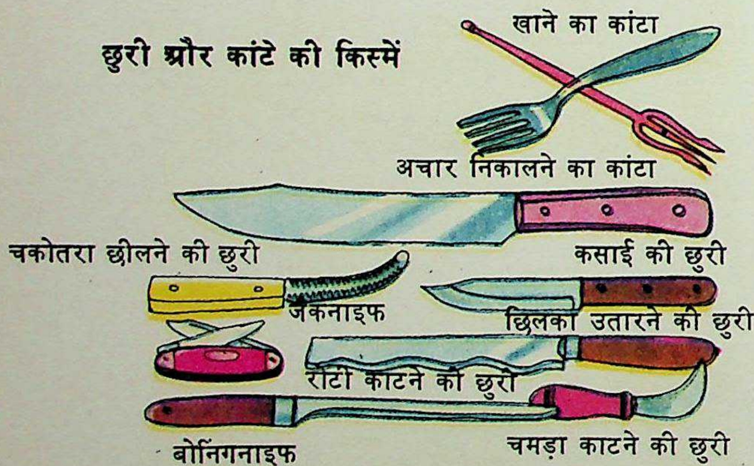
जिस आदमी को एक बार चेचक निकल चुकी हो या हाल ही में टीका लग चुका हो, उसे यह रोग नहीं होगा। उन्नत देशों में सभी लोग चेचक का टीका लग-वाते रहते हैं। भारत में भी गांव-गांव में और शहरों के मुहल्लों में साल में कई बार टीका लगानेवाले चेचक का टीका लगाते घूमते हैं। ये स्कूलों में भी जाकर बच्चों के टीका लगाते हैं। कई देशों में बाहर से आनेवाले लोगों को प्रवेश से पहले चेचक का टीका लगवाना पड़ता है।

चेचक विषाणुओं या वाइरस के कारण होती है। वाइरस रोगाणुओं में सूक्ष्मतम रोगाणु हैं। जिस आदमी को यह रोग हो जाता है उसके खांसने, छींकने, थूकने या

बोलने तक से रोगाणु निकलकर हवा में बिखर जाते हैं और आसपास के आदमियों को लग सकते हैं। इसीलिए चेचक के रोगियों को अलग रखा जाता है। डाक्टरों का विश्वास है कि टीका लगाने तथा रोगियों को दूसरों से मिलने-जुलने न देने से एक दिन यह रोग सदा के लिए समाप्त हो सकता है।

छींकना और खांसना (SNEEZING AND COUGHING): ये प्रतिवर्त क्रियाएं हैं और नासिका गुहाओं की भीतरी परत की उत्तेजना या श्वास-नलिका के नीचे के क्षेत्रों की उत्तेजना के कारण उत्पन्न होती हैं। जब कोई चीज़ वहां उत्तेजना पैदा करने लगती है तो उसे निकाल फेंकने के लिए मनुष्य छींकता या खांसता है। पहले थोड़ा सांस खींचा जाता है, उसके बाद स्वर-तंतुओं का कुंचन होता है, जिससे फेफड़े बाहर से बंद हो जाते हैं। फिर खूब ज़ोर से सांस छोड़ा जाता है। श्वास-मार्ग के बंद हो जाने से, सांस छोड़ना शुरू होते ही, फेफड़ों के भीतर दबाव बढ़ जाता है। इसके बाद स्वर-तंतु अलग हो जाते हैं और वायु का एक तेज़ झोंका उत्तेजना पैदा करनेवाली चीज़ को नाक या मुख के बाहर फेंक देता है।

छुरी और कांटे की किस्में



छुरी-कांटा और चम्मच (KNIVES, FORKS AND SPOONS) : अति प्राचीन काल से ही मनुष्य भोजन के लिए किसी न किसी रूप में चाकू, छुरी जैसे औज़ारों का उपयोग करता आ रहा है। आरम्भ में चाकुओं और छुरियों के फल पत्थर और तांबा आदि धातुओं के बनते थे। अब फल के लिए विशेष रूप से इस्पात काम में लाया जाता है। फल में जो बेंट लगाई जाती है, वह हाथीदांत, सींग, हड्डी, सैलूलॉयड, प्लास्टिक, आबनूस, साधारण लकड़ी या किसी धातु की होती है। भारत में चांदी, सोना, सीप और चन्दन की लकड़ी की बेंट का भी चलन रहा है।

भारत में अधिकतर लोग अभी हाथ से ही खाना खाते हैं। पर पश्चिमी देशों में छुरी-कांटा और चम्मच भोजन के लिए एक तरह से अनिवार्य हो गए हैं। पहले वहां भी अमीर-गरीब—सभी हाथ से खाना खाते थे। बाद में चम्मच से खाना खाने लगे। क्योंकि हर चीज़ चम्मच से नहीं खाई जा सकती, इसलिए कांटे का आविष्कार हुआ।

भोजन के लिए उपयोग में आनेवाली छुरियां कई प्रकार की होती हैं। पावरोटी काटने के लिए आरी की तरह दांतेदार या लहरदार धार की छुरियां होती हैं। केक, पेस्ट्री जैसी मिठाइयों के लिए छोटी छुरी काम में लाई जाती है जिसे 'टी नाइफ़' कहते हैं।

पहले कांटे में दो ही दांते होते थे। सबसे पहले कांटे का आविष्कार इटली के एक सरदार की पत्नी ने सन् 1100 के लगभग किया। उसके बाद शीघ्र ही वहां कांटे का चलन बढ़ गया। फिर वहां खाने की छुरियों का चलन भी हो गया। छुरी और कांटे का चलन इटली से दूसरे देशों में फैला।

चीन और जापान में लोग छुरी और कांटे की जगह सींकों से खाना खाते हैं जो 'चापस्टिक्स' कहलाती हैं।

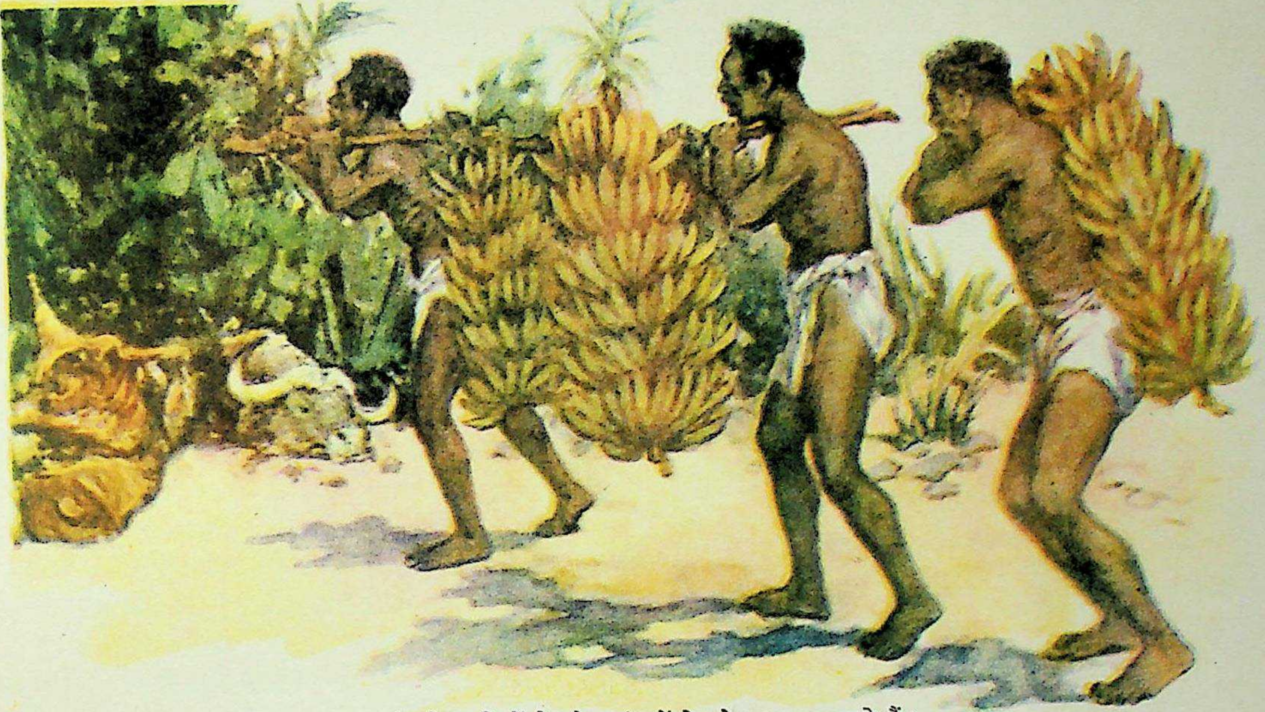
आजकल कई शक्लों और आकारों की छुरियां, कांटे और चम्मच बाज़ार में मिलते हैं।

छूत के रोग (INFECTIOUS DISEASES) : जो रोग एक व्यक्ति से दूसरे को लगते हैं, वे छूत के रोग कहलाते हैं। छूत के रोग कुछ सामान्य होते हैं और कुछ घातक होते हैं। रोग के कीटाणु मल-मूत्र, थूक, कै, बलगम आदि के द्वारा रोगी के शरीर से निकलते हैं और बर्तन, कपड़े, बिछौने, पानी, भोजन, धूल आदि में लग जाते हैं, और जब कोई व्यक्ति ऐसी चीज़ों के सम्पर्क में आता है तो वे उसके शरीर में प्रवेश कर जाते हैं। मक्खी-मच्छर जैसे कीड़े-मकोड़े भी काटकर, या वैसे ही, रोग के कीटाणुओं को स्वस्थ मनुष्य के शरीर में पहुंचा देते हैं। बहुत-से व्यक्ति ऐसे भी होते हैं जो देखने में तो रोगी जैसे नहीं लगते, पर उनके नाक, गले, आंतों या शरीर के किसी अन्य अंग में रोग के कीटाणु बराबर बने रहते हैं। इस तरह के लोगों के सम्पर्क से भी रोग के कीटाणु शरीर के अन्दर पहुंच जाते हैं।

हैज़ा, पेचिश जैसे रोग मल-मूत्र से फैलते हैं। आतशक, सूज़ाक, खारिश जैसे रोग केवल छूने से ही लग जाते हैं। इन्फ़्लुएंज़ा, चेचक, खसरा जैसे रोगों के कीटाणु उड़कर स्वस्थ व्यक्ति के शरीर में प्रवेश करते हैं।

(देखें : जीवाणु; रोग के कीटाणु; विषाणु)

जंगली जातियां (SAVAGES) : 'निरे जंगली हो!' अक्सर छोटे बच्चों से ऊधम मचाते समय उनके माता-पिता कह देते हैं। यह बात कम से कम जंगलों में रहने-



जंगली जातियों के लोग जंगलों से भोजन प्राप्त करते हैं।

वाले लोगों के प्रति बड़ा अन्याय है। जंगली लोग भी अपने कबीले के शिष्टाचार-सम्बन्धी नियमों का बड़ी सावधानी से पालन करते हैं। सभी जंगली लोग क्रूर नहीं होते। केवल इतना है कि जंगली लोग सभ्य संसार के वासी नहीं हैं। वे आज भी उसी तरह रहते हैं जिस तरह हमारे पूर्वज हज़ारों वर्ष पहले रहते थे।

जंगली कबीलों के लोग किस तरह रहते हैं, इसका अनुमान हम किसी जंगली जाति के जीवन के रहन-सहन का ब्यौरा प्राप्त करके ही लगा सकते हैं। दक्षिणी अमरीका में अमेज़न नदी के किनारे घने जंगलों में अमरीकी आदिवासियों की एक जाति रहती है। इसका नाम विटोटो है। इसकी कई उपजातियां भी हैं। हर उपजाति के लगभग दो सौ सदस्य होते हैं।

हर उपजाति का एक बड़ा घर होता है। यह घर लकड़ी के बड़े-बड़े लट्ठों का होता है। ये लट्ठे मज़बूत लताओं से बंधे रहते हैं। इनको ताड़ के पत्तों से ढक दिया जाता है। घर का बंटवारा नहीं होता, लेकिन इसमें हर परिवार के रहने का अलग-अलग स्थान होता है। हर परिवार का चूल्हा अलग होता है। लकड़ी के लट्ठों की बेंचें होती हैं। मकान के पिछले हिस्से में घर का मुखिया रहता है। घर के मुखिया का परिवार कुछ अधिक बड़ा होता है। दूसरी जातियों से लड़ाई में जो लोग बंदी बनाकर लाए जाते हैं वे भी मुखिया के यहां काम करते हैं। इनमें औरतें और बच्चे भी शामिल होते हैं।

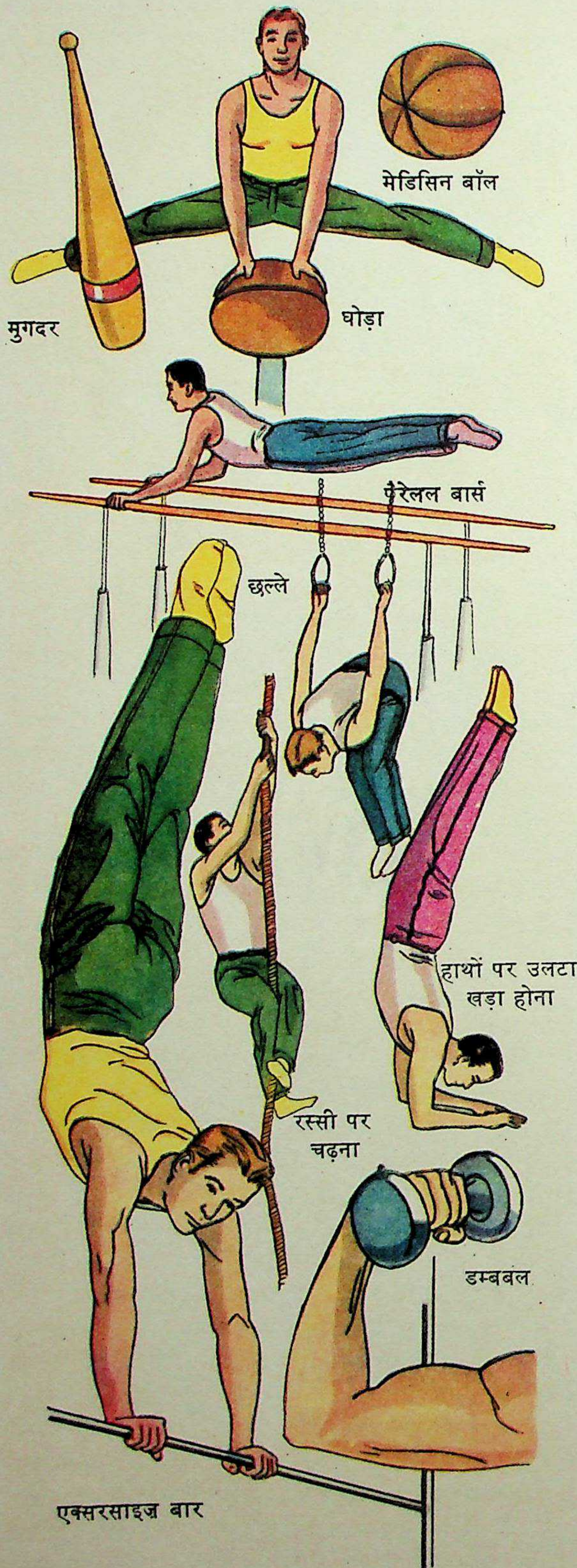
मकान बनाने के लिए लकड़ी काटना बड़ा कठिन काम है। विटोटो जाति के लोगों के पास कुछ ही कुल्हाड़ियां होती हैं, वे भी पत्थर की। उनके सारे हथियार लकड़ी के या फिर हड्डियों के बने होते हैं। वे धातुओं की बनी चीज़ें नहीं रखते।

विटोटो खाने की सारी सामग्री स्वयं नहीं उगाते। औरतें जंगलों से फल और कन्द-मूल जमा करती हैं। आदमी शिकार करते हैं और मछलियां पकड़ते हैं। ये लोग शिकार जाल की सहायता से करते हैं। इनके तीरों का आगे का हिस्सा कभी-कभी ज़हर में बुझा होता है। मछलियों का शिकार लकड़ी के भालों से किया जाता है। उनके कांटे हड्डियों के होते हैं। कभी-कभी झल्लियों से भी जाल का काम लिया जाता है।

ये लोग पढ़ना-लिखना नहीं जानते, लेकिन जंगल की सब बातें जानते हैं। हम सभ्य लोग पैरों के हलके निशानों को देखकर या टूटी हुई टहनियों और तोड़ी गई पत्तियों को देखकर कभी भी उन बातों का पता नहीं लगा सकते जिनका कि ये लोग लगा लेते हैं।

ये अच्छी और बुरी आत्माओं के अस्तित्व में विश्वास करते हैं। ये यह भी मानते हैं कि कुछ जंगली जानवरों में चमत्कारी शक्तियां होती हैं। ये जैगुआर और एनाकोण्डा नामक जंगली जानवरों से बहुत डरते हैं। इन दो जानवरों को ये कभी नहीं मारते। इनको यह आशंका रहती है कि अगर कभी इन्हें मारा तो इनकी चमत्कारी शक्तियां कबीले वालों को नुकसान पहुंचा सकती हैं।

कभी-कभी जंगली कबीलों में लड़ाई हो जाती है।



लेकिन ये आपस में दावतों और नृत्यों के आयोजन भी करते हैं। खोखले वृक्षों के तनों के नगाड़े बजाकर लोग बुलाए जाते हैं। ये नगाड़े कई मील तक की दूरी से सुने जा सकते हैं।

जाति के मुखिया की सहायता के लिए एक परिषद् होती है। महत्त्वपूर्ण सवालों पर फैसला लोगों के मतदान द्वारा होता है। मतदान का ढंग ज़रूर अजीब होता है। पहले प्रस्ताव करनेवाला अपनी बात समझाता है। इसके बाद वह एक लकड़ी तम्बाकू के रस में डुबो देता है। वह लकड़ी निकालकर पहले उसे चाट लेता है। इसके बाद तम्बाकू के पानी का पात्र और वह लकड़ी घुमाई जाती है। जो प्रस्तावक की बात से सहमत होता है, वह लकड़ी को डुबो कर उसे चाटता है। जो सहमत नहीं होता, वह ऐसा नहीं करता।

ये लोग अपने घर से दूर की यात्रा कभी नहीं करते। ये मिट्टी की तश्तरियां बनाते हैं और उन्हें आग में पका लेते हैं। जो कुछ कपड़ा वे पहनते हैं, वह छाल का बना होता है।

विटोटो की तरह सभी जातियां पिछड़ी हुई नहीं होतीं। लेकिन जो जातियां विटोटो की तरह पिछड़ी हुई हैं, वे दुनिया की सभ्यता से दूर इसी तरह घने जंगलों में अलग रहती हैं। (देखें : टोटेम स्तंभ; नरभक्षक)

जिप्सी (GYPSIES) : यह एक जगह से दूसरी जगह घूमनेवालों की एक घुमक्कड़ जाति है। पश्चिमी देशों में जिप्सी लोग भविष्यवक्ता ज्योतिषियों का काम करते हैं। इनके मूल देश के बारे में अभी तक ठीक पता नहीं लग सका है। लगभग 600 साल पहले जिप्सियों के कबीले एशिया से यूरोप में पहुंचे थे। संभवतः इनका मूल देश भारत ही है। इनका रूप-रंग और काले बाल भारतीयों जैसे ही होते हैं। इसके अलावा, इनकी भाषा रोमानी के बहुत-से शब्द हिन्दी शब्दों से मिलते-जुलते हैं। लेकिन कुछ लोग जिप्सियों को मिस्र का मानते हैं। उनका कहना है कि 'जिप्सी' शब्द 'इजिप्शियन' से बना है, जिसका अर्थ है 'मिस्री'।

जिप्सी लोग अच्छे गायक भी होते हैं। ये बड़े स्वतन्त्र प्रकृति के होते हैं। किसी प्रकार का बंधन इन्हें स्वीकार नहीं होता। यूरोप से जिप्सी अमरीका और आस्ट्रेलिया तक जा पहुंचे हैं। लेकिन ये कहीं भी जाएं, अपने रीति-रिवाज और अपनी भाषा कभी नहीं छोड़ते। अपने भड़कीले कपड़ों और चमकीले गहनों के कारण ये कहीं भी पहचाने जा सकते हैं। (देखें : खानाबदोश)

जिमनास्टिक (GYMNASTICS) : शारीरिक व्यायामों को अंग्रेज़ी में जिमनास्टिक कहते हैं। अंग्रेज़ी का यह शब्द यूनानी भाषा का है। यूनानी भाषा में इसका मतलब 'नग्न' होता है। यूनान के युवक प्रायः वस्त्रहीन

होकर शारीरिक व्यायाम करते थे, इसीलिए यह नाम पड़ा।

जब फौजों में ग्रामने-सामने लड़ाई होती थी तब शारीरिक सबलता बड़ी ग्रावश्यक थी। बन्दूकों के प्रयोग से लोगों का ध्यान व्यायामों की तरफ से हट गया। लेकिन ग्रठारहवीं ग्रौर उन्नीसवीं सदी में जर्मनी ग्रौर स्वीडन में फिर इस ग्रोर लोगों का ध्यान गया। ग्राजकल भारत तथा ग्रन्य देशों में स्कूलों में ग्रनिवार्य रूप से बच्चों को व्यायाम की शिक्षा दी जाती है।

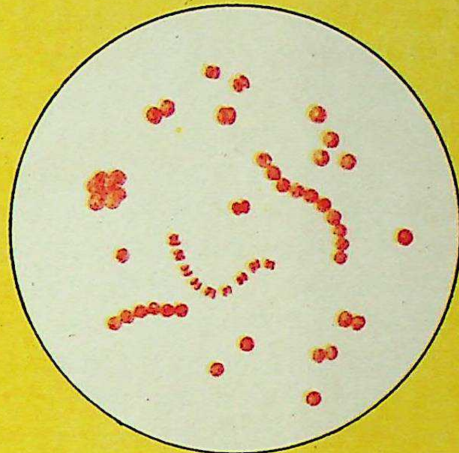
जिह्वा (TONGUE) : यदि हमारे मुंह में जिह्वा या जीभ न होती तो न तो हम बोल सकते थे ग्रौर न हमें खाने-पीने की चीज़ों के स्वाद का ही पता चल सकता था। यही नहीं, जीभ से हमें भोजन को चबाने ग्रौर निगलने में भी बड़ी मदद मिलती है। यह भोजन के ग्रास को मुंह में इधर-उधर ठेलती रहती है, जिससे वह ग्रच्छी तरह पिस जाता है ग्रौर थूक से सनकर मुलायम हो जाता है। जीभ ग्रौर जबड़ों के नीचे दोनों ग्रोर ग्रंथियां होती हैं जिनसे एक चिकना ग्रौर क्षारीय रस निकलता है। इसे लार या थूक कहते हैं। थूक मुंह को गीला ग्रौर स्वच्छ रखता है तथा कीटाणुनाशक होता है। थूक के साथ मुंह की सारी गंदगी निकल जाती है।

जीभ के ग्रलग-ग्रलग भागों में ग्रलग-ग्रलग रसों को ग्रनुभव करनेवाले ग्रवयव होते हैं। इन्हें स्वादांकुर कहते हैं। नमकीन ग्रौर मीठे रस के स्वादांकुर जीभ के ग्रगले नुकीले भाग में, कड़वे रस के नीचे के भाग में, ग्रौर खट्टे रस के स्वादांकुर दोनों किनारों पर रहते हैं। ऐसे ही स्वादांकुर गले में भी तीन स्थानों पर स्थित हैं। स्वादांकुरों से ही, तंत्रिकाग्रों द्वारा, विभिन्न रसों का ज्ञान मस्तिष्क के स्वाद-केन्द्र में पहुंचता है।

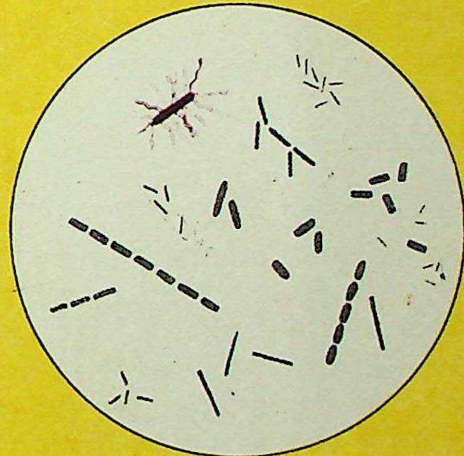
स्वाद का ग्रनुभव इस कारण कुछ पेचीदा हो जाता है कि एक स्वाद दूसरे पर हावी हो सकता है या उसके प्रभाव को मिटा सकता है। उदाहरण के लिए, चीनी की मिठास नीबू के खट्टेपन को दबा सकती है। कुछ प्रकार के स्वाद वास्तव में गंध होते हैं। प्याज़ के स्वाद के बारे में यही बात है। इसीलिए तेज़ ज़ुकाम में जब सूंघने की शक्ति खत्म हो जाती है तो प्याज़ का स्वाद मालूम नहीं होता है।

जीवाणु (BACTERIA) : जीवाणु या बैक्टीरिया को संसार के सबसे नन्हे पौधे कहा जा सकता है। ये इतने सूक्ष्म होते हैं कि इन्हें सूक्ष्मदर्शी के बिना देखा नहीं जा सकता। इन ग्रक्षरों में लगी नन्ही-सी बिंदी में हज़ारों जीवाणु समा सकते हैं। ये जीवाणु लगभग एकदम रंगहीन होते हैं।

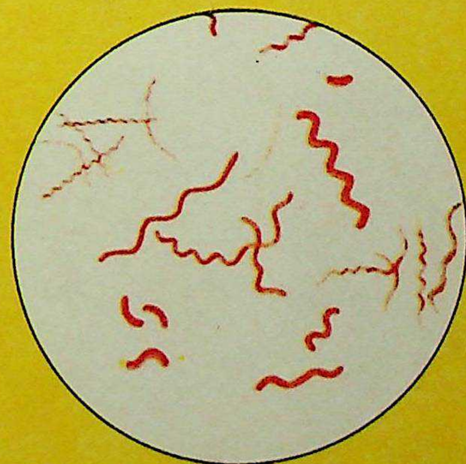
जीवाणु करीब-करीब सब कहीं ही होते हैं—हमारी



गोल जीवाणु (गोलाणु)



छड़-जैसे जीवाणु (दंडाणु)



सांप-जैसे जीवाणु (सर्पिल दंडाणु)

खाने की चीज़ों में, पानी में, धूल में, कपड़ों में, हवा में, श्रौर तो श्रौर, खुद हमारे शरीर के भीतर भी। श्रंधेरी, नम श्रौर हलकी गरम जलवायु इनके खूब श्रनुकूल होती है।

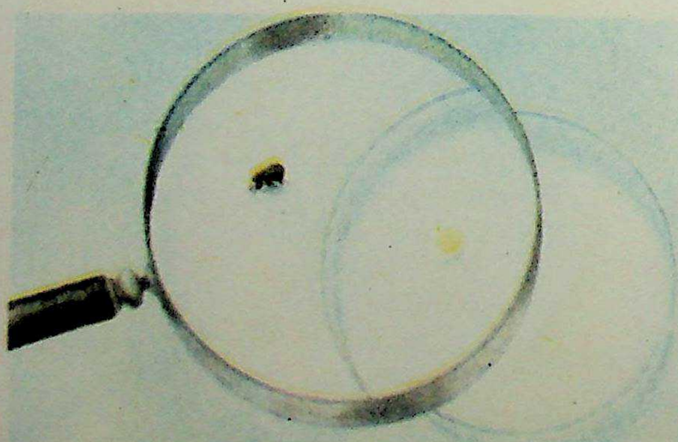
जीवाणुश्रों की हज़ार से ज़्यादा किस्में हैं, पर मोटे तौर पर सभी जीवाणुश्रों को तीन वर्गों में रखा जा सकता है। कुछ जीवाणु गोल होते हैं। गोल जीवाणुश्रों को गोलाणु या कोक्कस (Coccus) कहते हैं। कुछ जीवाणुश्रों की श्राकृति छड़ों या डंडों-जैसी होती है श्रौर इन्हें दंडाणु या बैसिलस (Bacillus) कहते हैं। तीसरे प्रकार के जीवाणु सांप जैसी श्राकृति के होते हैं। इन्हें सर्पिल दंडाणु या स्पाइ-रिलम (Spirillum) कहते हैं। कुछ जीवाणुश्रों के शरीर पर नन्हे रोएं से भी होते हैं, जिनके कारण उन्हें पानी तथा श्रन्य तरल पदार्थों में तैरने में सहायता मिलती है।

जीवाणु बुढ़ापे के कारण कभी नहीं मरते। पूरा श्राकार प्राप्त करते ही कई जीवाणु बंटकर दो जीवाणुश्रों में परिणत हो जाते हैं। जीवाणु इतनी तेज़ी से बढ़ते हैं कि किसी-किसी जीवाणु को पैदा होने के बाद दो जीवाणुश्रों में विभक्त होने में 20 मिनट भी नहीं लगते।

जीवाणु मनुष्य के लिए लाभदायक श्रौर हानिकारक दोनों ही हो सकते हैं। कुछ जीवाणु रोगवाही होते हैं श्रौर बीमारियां पैदा करते हैं। भोजन का बासी होना या सड़ना श्रौर दांतों का क्षय जीवाणुश्रों के कारण ही होता है।

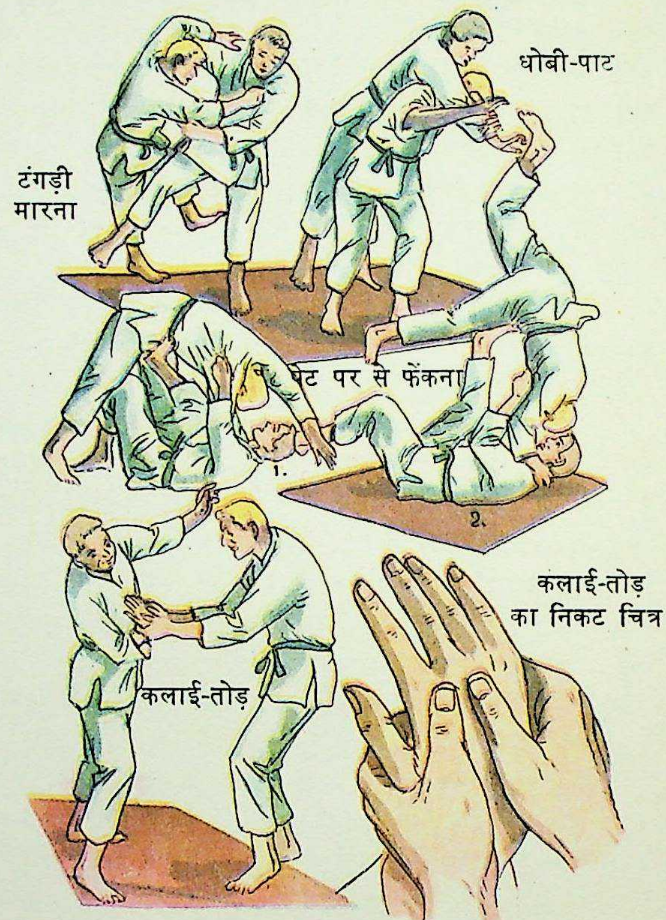
लाभदायक जीवाणुश्रों में से कुछ वायु से नाइट्रोजन गैस ग्रहण करके उसे मिट्टी को दे देते हैं। यह नाइट्रोजन हरे पौधों के काम श्राती है। इसी तरह के कुछ लाभदायक जीवाणुश्रों के कारण दही, पनीर श्रौर सिरके जैसी चीज़ें बन पाती हैं। कुछ लाभदायक जीवाणु मृत पौधों तथा मृत पशुश्रों के क्षय में सहायक होते हैं। ये न होते तो धरती पर रहने-भर की जगह भी न रहती।

(देखें : रोग के कीटाणु ; विषाणु)



एक पिस्सू भी आकार में लाखों जीवाणुओं जितना बड़ा होगा।

जू-जित्सू के दांव-पेंच



जू-जित्सू (JU-JITSU) : यह जापानी कुश्ती की एक शैली है। कई सौ वर्ष तक जापान के उच्च वर्ग के लोगों ने जू-जित्सू के रहस्यों को छिपाए रखा था।

जू-जित्सू बिना हथियार की, हाथों-हाथ की कुश्ती है। जू-जित्सू के पहलवानों को मनुष्य के शरीर के बारे में बहुत-कुछ जानना होता है। वे उन नसों की स्थिति को पहचानते हैं जिन्हें दबाने पर बहुत दर्द होता है या शून्यता छा जाती है। इनमें से कुछ नसें टखनों में, कुछ कलाइयों में, कुछ ऊपरी भुजा में, कुछ बगलों में श्रौर कुछ गर्दन में होती हैं। जू-जित्सू के पहलवान श्रपने विरोधी को लुढ़का देना श्रौर ज़मीन पर ज़ोर से पटकना भी सीखते हैं।

जू-जित्सू जाननेवाला एक छोटा-सा श्रादमी श्रपने से श्रधिक बड़े श्रौर हट्टे-कट्टे श्रादमी को हरा सकता है। श्रगर लम्बा श्रादमी उसके ऊपर टूट पड़ता है तो वह चित गिर पड़ेगा श्रौर इसके बाद लम्बे श्रादमी को श्रपने पीछे की श्रोर फेंक देगा। श्रब वह लम्बे श्रादमी को इस तरह पकड़ में ले सकता है कि उसे चोट पहुंचा सके या बेकार कर सके।

जू-जित्सू के पहलवानों को चुस्त और कुशल होना चाहिए। उनको हट्टा-कट्टा होना चाहिए। उन्हें जानना चाहिए कि अपने को चोट पहुंचाए बिना कैसे गिरा जा सकता है।

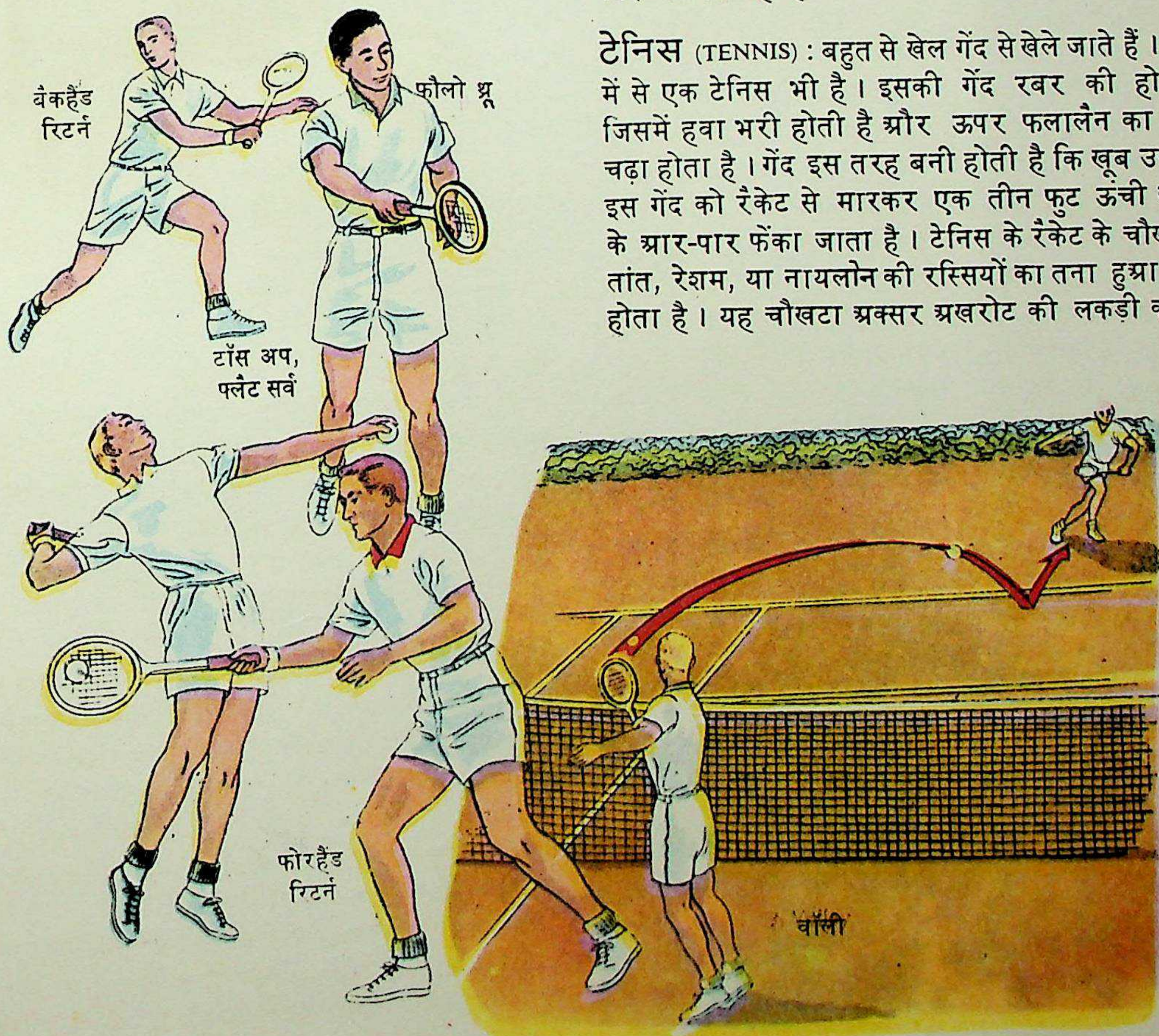
आज जू-जित्सू का रहस्य केवल जापानियों को ही पता नहीं है। आत्मरक्षा के एक ढंग के रूप में यह कई देशों में व्यवहार में आता है।

टॉन्सिल (TONSILS) : हमारे गले के अन्दर ऊपर और नीचे की ओर टॉन्सिल नामक ग्रंथियां स्थित हैं। कुछ रोगों में ये बुरी तरह सूज जाती हैं। गले में खराश और जलन का अनुभव होता है। बार-बार खांसी आती है और तेज़ बुखार हो आता है। ऐसी स्थिति में कहा जाता है कि टॉन्सिल का रोग हो गया है। कभी-कभी टॉन्सिल ग्रंथियां इतनी खराब हो जाती हैं कि उनके कारण शरीर के अन्य अंग प्रभावित होने लगते हैं और स्वास्थ्य गिरने लगता है। ऐसी स्थिति में डाक्टर टॉन्सिल निकलवा देने की राय देता है।

वास्तव में टॉन्सिल ग्रंथियां हमारे लिए बहुत उपयोगी हैं। ये विभिन्न रोगों के असर को दूर करती हैं और कीटाणुओं को नष्ट करने की शक्ति को शरीर में बनाए रखने में सहायक होती हैं। लेकिन जिन कीटाणुओं को ये नष्ट करती हैं वे कभी-कभी इन्हीं में पनपने लगते हैं और इनको खराब कर देते हैं।

साधारण स्वस्थ बच्चों की टॉन्सिल ग्रंथियां सात, आठ या नौ वर्ष की आयु तक पहले धीरे-धीरे बढ़ती रहती हैं। इसके बाद इनका आकार कम होता जाता है। कुछ वर्ष पहले तक लोगों का यह विश्वास था कि यदि टॉन्सिल ग्रंथियां अधिक फूली हुई हैं तो निश्चय ही वे रोगग्रस्त हैं और उन्हें निकलवा देना चाहिए। लेकिन यह धारणा गलत है। टॉन्सिल ग्रंथियों का आकार बड़ा या छोटा होने से कोई खास फर्क नहीं पड़ता। मुख्य बात तो यह पता लगाना है कि वे ठीक से अपना काम कर रही हैं या नहीं और उनमें कोई रोग तो नहीं है।

टेनिस (TENNIS) : बहुत से खेल गेंद से खेले जाते हैं। इन्हीं में से एक टेनिस भी है। इसकी गेंद रबर की होती है जिसमें हवा भरी होती है और ऊपर फलालैन का खोल चढ़ा होता है। गेंद इस तरह बनी होती है कि खूब उछले। इस गेंद को रैकेट से मारकर एक तीन फुट ऊंची जाली के आर-पार फेंका जाता है। टेनिस के रैकेट के चौखटे में तांत, रेशम, या नायलोन की रस्सियों का तना हुआ जाल होता है। यह चौखटा अक्सर अखरोट की लकड़ी का या



ऐशवुड का या हिकोरी की लकड़ी का बना होता है।

आजकल खेला जानेवाला टेनिस बहुत कुछ पिंग-पांग की तरह होता है। वास्तव में पिंग-पांग को अक्सर 'टेबल-टेनिस' (मेज़ पर खेला जानेवाला टेनिस) भी कहते हैं।

जो आदमी यह खेल नहीं जानता उसे इसका 'फलांक' या 'स्कोर' अजीब-सा लगता है। इसमें 'शून्य' को 'लव' कहा जाता है। यदि खेल में फलांक '15- लव' है तो इसका मतलब है कि एक पक्ष ने 15 अंक बनाए हैं और दूसरे पक्ष ने एक भी अंक नहीं बनाया। यदि फलांक 40-40 है तो इसे 'ड्यूस' (अर्थात् दोनों बराबर) कहा जाता है।

टेनिस दो या चार खिलाड़ियों द्वारा खेला जाता है। जिस खेल में दो खिलाड़ी होते हैं, उसे 'सिंगल्स' कहते हैं। 'डबल्स' खेल में चार खिलाड़ी होते हैं। टेनिस पुरुष भी खेलते हैं और स्त्रियां भी। यदि एक ही खेल में हर पक्ष में एक स्त्री और एक पुरुष होता है, तो खेल को 'मिक्स्ड डबल्स' कहते हैं।

टेनिस 'लॉन टेनिस' का ही संक्षिप्त रूप है। पहले यह खेल दूब-उगे प्रांगणों पर खेला जाता था। लेकिन अब बहुत-से प्रांगण या 'टेनिस कोर्ट्स' दूब-रहित होते हैं। कुछ पर मिट्टी पड़ी होती है, तो कुछ पर कंक्रीट और कुछ पर बजरी या कोयले की छाई पड़ी होती है।

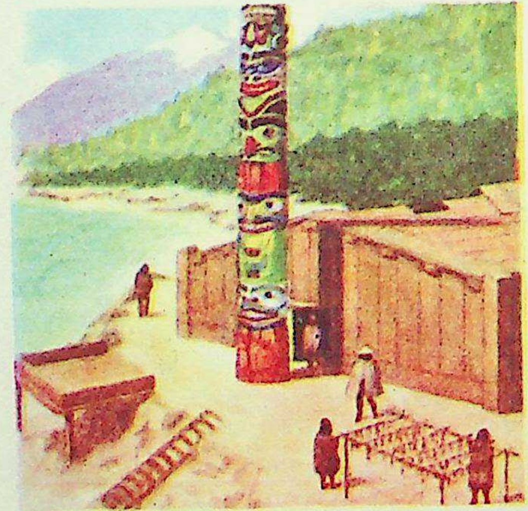
टेनिस को 1874 ई० में अधिकाधिक मान्यता मिली। पहले इसे 'स्फेयरिस्टिक' जैसा अजीब नाम दिया गया था। यह नाम किसीको बहुत नहीं रुचा, किन्तु यह खेल बहुत से लोगों को पसन्द आया। आजकल यह खेल सारी दुनिया में खेला जाता है। यद्यपि लॉन-टेनिस 100 वर्ष से भी कम पुराना है पर इसका पूर्वज, मूल या वास्तविक टेनिस मध्य-युग से ही प्रचलित है। राजा लोग और उनके सरदार घरों के भीतर विशेष रूप से बनवाए गए कमरों में टेनिस खेला करते थे। आज भी कहीं-कहीं यह पुराना खेल प्रचलित है।

प्रतिवर्ष टेनिस की चैम्पियनशिप-प्रतियोगिताएं होती हैं। दो प्रसिद्ध प्रतियोगिताएं हैं—'डेविस कप' जो पुरुषों के लिए है और 'वाइटमैन कप' जो महिलाओं के लिए है। इनमें डेविस कप के मैच अन्तर्राष्ट्रीय होते हैं, जब कि वाइटमैन कप के मैच केवल अमरीकी और अंग्रेज़ खिलाड़ियों के बीच होते हैं। इसी तरह विम्बलडन में होनेवाले मैच भी प्रसिद्ध हैं। आस्ट्रेलिया, अमरीका, भारत आदि में राष्ट्रीय-चैम्पियनशिप प्रतियोगिताएं भी होती हैं। इनमें पुरुष और स्त्रियां दोनों भाग लेते हैं।

टेनिस की प्रतियोगिता के समय अधिकारी क्रीड़ा-स्थल पर मौजूद रहते हैं। लेकिन खिलाड़ी स्वयं निर्णय किया करते हैं। यदि किसी खिलाड़ी की कोई गलती अधिकारी नहीं देख पाता है तो खिलाड़ी स्वयं उसे इसकी सूचना दे देता है। कोई भी खिलाडी ऐसे अंक नहीं स्वीकार करता जिस पर अपने हक के बारे में वह निश्चित नहीं है। इसीलिए टेनिस को अक्सर 'भलेमानुसों का खेल' (जेंटिलमैन्स गेम) कहा जाता है। (देखें : खिलाड़ी, भारत के प्रमुख)

टोटेम स्तंभ

टोटेम स्तंभ (TOTEM POLE) : बहुत-से आदिवासी कबीलों के लोग यह मानते हैं कि उनका जीवन किसी चमत्कारी ढंग से किसी जानवर के साथ बंधा है। वे उस जानवर को अपना पूर्वज मानते हैं। कुछ लोग उसे अपने वर्ग का संरक्षक मानते हैं। वह जानवर उस वर्ग-विशेष



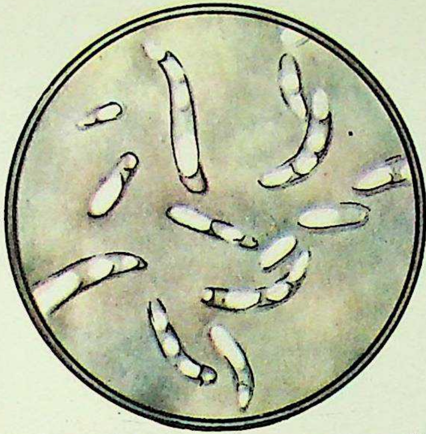
टोटेम स्तंभ

का टोटेम माना जाता है।

यद्यपि टोटेम की धारणा आम है, परन्तु जिस प्रकार का टोटेम स्तंभ चित्र में दिखाया गया है वैसे टोटेम स्तंभ संसार के एक ही भाग में पाए जाते हैं। इन स्तंभों की रचना उत्तरी अमरीका के उत्तर-पश्चिमी तट के आसपास रहनेवाले इंडियन आदिवासी करते थे। ये लोग कुलों में बंटे हुए थे। मिसाल के तौर पर, एक कुल का नाम द्रोणकाक कुल (Raven clan) था और दूसरे का ऋक्ष कुल (Bear clan)। ये कुल और भी छोटे वर्गों में बंटे हुए थे। हर वर्ग का अपना एक टोटेम होता था।

इंडियन आदिवासी लट्ठों की बनी इमारतों में रहते थे। हर घर में कई-कई परिवार साथ-साथ रहते थे। इस प्रकार मिलकर रहने के कारण यह प्रथा चल निकली कि घर के पास ही एक स्तंभ पर परिवार के सभी टोटेम अंकित कर दिए जाएं। टोटेम स्तंभ एक प्रकार की डाइरेक्टरी होता था। इस स्तंभ में सबसे ऊपर परिवार के मुखिया के कुल का टोटेम अंकित होता था।

कुछ टोटेम स्तंभ बड़े सुन्दर और आकर्षक होते थे। आजकल टोटेम स्तंभ के निर्माण की कला विलुप्त हो गई है। लेकिन एकाध सदी पहले निर्मित टोटेम स्तंभ संसार के विभिन्न देशों के अजायबघरों में अब भी देखने को मिल सकते हैं।



डिप्थीरिया के रोगाणु (बहुत बड़े आकार में)

डिप्थीरिया (DIPHTHERIA) : प्रत्येक रोग की तरह डिप्थीरिया या कंठरोहिणी रोग के भी अपने लक्षण हैं। इसमें गला बहुत खराब हो जाता है और तेज़ बुखार हो आता है। यह गले का एक संक्रामक रोग है और बच्चों को अक्सर हो जाता है।

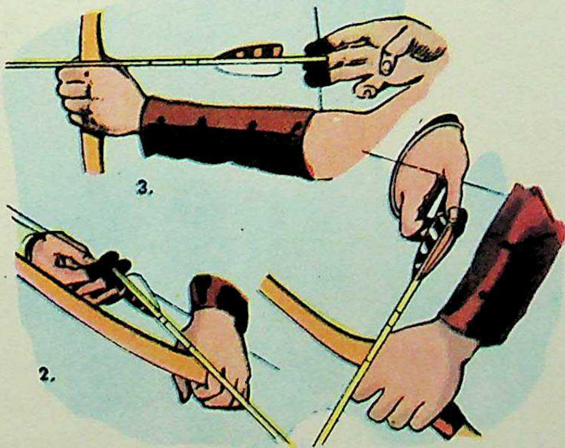
किसी ज़माने में डिप्थीरिया एक बड़ा भयानक रोग माना जाता था। अब इसकी रोकथाम और इलाज के तरीके डाक्टरों ने खोज लिए हैं। एंटीटॉक्सिन नामक दवा से इसका इलाज किया जाता है। इलाज से भी अधिक आवश्यक यह है कि पहले से ही इसकी रोकथाम की जाए। बच्चों को एक साल की आयु के पहले ही इसके टीके लगवा दिए जाते हैं। कुछ साल बाद उन्हें दोबारा टीके लगते हैं, ताकि वे पूरी तरह से सुरक्षित हो जाएं।

डिप्थीरिया एक छूत का रोग है। इसके रोगाणु एक व्यक्ति के गले से दूसरे व्यक्ति के गले में पहुंच सकते हैं। सौभाग्य से बहुत कम लोगों के गले में डिप्थीरिया के रोगाणु रहते हैं। लेकिन जिसके गले में ये रहते हैं उसे पता भी नहीं चलता कि वह दूसरों को यह रोग दे सकता है।

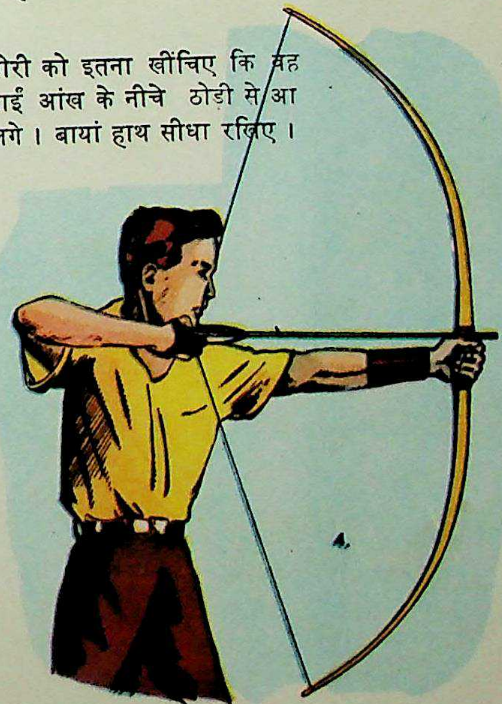
तापमान (TEMPERATURE) : जब कोई आदमी बीमार होता है और उसे बुखार हो जाता है तो कहा जाता है कि उसके शरीर का तापमान बढ़ गया है। हम शरीर की गर्मी या ठंडक के अंश को तापमान द्वारा अभिव्यक्त करते हैं। यही बात हमारे आस-पास की हवा, गैसों, धातुओं और अन्य जीवों की गर्मी या ठंडक के बारे में भी लागू होती है। यदि कोई वस्तु बहुत ठंडी है तो हम कहते हैं कि इसका तापमान बहुत कम है। जब हम किसीको बुखार है या नहीं यह जानने के लिए उसके शरीर का तापमान ज्ञात करना चाहते हैं तो तापमापक या थर्मामीटर उसके शरीर में लगाते हैं। शरीर की गर्मी के सम्पर्क में आकर थर्मामीटर का पारा गर्मी के अनुपात में ऊपर चढ़ जाता है और हमें शरीर के तापमान की सूचना देता है। विभिन्न पदार्थों का तापमान जानने के लिए विविध प्रकार के तापमापक होते हैं।

तीरंदाज़ी (ARCHERY) : तीरंदाज़ी या धनुर्विद्या कोई नई विद्या नहीं है। हमारे देश में अर्जुन, एकलव्य, कर्ण आदि अनेक महान धनुर्धर हो चुके हैं।

तीर और कमान मनुष्य के सबसे पुराने हथियारों में हैं। वह इनका शिकार में भी इस्तेमाल करता था और



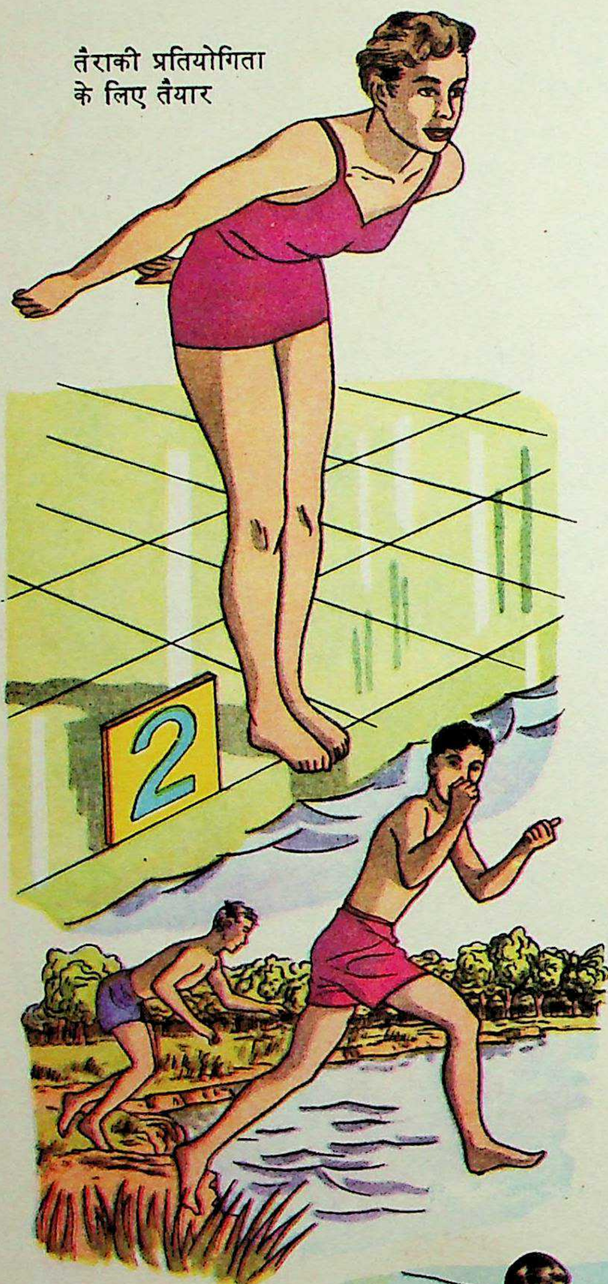
1. कमान को नीचे की तरफ रखकर उसपर तीर रखिए और उसे डोरी की तरफ ले जाइए।
2. उंगलियों को डोरी के नीचे रखिए। पहले पोरुए डोरी पर मुड़े होने चाहिए।
3. डोरी को थोड़ा-सा खींचिए, जिससे उसका ज़ोर तीनों उंगलियों पर बराबर पड़े।



4. डोरी को इतना खींचिए कि वह दाईं आंख के नीचे ठोड़ी से आ लगे। बायां हाथ सीधा रखिए।

लड़ाई में भी। लेकिन बारूद की ईजाद के बाद बंदूकों और तोपों के कारण तीरंदाज़ी का महत्त्व एक खेल के रूप में ही रह गया। फिर भी, जहां आधुनिक सभ्यता का प्रवेश अभी नहीं हुआ है, वहां तीर और कमान अभी भी हथियारों का काम देते हैं। भीलों को बड़ा कुशल तीरंदाज़ माना जाता है।

खेल-कूद में तीरंदाज़ी की आमतौर पर दो तरह की प्रतियोगिताएं होती हैं—निशाने पर मार करने की, और दूरी पर मार करने की।

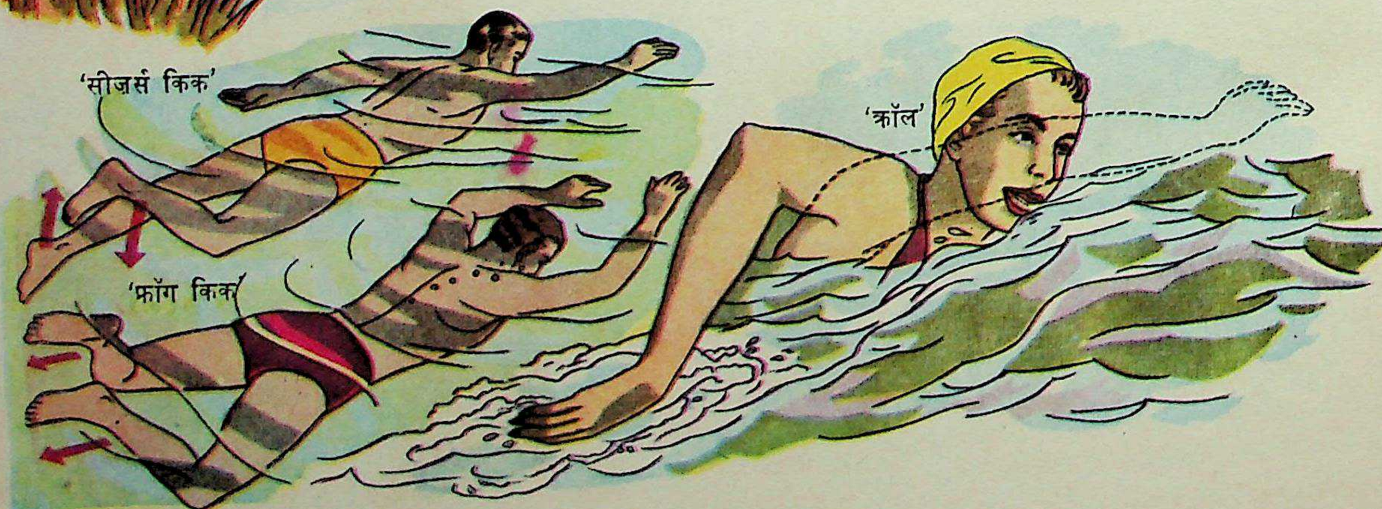


तैराकी (SWIMMING) : मछली का बच्चा बिना किसी के सिखाए ही तैर सकता है। कुछ दूसरे जीव भी जन्मजात रूप से तैरना जानते हैं। लेकिन मनुष्य इतना भाग्यवान नहीं है। उसके पच्छ या झिल्लीदार पांव और पंजे नहीं होते जिनसे उसके लिए तैरना सरल हो जाए। लेकिन तैरने की कला को सीखने के तीन कारण हैं। एक तो तैरने में आनन्द आता है। दूसरे, तैरने से व्यायाम हो जाता है जिससे शरीर मज़बूत होता है। तीसरे, तैरना जानना संकट के समय काम आ सकला है।

तैराकी इतनी लोकप्रिय क्रीड़ा हो गई है कि बहुत-से सार्वजनिक तैराकी 'पूल' बनाए गए हैं। समुद्र तट पर सार्वजनिक 'बीचों' का निर्माण किया गया है। बहुत से होटलों, क्लबों, स्कूलों और बड़े समुद्री जहाज़ों में भी तैराकी 'पूल' होते हैं। कुछ परिवारों के पास अपने निजी तैराकी 'पूल' होते हैं।

ओलिम्पिक प्रतियोगिता के खेलों में तैराकी प्रतियोगिता का भी स्थान है। दुनिया के हर देश के तैराक इस प्रतियोगिता में सम्मिलित होते हैं।

तैरना सीखने की पहली सीढ़ी है अपने मन से जल के भय को निकाल देना। अभ्यास करने पर हर व्यक्ति अपनी पीठ के बल पानी पर बहना सीख सकता है। और जिस व्यक्ति को पानी पर बहना आ गया उसे प्रायः पानी



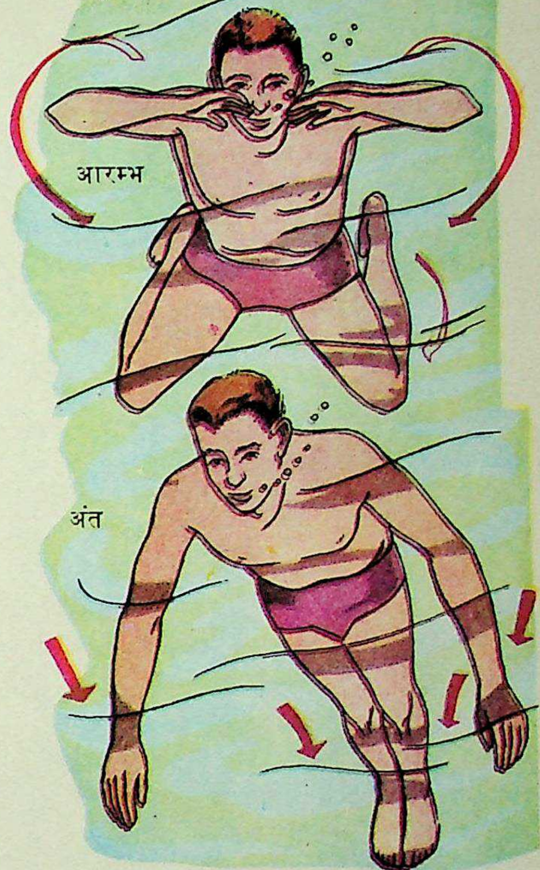
का भय नहीं सताता।

तैरना सीखने की एक और महत्त्वपूर्ण सीढ़ी है एक निश्चित तरीके से सांस लेना सीखना। तैराक को मुंह से सांस लेकर नाक से निकालना पड़ता है। सांस लेने के लिए उसे अपना सिर तो पानी की सतह के ऊपर ही रखना पड़ेगा पर वह सतह के नीचे भी सांस छोड़ सकता है। यदि तैराक जिस तरीके से सांस लेना चाहिए उसी तरीके से सांस लेता है, तो फेफड़ों में पानी जाने का खतरा नहीं रह जाता।

तैरने में आदमी अपने हाथ-पांव इस तरह मारता है कि वह पानी को चीरता हुआ आगे बढ़ता चला जाए। ऐसा करने के कई तरीके हैं। पीछे की ओर से तैरना, सरकना, करवट तैरना, छपकोरियां मारते हुए तैरना—ये चार बहुत प्रचलित तरीके हैं। साथ के चित्रों में ये तरीके प्रदर्शित हैं।

जितनी तेज़ी से दौड़ा जा सकता है उतनी तेज़ी से तैरना संभव नहीं है। लेकिन अच्छे तैराक बहुत तेज़ तैरते हैं। उदाहरण के लिए पुरुषों का पीछे की ओर से 100 गज़ तैरने का रिकार्ड 55 सेकंड से भी कम है। कुछ तैराक काफी दूर तक तैरने में गर्व का अनुभव करते हैं। इंग्लिश चैनल पार करना दूर तक तैरने की अच्छी परीक्षाओं में से है। जहां से तैराक इसे पार करने की कोशिश करते हैं वहां इंग्लिश चैनल लगभग 20 मील चौड़ा है। पिछले पचास वर्षों में 60 से ज़्यादा तैराक इसे पार करने में सफल हुए हैं। सन् 1875 में ब्रिटेन का मैथ्यू वेब नामक तैराक इसे 21 घंटे 45 मिनट में पार कर इंग्लैंड से फ्रांस पहुंचा। सन् 1955 में फ्लोरेंस चैडविक नामक अमेरिकन ने इतनी ही दूरी 13 घंटे 55 मिनट में तय की। चैनल में ज्वार के कारण दूसरी तरफ से आने में कम समय लगता है। मिस्र के हसन अब्देल रहीम को 1950 में फ्रांस से इंग्लैंड पहुंचने में केवल 10 घंटे 49 मिनट लगे। एक भारतीय महिला तैराक आरती गुहा ने भी 1960 में इंग्लिश चैनल पार किया।

बटरफ्लाई स्ट्रोक'





करवट मे तैरना



पीठ के बल बहना



पीठ के बल तैरना



त्वचा (SKIN) : हमारी त्वचा ही हममें से हर एक को बाह्य जगत से अलग करती है। हमारे चारों ओर क्या-क्या घट रहा है, इसके संदेश त्वचा अपने स्नायुओं के माध्यम से हमारे मस्तिष्क को भेजती है। हवा का बहना हमें इसीसे ज्ञात होता है। मौसम ठंडा है या गरम, इसकी जानकारी हमें इसीसे होती है। काम करने या खेलने में हम जिन चीज़ों का प्रयोग करते हैं, उनके बारे में पर्याप्त जानकारी हमें त्वचा से ही मिलती है। कोई चीज़ खुरदरी है या चिकनी, भीगी है या सूखी, सख्त है या कोमल, इसका पता हमें इसीसे चलता है। संक्षेप में कहा जाए तो बाह्य जगत से हमारा सम्बन्ध बहुत-कुछ इसीके माध्यम से बना हुआ है।

इतना ही नहीं, हमारी त्वचा हमारी देह का एक सुरक्षात्मक खोल भी है। इसीकी वजह से चोट और खरोंच आदि का असर शरीर के भीतरी अंगों पर प्रायः नहीं पड़ पाता है और रोगाणु भीतर प्रवेश न पाकर बाहर ही रह जाते हैं। यह शरीर को सूख जाने या बहुत अधिक गरम या बहुत अधिक ठंडा होने से भी बचाती है।

त्वचा की रचना दो मुख्य परतों से हुई है। ऊपरी परत बाह्य त्वचा (Epidermis) कहलाती है। इसकी कोशिकाएं हमेशा बदलती रहती हैं। ऊपर की ओर, जहां हमें हवा का स्पर्श अनुभव होता है, मृत कोशिकाएं होती हैं जो रगड़ से साफ होती रहती हैं। भीतर की ओर नयी कोशिकाएं बनती रहती हैं, जो मृत कोशिकाओं का स्थान ग्रहण कर लेती हैं।

बाह्य त्वचा के नीचे अन्तस्त्वचा (Dermis) होती है। इसे कभी-कभी असली त्वचा भी कहते हैं। यह बाह्य त्वचा से अधिक मोटी होती है। यह ज़्यादातर सख्त तन्तुओं की बनी होती है। कुछ जन्तुओं की अन्तस्त्वचा तो इतनी मज़बूत होती है कि उनकी खाल से चमड़े की चीज़ें बनाई जाती हैं। अन्तस्त्वचा में बहुत से स्नायु होते हैं और बहुत-सी रक्तवाहिकाएं भी होती हैं। ये रक्तवाहिकाएं लचीली होती हैं। शरीर में गर्मी महसूस होने पर इनमें खूब रक्त भर जाता है और ये बढ़कर बड़ी हो जाती हैं। इसके बाद शरीर का ताप खून से त्वचा के छिद्रों के रास्ते निकलकर बाहर हवा में मिल जाता है और रक्तवाहिकाएं पुनः पूर्ववत् दशा में आ जाती हैं तथा देह का ताप भी सामान्य हो जाता हैं। इसी तरह जब शरीर को ठंडक महसूस होने लगती है तो ये रक्तवाहिकाएं सिकुड़ जाती हैं, ताकि शरीर की गर्मी बाहर न निकल सके।

कभी-कभी जब कोई आदमी झल्ला उठता है तो मुख की बहुतेरी सूक्ष्म रक्तवाहिकाएं फैलकर बड़ी हो जाती हैं। उनमें खूब रक्त भर जाता है और उस आदमी का चेहरा लाल हो जाता है। तब हम कहते हैं कि उसका चेहरा तमतमा गया है।

अन्तस्त्वचा के निचले भाग में एक और तह होती है। वह ज़्यादातर वसा-कोशिकाओं की बनी होती है। वसा की यह परत तापावरोध का कार्य करती है। यह जाड़े में ताप को शरीर के भीतर रखने में सहायक होती है और गर्मियों में यह बाहर की गर्मी को भीतर आने से रोकती है। ह्वेल मछली में वसा की इस तह को 'ब्लबर' कहते हैं। इसके कारण ठंडे समुद्रों में रहनेवाली ह्वेल के शरीर में बाहर की ठंडक का प्रवेश नहीं होने पाता। इस तरह उसके भीतर की गर्मी भी सुरक्षित रहती है।

बाल, तैल-ग्रंथियां और स्वेद-ग्रंथियां आदि अन्तस्त्वचा से बाहर की ओर निकली रहती हैं। हर बाल से छोटी-छोटी मांसपेशियां जुड़ी होती हैं। जब कभी हमारा शरीर अधिक ठंडा हो जाता है तब ये पेशियां सिकुड़ जाती हैं, जिससे हमारी त्वचा जगह-जगह पर ज़रा-ज़रा सूज आती है या उसपर नन्हे दाने उभर आते हैं।

त्वचा और बालों को अच्छी दशा में रखने के लिए तैल-ग्रंथियों से तेल निकलकर उन्हें मिलता रहता है। बालों में कंघी करने या उनपर ब्रश करने से इन ग्रंथियों को सक्रिय रहने में सहायता मिलती है।

स्वेद-ग्रंथियों से बाहर त्वचा पर पानी निकलता रहता है। इसी पानी को हम पसीना कहते हैं। जब यह पानी भाप बनकर उड़ जाता है तो त्वचा तथा देह अपेक्षाकृत शीतल हो जाती हैं। बाहर जितनी ज़्यादा गर्मी होती है, पसीना भी उतना ही अधिक निकलता है। अधिक गर्मी होने पर एक ही दिन में आधा या तीन-चौथाई गैलन पानी पसीना बनकर शरीर से बाहर निकल जाता है।

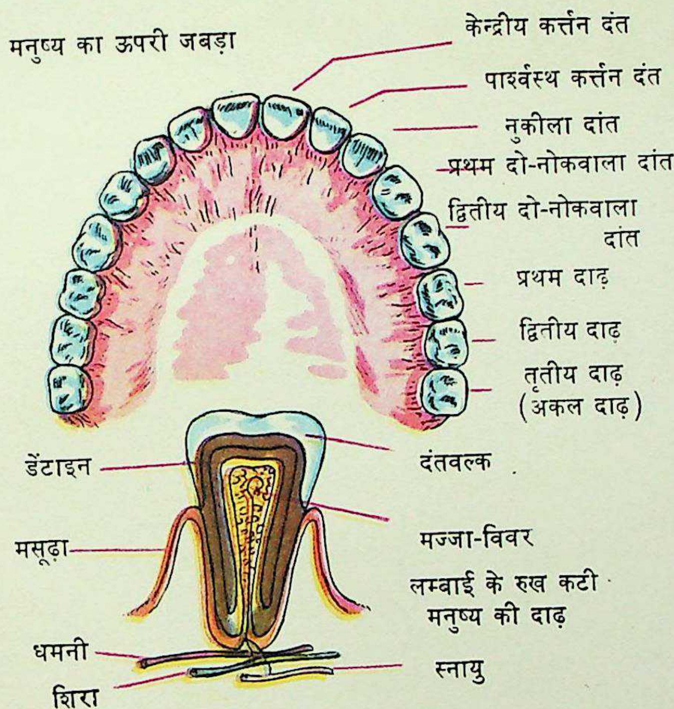
त्वचा में कुछ कोशिकाएं ऐसी होती हैं जिनमें एक रंगीन पदार्थ होता है। इस पदार्थ को रंजक (Pigment) कहते हैं। जब रंजक की मात्रा कम होती है तब त्वचा का रंग अपेक्षाकृत साफ या गोरा होता है। पक्के या काले रंग की त्वचा में रंजक अधिक होता है। सूर्य का तेज प्रकाश होने पर त्वचा में रंजक अधिक बनने लगता है और हमारी त्वचा का रंग अधिक गहरा हो जाता है। इस प्रभाव को सूर्यदाह भी कहते हैं। जब हम धूप से हटकर छाया में चले आते हैं तो यह प्रभाव विलीन हो जाता है।

दही (CURD) : दूध से बने पदार्थों में दही हमारे देश में सबसे अधिक लोकप्रिय है। यह सुपाच्य और शक्तिवर्धक होता है। दही बनाने के लिए दूध को जमाया जाता है, जिससे उसमें विटामिन 'बी' बहुत अधिक मात्रा में तैयार हो जाता है। दही में एक विशिष्ट स्वाद रहता है। दही को पतला करके और अच्छी तरह बिलोकर मीठी या नमकीन लस्सी तैयार की जाती है जो एक बहुत गुणकारी पेय है। यदि दही को बहुत देर तक बिलोया जाए तो उसमें से मक्खन अलग निकल आता है।

भारत में दही को पवित्र माना जाता है और इसका उपयोग देवता के 'पंचामृत' के लिए होता है। यात्रा आदि

के अवसर पर दही खाना शुभ समझा जाता है। विवाह आदि की दावतों में भी दही को भोजन में शामिल किया जाता है।

दांत (TEETH) : मनुष्यों के अतिरिक्त बहुत-से अन्य जीवों के भी दांत होते हैं। सांपों के दांत बहुत ही नुकीले होते हैं। विषैले सांपों के विषदंत भी होते हैं। बहुत-सी मछलियों के भी दांत होते हैं। लगभग सभी स्तनपायी जीवों के दांत होते हैं।

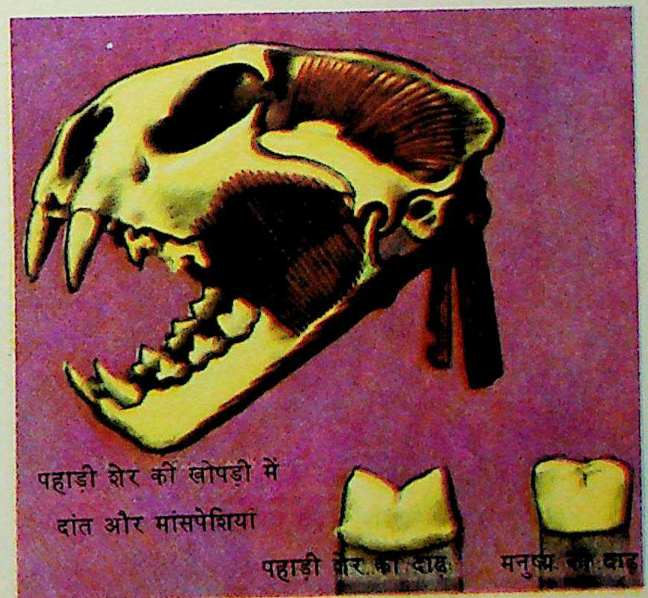


गिलहरियों, ऊदबिलावों, गोफरों, चूहों और अन्य सभी कुतरनेवाले जानवरों के हर जबड़े के अग्रभाग में दो बहुत ही तीक्ष्ण दांत होते हैं। इन दांतों का उपयोग ये कुतरने में करते हैं। ऊदबिलाव पेड़ काटकर गिरा देते हैं, और गिलहरियां बादाम के कड़े छिलके तोड़ डालती हैं, और गोफर अनाज के दानों को कुतर जाते हैं। बिल्ली और उसके वर्ग के जानवरों के फाड़नेवाले दांत होते हैं। सभी कुत्तों के फाड़नेवाले दांत होते हैं। गायों और घोड़ों के काटने और चबानेवाले दांत होते हैं। अपने जबड़ों के अगले हिस्से के काटनेवाले दांतों से वे घास चरते हैं, और दोनों तरफ के दांतों से उसे चबाते हैं।

मनुष्य मांस भी खाते हैं और अन्न भी। अतः मनुष्यों के मुंह में काटने, फाड़ने और चबानेवाले, तीनों प्रकार के दांत होते हैं। साथ के चित्र में मनुष्य के ऊपरी जबड़े के दांत दिखलाए गए हैं। निचले जबड़े में भी इन्हींकी तरह के दांत होते हैं। हर आदमी के मुख में ऊपर और नीचे दो दंतावलियां होती हैं। उसके बचपन के या 'दूध के दांत' लगभग छः महीने की आयु में निकलने लगते हैं। छः वर्ष की आयु तक ये गिरने लगते हैं। इनके टूटने के साथ-साथ स्थायी दांत निकलते आते हैं। स्थायी दांतों की संख्या 32 होती है। अन्तिम चार दांत (चौभर या अक्ल दाढ़), जिन्हें अंग्रेज़ी में 'विज़डम टीथ' कहते हैं, 14 या 15 साल बाद निकलते हैं।

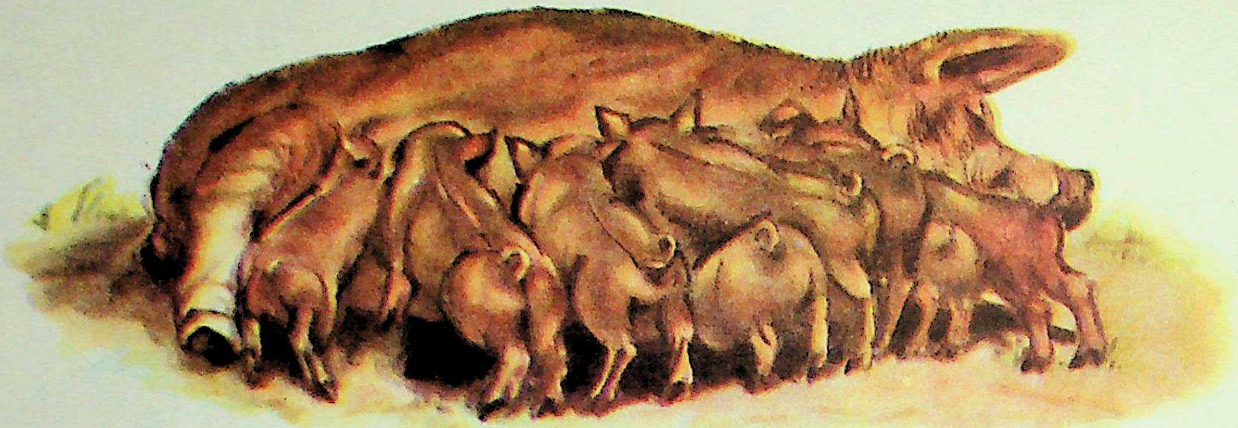
हर दांत का कुछ भाग जबड़े के अन्दर होता है। यह भाग दंतमूल कहलाता है। जो भाग बाहर दिखाई देता है, उसे दंतशिखर कहते हैं। दंतशिखर वाले भाग पर एक चमकदार परत चढ़ी होती है जिसे दंतवल्क या एनैमल कहते हैं। दंतवल्क मनुष्य के शरीर के अंगों में सबसे सख्त होता है। इसके भीतर दंती या डेंटाइन नामक एक कोमल पदार्थ होता है। दांत के बिलकुल बीच में थोड़ी-सी पोली जगह होती है, जिसमें मज्जा भरी रहती है। इसे मज्जा-विवर या 'पल्प कैविटी' कहते हैं। मज्जा-विवर में शिराएं और स्नायु भी होते हैं।

हमें अपने दांतों से भोजन को चबाकर सुपाच्य बनाने में सहायता मिलती है। बातचीत करने में भी ये हमारे लिए उपयोगी होते हैं। 'त' वर्ग की सभी ध्वनियां दांतों की सहायता से ही उच्चारित होती हैं। इसके अतिरिक्त, हमारी मुखाकृति को स्वरूप देने में भी दांतों का बहुत बड़ा महत्त्व है।



पहाड़ी शेर की खोपड़ी में दांत और मांसपेशियां

दांतों को साफ रखना बहुत आवश्यक है। भोजन के ग्रास चबाते समय उसके सूक्ष्म कण दांतों के बीच में फंस जाते हैं और सड़कर दुर्गन्ध पैदा करते हैं। नियमित रूप से दातुन या ब्रश करते रहने से ये साफ होते रहते हैं। इससे दांतों में कीड़े नहीं लगते और दांत खराब नहीं होते। समय-समय पर दांत के डाक्टर से दांतों की जांच



अपने बच्चों को दूध पिलाती एक सूअरी

करवाते रहना चाहिए। यदि किसी दांत में गढ़ा हो रहा हो तो उसके बढ़ने के पहले ही उसकी चिकित्सा करा लेनी चाहिए।

दालें (PULSES) : दक्षिण-पूर्व एशिया के देशों में लोग दालें और सोयाबीन आदि खाद्यान्न अधिक खाते हैं। दालों की जितनी खपत भारत में है उतनी संसार के किसी भी अन्य देश में नहीं है। जो लोग मांस नहीं खाते वे प्रोटीन की पूर्ति दूध और दालों से ही कर सकते हैं। दाल में प्रोटीन की मात्रा 22 से 25 प्रतिशत तक होती है। इसीलिए दाल गरीबों के लिए एक प्रकार का 'मांस' ही है।

दलहन, या दालवाले अनाज कई प्रकार के हैं—चना, उड़द, अरहर, मूंग, मसूर, मटर, खेसारी। प्रोटीन की दृष्टि से अरहर और चना उत्कृष्ट तथा मटर और खेसारी निकृष्ट दालें हैं। सबसे उत्तम दाल मसूर की है, क्योंकि यह प्रायः हर तरह की प्रकृति के आदमी के लिए अनुकूल और लाभदायक रहती है। दाल के साथ चावल का मेल बहुत अच्छा रहता है, क्योंकि चावल में प्रोटीन नहीं होता है और दाल में स्टार्च नहीं होता है। इसलिए दोनों एक-दूसरे के पूरक बन जाते हैं।

दाल को भिगोकर और पीसकर 'पिट्ठी' तैयार की जाती है जो कचौरियों आदि में भरी जाती है। उससे पकौड़ियां और चीले वगैरा भी बनाए जाते हैं। दक्षिण भारत में दाल की 'पिट्ठी' से दोसे तैयार किए जाते हैं। चना सर्वप्रिय दलहन है। इससे अनेक प्रकार के नमकीन और मीठे पकवान बनते हैं।

दूध (MILK) : बिल्ली के बच्चे, पिल्ले, सूअर के बच्चे और मेमने—सबका भोजन दूध है। यही हाल उन सब जन्तुओं के बच्चों का है जिनके शरीर पर बाल या रोएं होते हैं। हमारे बच्चे भी जीवन के पहले कुछ मासों तक दूध का ही आहार करते हैं।

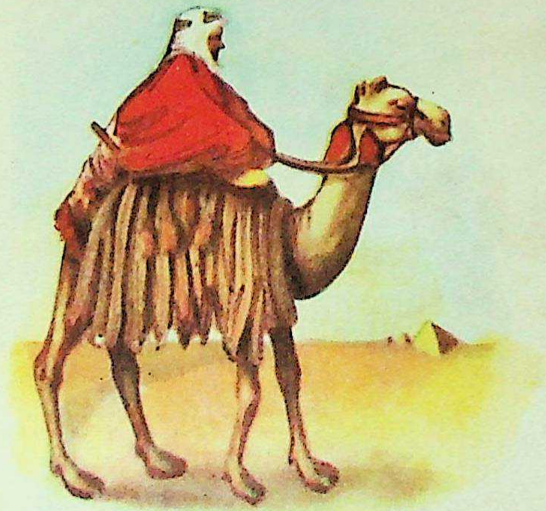
सभी रोमयुक्त जीव स्तनपायी कहलाते हैं। स्तनपायी मादाएं अपने शरीर की ग्रन्थियों में अपने शिशुओं के लिए दूध उपजाती हैं। प्रत्येक जाति के स्तनपायी जीवों का दूध अन्य जातियों के स्तनपायियों के दूध से भिन्न होता है, किन्तु दूध की विभिन्न किस्मों में बहुत अधिक समानता है। गाय का दूध हमारी अपनी माताओं के दूध से इतना मिलता-जुलता है कि मानव-शिशुओं को गाय का दूध दिया जा सकता है।

गाय के अतिरिक्त अन्य भी अनेक पशु दूध देते हैं जिसका लोग आहार करते हैं। उनमें ऊंट, लामा, रेंडियर, बकरी, याक, भैंस और भेड़ आदि सम्मिलित हैं।



दक्षिणी अमरीका में लामाओं का दूध काम में आता है।

दूध में वे सब तत्त्व विद्यमान हैं जिनका शिशुओं के आहार में होना आवश्यक है। उसमें शर्करा और चर्बी होती है। ये तत्त्व गर्मी और शक्ति देते हैं। विकास के लिए आवश्यक प्रोटीन भी उसमें होती है। हड्डियों और दांतों को पक्का बनाने के लिए उसमें खनिज भी होता है। उसमें विटामिन भी होते हैं, जो शरीर को समुचित कार्य के योग्य बनाते हैं।



ऊंटनी का दूध भी लोग इस्तेमाल करते हैं।

आगे चलकर इनमें से कई एक तत्त्वों की शिशुओं को अधिक आवश्यकता पड़ती है। अतः उन्हें अन्य आहार भी लेने चाहिए। वे ज्यों-ज्यों बड़े होते जाएं उन्हें दूध लेते रहना चाहिए। इसका एक कारण यह है कि कैल्सियम के लिए दूध सबसे अच्छा स्रोत है। कैल्सियम एक प्रकार का खनिज है जो हड्डियों को मज़बूत बनाता है, दांतों को ठीक रखता है और दिल को ठीक-ठीक काम करते रहने की शक्ति देता है। 12 वर्ष के बालक-बालिकाओं को प्रतिदिन आधा किलो के लगभग दूध पीना चाहिए।

दूध अपने-आप में एक उत्तम आहार ही नहीं है, बल्कि इससे अन्य कई अच्छे भोजन भी बनते हैं। दूध की मलाई या चिकनाई से मक्खन निकलता है। उसकी प्रोटीन से पनीर बनता है। इन चीज़ों को खाकर कोई भी व्यक्ति अपनी आवश्यकता का थोड़ा-बहुत दूध तो प्राप्त कर ही सकता है।

अब पाउडर और डिब्बाबंद रूप में भी दूध मोल लिया जा सकता है। इस प्रकार के दूध को बहुत दिनों तक रखा जा सकता है।

दृष्टिभ्रम (OPTICAL ILLUSIONS) : कहावत है कि 'यह तो आंखों देखी बात है।' लेकिन यह कहावत बहुत ठीक नहीं है। हमारी आंखें भी हमें धोखा दे सकती हैं। हमारी आंखें हमें जो धोखा देती हैं उसे 'दृष्टिभ्रम' कहते हैं। यहां चित्रों में दृष्टिभ्रम के कुछ उदाहरण दिए गए हैं।

डिब्बोंवाले भ्रम में पहली बार देखने पर अधिकांश लोगों को यह लगेगा कि डिब्बे पांच हैं। लेकिन अगर थोड़ी देर तक ध्यान से देखा जाए, तो चित्रों की स्थिति बदल जाएगी, और तब केवल तीन ही डिब्बे दिखाई देंगे।

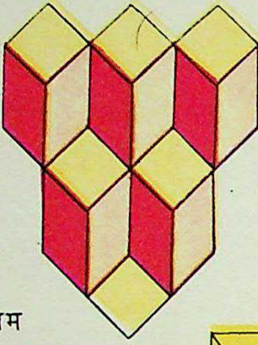
चक्रोंवाले भ्रम में अगर किताब को धीरे-धीरे हिलाया जाए और दोनों चक्रों के बीच में ध्यान से देखा जाए तो एक चक्र जिस दिशा में घूमता दीखेगा दूसरा उसकी उल्टी दिशा में घूमता मालूम होगा।

नीचे के चित्र में दोनों आदमियों का आकार बराबर है। परन्तु हमें दूसरा आदमी अधिक बड़ा दीखता है। आम तौर पर हम यह आशा करते हैं कि दूसरा आदमी छोटा दिखाई पड़ेगा, क्योंकि वह पहले से अधिक दूरी पर है। रेल की पटरियां उस रूप में ही खींची गई हैं, जैसे ये हमें दिखाई देंगी। खैर, इतना तो हम जानते ही हैं कि दूरी पर जाकर रेल की पटरियां आपस में उसी तरह से मिल नहीं जाती हैं, जिस तरह मिली हुई ये हमें दिखाई देती हैं।



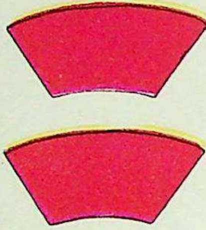


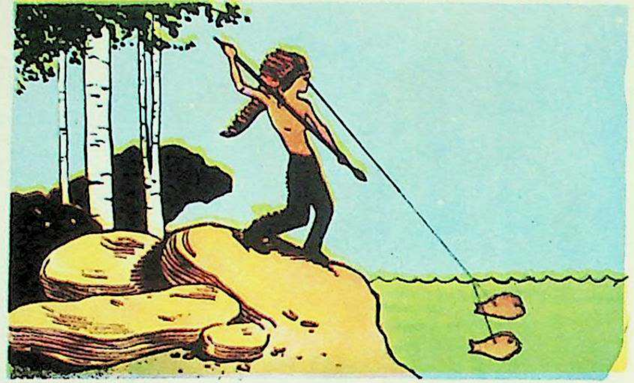
ठंडे प्रदेशों में रेंडियर और गरम प्रदेशों में गाय-भैंस का दूध काम में आता है।

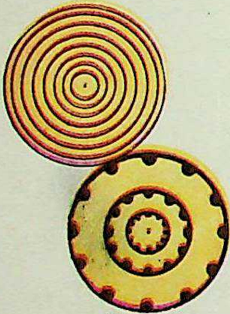


डिब्बों का भ्रम

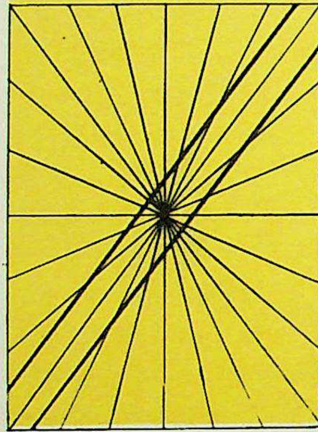
दोनों में कौन बड़ा है ? कोई नहीं ।



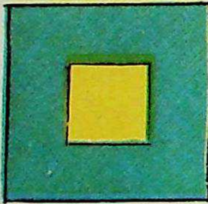


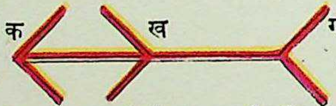


चक्रों का भ्रम

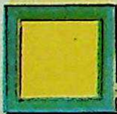


दोनों मोटी रेखाएं सीधी हैं ।

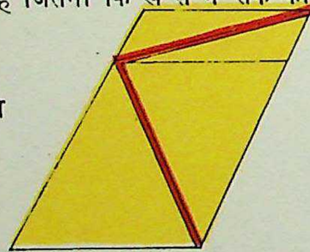




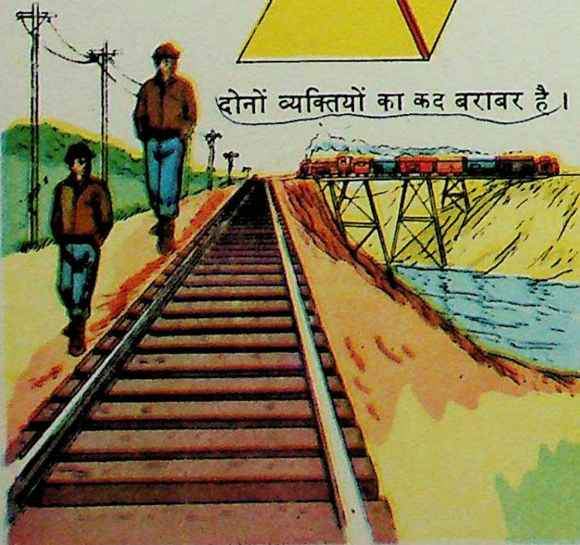
क से ख तक की रेखा उतनी ही लम्बी है जितनी कि ख से ग तक की रेखा ।



दोनों चौखटों के बीच के वर्ग बराबर हैं ।



दोनों व्यक्तियों का कद बराबर है ।

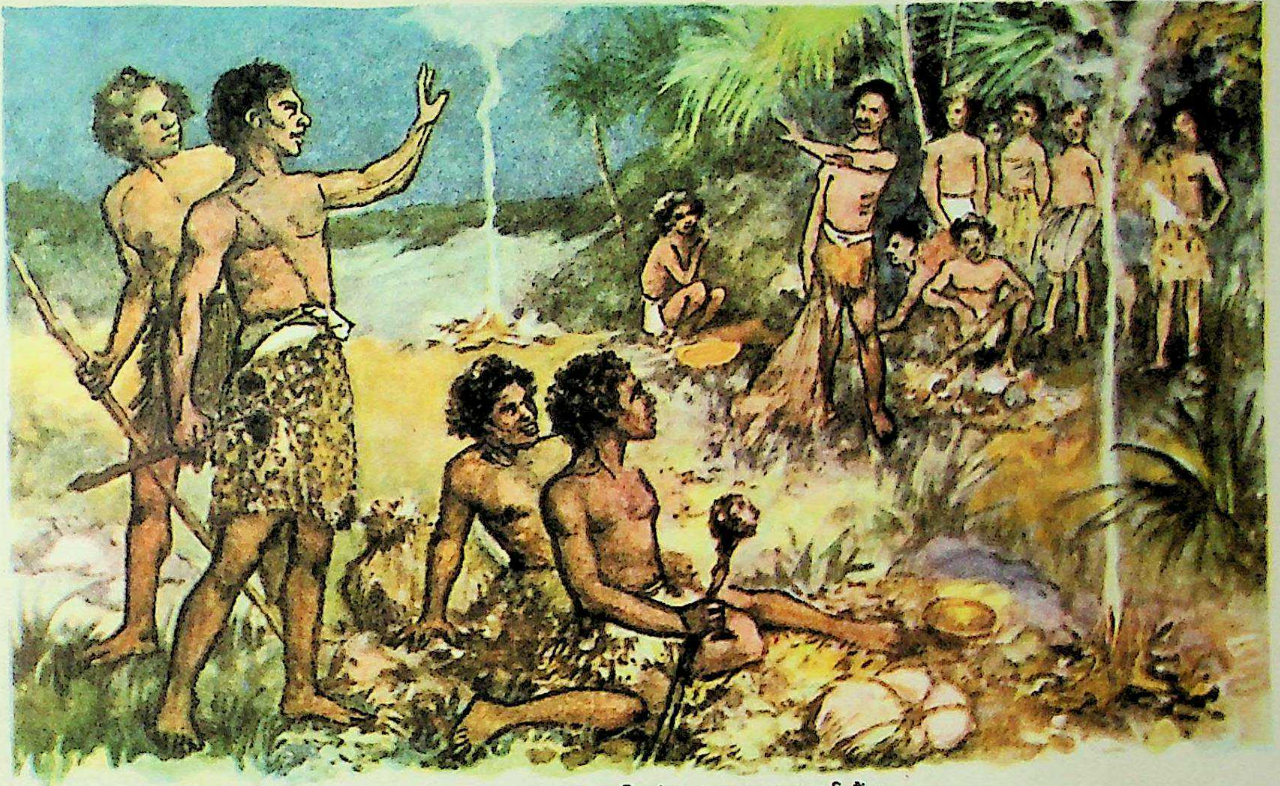


पानी से भी कुछ दृष्टिभ्रम उत्पन्न होता है । पानी में पड़ी हुई चीज़ ठीक जहां है, वहां से कुछ दूरी पर दिखाई देती है । पानी में पड़ी हुई चीज़ से आनेवाली प्रकाश की किरणें पानी के तल से उठते ही मुड़ जाती हैं । इस मोड़ से दृष्टिभ्रम पैदा हो जाता है । अगर चित्र में दिया हुआ मनुष्य अपने भाले को वहां साधकर मारेगा, जहां मछली दिखाई पड़ रही है, तो उसका निशाना चूक जाएगा ।

भवन-निर्माता और घरों की सजावट करनेवाले तथा नई पोशाकें निकालनेवाले अक्सर दृष्टिभ्रम का प्रयोग करते हैं । अगर किसी कमरे की दीवारों पर खड़ी रेखाएं बनी हों, तो कमरे की छत अधिक ऊंची मालूम होगी ।

उगते हुए चन्द्रमा का आकार आम दृष्टिभ्रमों में से एक है । चांद उगते हुए बहुत बड़ा दिखाई देता है, लेकिन जब सिर पर आ जाता है तो काफी छोटा मालूम होता है । उगते हुए चांद के चित्र को देखकर निराशा होती है, क्योंकि चित्र में चांद बहुत छोटा दीखता है । चन्द्रमा हमारी आंखों को धोखा दे सकता है लेकिन वह कैमरे को धोखा नहीं दे सकता । अनेक दृष्टिभ्रमों का कारण समझाया जा सकता है, लेकिन चन्द्रमा के भ्रम का कारण नहीं बताया जा सकता । वैज्ञानिक लोग 2,000 वर्षों से इसका कारण ढूंढने में लगे हुए हैं ।

नरभक्षक (CANNIBALS) : मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है । लेकिन एक समय ऐसा भी था जब मनुष्य निरा पशु था और अपनी ही जाति के मनुष्य को मारकर उसका मांस खा जाता था । बड़ी मछली छोटी मछली को खा जाती है और कुछ किस्म की मकड़ियां एक-दूसरे को खा जाती हैं । लेकिन, एक मनुष्य दूसरे मनुष्य को भक्षण करे—यह विचार ही कंपा देने वाला है । फिर भी यह सत्य है कि मैक्सिको में कभी रहनेवाली सुसभ्य आज़्तेक जाति में भी नरमांस-भक्षण की घिनौनी प्रथा प्रचलित थी । प्रशांत महासागर के कुछ द्वीपों के कबीलों में बीसवीं



अब नरभक्षक जातियां बहुत कम रह गई हैं।

शताब्दी के इस आधुनिक युग में भी नरभक्षी मानव पाए जाते हैं।

शायद भिन्न-भिन्न कबीले अलग-अलग कारणों से नरभक्षी बने होंगे। कुछ लोगों का विश्वास रहा होगा कि बहादुर मनुष्यों को मारकर खाने से वे भी बहादुर हो जाएंगे। कुछ लोगों का धर्म उन्हें नरमांस-भक्षण की अनुमति देता था। कुछ लोग खाने के लिए और कुछ न मिलने पर मजबूरी में नरमांस का भक्षण करने लगे होंगे। भोजन की कमी वाले कुछ प्रदेशों में बूढ़े आदमियों को मारकर उनका मांस खाने का रिवाज हो गया था। ऐसा न करना बड़े-बूढ़ों का अपमान समझा जाता था। कुछ लोग युद्ध में बंदी बनाए गए शत्रुओं को पहले अपने देवताओं को बलि चढ़ाते थे, और फिर उनका मांस खा जाते थे। मैक्सिको के आज़्तेक लोग ऐसा ही करते थे। इसीलिए, वे शत्रुओं को मारने के बजाय उन्हें जीवित ही पकड़ने का प्रयत्न करते थे।

नाक (NOSE) : नाक हमारे चेहरे का एक मुख्य भाग है। चेहरे की सुन्दरता बहुत हद तक नाक की बनावट पर निर्भर करती है। नाक के दो काम हैं—श्वास लेना और गंध ग्रहण करना। नाक के दोनों नथनों में वायु को छानने और शुद्ध करने के कई साधन होते हैं। इनके भीतर अनेक छोटी-छोटी ग्रंथियों से एक तरल, चिपचिपा पदार्थ निकलता है जो कीटाणुनाशक होता है। वायु में मौजूद धूलिकण और बहुत-से जीवाणु आदि उसमें चिपककर नष्ट हो जाते हैं और फेफड़ों तक नहीं पहुंचते। नाक के बाल भी इस कार्य में सहायक होते हैं।

गंध का ज्ञान नाक के ऊपरी भाग में फैले हुए घ्राण-तंतुओं से होता है। अलग-अलग तरह की गंधों को ग्रहण करने के लिए अलग-अलग घ्राण-तंतु होते हैं। मस्तिष्क की घ्राण-नाड़ी की शाखाएं यहां श्लैष्मिक झिल्ली के नीचे फैली रहती हैं। उन्हींके द्वारा मस्तिष्क के घ्राण-केन्द्र को गंध का ज्ञान होता है।

बहुत-से जीव-जन्तुओं की नाक या सूंघने की शक्ति बहुत तेज़ होती है। वे सूंघकर ही अपने शिकार का पता लगा लेते हैं। मनुष्य में सूंघने की शक्ति का विकास मामूली ही हुआ है। जब तेज़ जुकाम होता है तो नाक में बलगम बहने लगता है और सूंघने की शक्ति जाती रहती है। इसका कारण यह है कि नाक के घ्राण-तंतुओं पर बलगम की एक मोटी तह जम जाती है जो गंध को उनके सम्पर्क में आने से रोकती है।

नाखून (NAILS) : हमारे हाथ-पैरों में कुल मिलाकर बीस नाखून होते हैं। ये पपड़ीदार, अंडाकार और पतले होते हैं। जितना हम समझते हैं, ये उससे कहीं अधिक हमारे लिए उपयोगी हैं। हमारी उंगलियों के नाखून

चीज़ें चुनने और कलात्मक काम करने में सहायक सिद्ध होते हैं। ये हमारी उंगलियों के सिरों को भी बचाते हैं।

खाल की एक विशेष तह से नाख़ून बनते हैं। यदि नाख़ून नीरोग हों तो टूट-फूट के बावजूद ये बढ़ते रहते हैं और हमारे हाथ-पांव की उंगलियों के सिरों को बचाए रखने के लिए सदैव काफी लंबे रहते हैं। वस्तुतः ये जितनी तेज़ी से बढ़ते हैं उतनी तेज़ी से घिसते नहीं, और कहीं ये अत्यधिक लंबे न हो जाएं इसलिए इन्हें काटना पड़ता है।

हमारी उंगलियों के नाख़ूनों का हमारे रूप से भी घनिष्ठ सम्बन्ध है। हस्तप्रसाधन (Manicures) का मुख्य अभिप्राय नाख़ूनों की देखभाल है। हस्तप्रसाधन में एक बहुत बड़ी बात है उपत्वचा (Cuticle) का सुडौल होना।

नाख़ूनों की किस्में



उपत्वचा उस पतली खाल को कहते हैं जो नाख़ूनों की जड़ के ऊपर उभर आती है। इसे धीरे-धीरे पीछे सरका देना चाहिए। यदि यह बहुत आगे तक बढ़ जाए और काटने की आवश्यकता पड़े तो काट-छांट बड़ी सावधानी से करनी चाहिए।

अनेक जीवों में खाल की वह तह होती है जिससे हमारे नाख़ून बनते हैं। उनके नख हमारे नाख़ूनों से बहुत कुछ मिलते-जुलते हैं। कई जीवों के नखों के स्थान में तीखे पंजे होते हैं और कई के खुर होते हैं। क्या नख, क्या तीखे पंजे और क्या खुर, ये सब एक ही तरह से और एक ही पदार्थ से बनते हैं।

वनमानुषों के नख हमसे मिलते-जुलते होते हैं। यही बात बंदरों में है। कुछ बंदरों के चपटे नख होते हैं और कुछ के पंजे होते हैं। कुछ पंजे और कुछ नख वाला एक दूसरा प्राणी है वालरस। वालरस के अगले पांवों की सब उंगलियों पर साधारण नख होते हैं, किन्तु उसके पिछले पांवों की कुछ उंगलियों पर तीखे नख होते हैं।

शेर, चीते, बिल्लियां और कुत्ते उन अनेक स्तनपायियों में से हैं जिनके सारे पांवों में तीखे नख होते हैं। चिड़ियों, कछुओं और छिपकलियों की भी सब उंगलियों पर तीखे नख होते हैं।

स्तनपायियों के एक बड़े वर्ग के खुर होते हैं, जिनमें घोड़ा भी एक है। जब घोड़ा दौड़ता है तो वास्तव में वह अपने खुरों या नाख़ूनों के बल पर दौड़ता है।

नाम (NAMES) : सभी व्यक्तियों और आवश्यक स्थानों के नाम होते हैं। ज़रा सोचिए यदि नाम न रहते तो कितनी मुश्किल पड़ती।

कोई नहीं जानता कि कुछ नाम कैसे पड़े। अनेक नामों से उस स्थान से सम्बन्धित कोई न कोई बात प्रकट होती है। जो बस्ती किसी दरिया (नदी) के किनारे बसी हो उसका नाम 'दरियागंज' आसानी से रखा जा सकता है। भूमध्यसागर और प्रशान्त महासागर आदि नाम इसी प्रकार पड़े। जो सागर 'भू' अर्थात् धरती के मध्य में है वह भूमध्य सागर कहलाया। प्रशांत महासागर का यह नाम इसलिए पड़ा क्योंकि वह अन्य सागरों की अपेक्षा शांत है।

कई प्राचीन नगर आबादियों और दुर्गों के पास बस गए। जिस जगह फरीद के साथी आबाद हुए उसका नाम पड़ गया फरीदाबाद। दुर्गापुर, पुराना किला आदि नामों का सम्बन्ध उन स्थानों के प्राचीन दुर्गों से है।

कई स्थानों के नामों से पहले 'नई' या 'नया' शब्द होता है, जैसे नई दिल्ली, नई सड़क, नया बाज़ार आदि। उनसे यह प्रकट होता है कि नई जगह पर बसनेवालों ने उसका नाम अपनी उस पुरानी जगह के नाम पर रख दिया जहां से वे आए थे। न्यूयार्क, न्यू लंदन, न्यू मैक्सिको आदि नाम भी इसी प्रकार रखे गए हैं।

कई स्थानों और गली-मुहल्लों के नाम प्रसिद्ध पुरुषों के नाम पर रखे जाते हैं, जैसे कृष्णनगर, लक्ष्मण झूला, अमरीका का नगर वाशिंगटन तथा रूस का नगर लेनिनग्राद आदि।

जब लोग छोटे-छोटे समूहों में रहते थे तो एक व्यक्ति का एक ही साधारण नाम पर्याप्त होता था। आजकल प्रायः हर एक के दो-दो तीन-तीन नाम होते हैं। पहला नाम वह होता है जो नामकरण के अवसर पर विधिवत् रखा जाता है। दूसरा नाम होता है पैतृक नाम, अर्थात् उपजाति, जैसे गुप्ता, शर्मा, नेहरू, गांधी आदि। भारत में अधिकतर नाम सार्थक होते हैं, किन्तु पिछड़े वर्गों और आदिम जातियों में निरर्थक नाम भी रखने का रिवाज है।

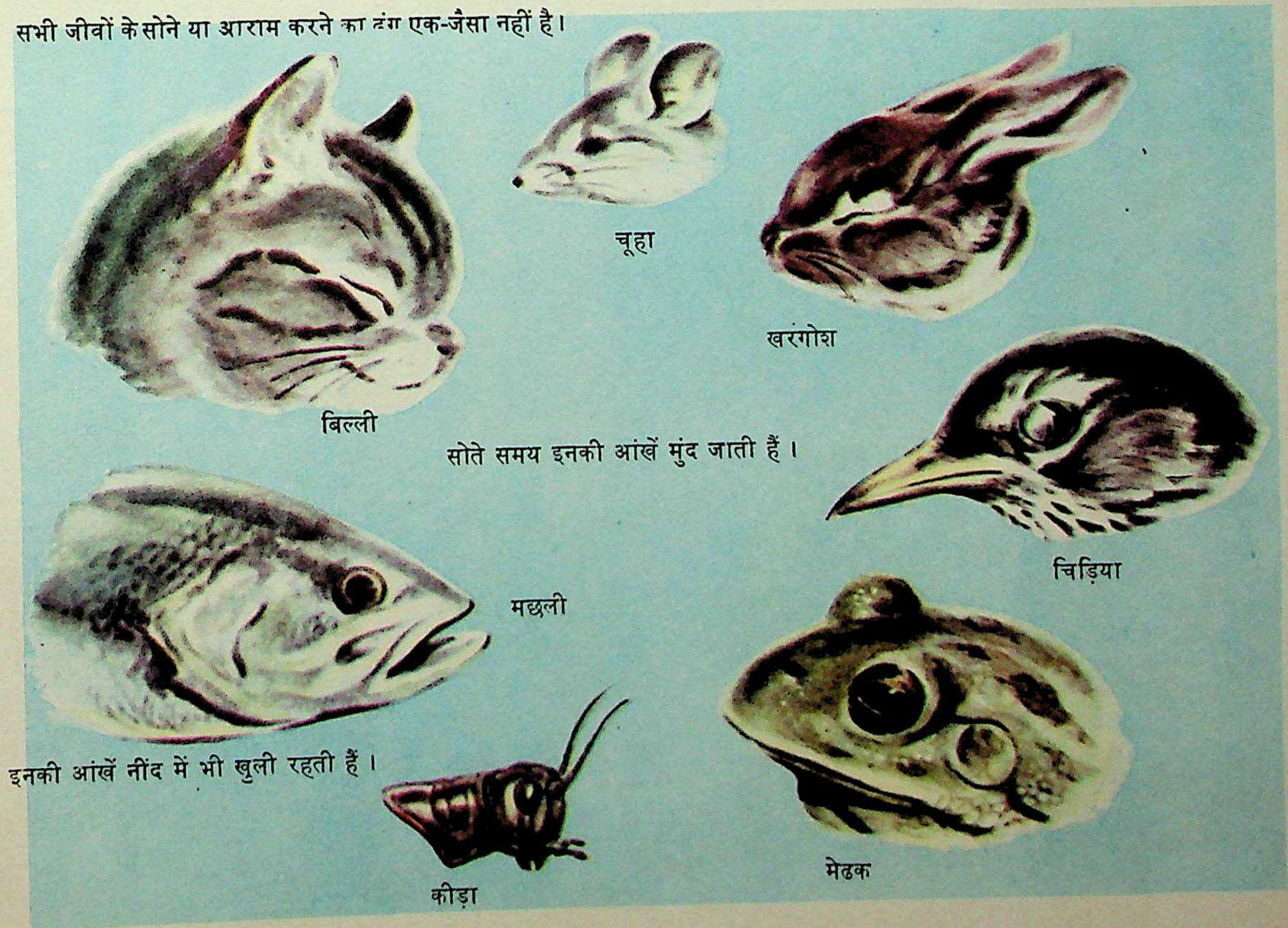
नाम के अन्तिम पद लगाने के भी कई तरीके हैं। अंग्रेज़ी में कहीं-कहीं 'सन' (अर्थात् पुत्र) शब्द अन्त में लगाया जाता है, जैसे 'जॉनसन' अर्थात् जॉन का पुत्र। कुछ पद व्यवसायविषयक होते हैं, जैसे 'स्मिथ' (लोहार)। भारत में राजपूत, सिख, जाट, गोरखा आदि वीर जातियों के नाम का अन्तिम पद 'सिंह' होता है जो वीरता का प्रतीक है, जैसे रामसिंह, प्रतापसिंह, फतहसिंह आदि। कुछ नामों का सम्बन्ध उस प्रदेश से होता है जो किसी व्यक्ति-विशेष का जन्मस्थान हो, जैसे 'गांधारी', अर्थात् गांधार प्रदेश की रहनेवाली। कुछ नाम गुणों से सम्बन्धित होते हैं, जैसे 'सत्यपाल', अर्थात् सत्य का पालन करनेवाला। यूरोप में कुछ नाम पशुओं के नामों के आधार पर रखे जाते हैं, जैसे फॉक्स (लोमड़ी)। संसार में पौधे से लेकर पशुओं तक प्रत्येक का कुछ न कुछ नाम अवश्य होता है।

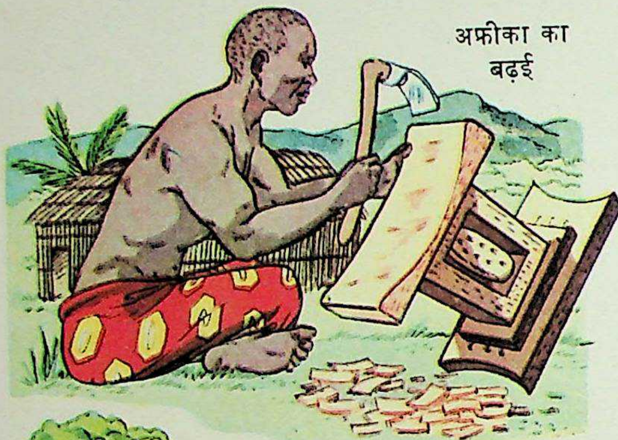
नींद (SLEEP) : बहुत-से लोग समझते हैं कि सोना समय गंवाना है। लेकिन ऐसा नहीं है। हम सभीको स्वस्थ और नीरोग रहने के लिए रोज़ कई घंटे ज़रूर सोना चाहिए।

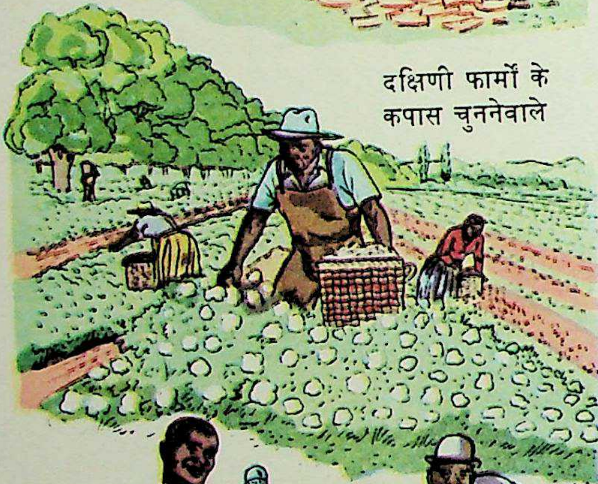
जब हम काम करते या खेलते रहते हैं तो हमारा शरीर थकता रहता है। दिन-भर में बहुत सी कोशिकाएं, जिनसे हमारे शरीर की रचना हुई है, नष्ट हो जाती हैं। किसी भी तरह के आराम से शरीर पुनः अपनी पहले की हालत में आ जाता है और नींद सबसे बढ़िया आराम है। सोने की अवधि में शरीर को नई कोशिकाएं बनाने का अच्छा मौका मिल जाता है। जब हम सोते रहते हैं तब भी हमारे शरीर के कुछ अंग कार्य करते रहते हैं। उदाहरण के लिए, हमारे हृदय में धड़कन होती रहती है और फेफड़े वायु को भीतर खींचते तथा बाहर फेंकते रहते हैं। वैसे हमारे सोते रहने पर इन दोनों की गति ज़रा धीमी हो जाती है।

बच्चों को बड़ों से ज़्यादा समय तक सोने की ज़रूरत होती है, क्योंकि क्षति-पूर्ति करने के अलावा उनके शरीर को विकसित भी होना होता है। छोटे शिशु जितनी देर जागते हैं उससे दुगना समय सोने में लगाते हैं। इसके विपरीत, बड़े लोग जितना सोते हैं, उससे दुगने समय तक जागते रहते हैं।

हमारे मस्तिष्क के लिए भी नींद उतनी ही ज़रूरी है जितनी कि वह हमारी पेशियों के लिए है। पर्याप्त नींद के बिना लोग क्रुद्ध और चिड़चिड़े हो जाते हैं। वे बहुत




अफ्रीका का बढ़ई


दक्षिणी फार्मों के कपास चुननेवाले


कलाकार

वैज्ञानिक

नगर नेता

नर्स

शीघ्र भूलने लगते हैं और अपना काम ठीक से नहीं कर पाते।

ऐसा कोई नियम नहीं बनाया जा सकता जिससे हर एक को पता चल जाए कि उसे कितना सोना चाहिए। एक ही उम्र के दो व्यक्तियों में से एक को दूसरे से ज़्यादा सोने की ज़रूरत हो सकती है। हर आदमी को अपने लिए इस बात का पता ख़ुद लगा लेना चाहिए कि भला-चंगा रहने के लिए उसे कितनी देर सोना ज़रूरी है।

अन्य जीव भी सोते हैं। कुछ के सोने का ढंग तो हमें बहुत विलक्षण लगेगा। उदाहरण के लिए, चमगादड़ पिछले पैरों के बल उलटा लटककर सोते हैं। जिराफ़ खड़े-खड़े ही सो लेते हैं। बहुत-सी चिड़ियां पेड़ों की शाखाओं को अपने पंजों से जकड़कर सोई पड़ी रहती हैं। हम लोग सोते समय आंखें मूंद लेते हैं, लेकिन सभी जीव ऐसा नहीं करते।

किसीको बिलकुल ठीक-ठीक नहीं मालूम कि मनुष्यों और दूसरे जन्तुओं को नींद क्यों आती है। शायद काम करते या खेलते समय हमारे शरीर में जो बेकार चीज़ें बनती रहती हैं उनके कारण नींद आती हो या शायद आदत के कारण ही आती हो। वैज्ञानिक नींद के कारणों का पता लगाने की कोशिश में लगे हुए हैं।

(देखें : आराम)

नीग्रो (NEGRO) : वैज्ञानिक लोग मनुष्य जाति को तीन प्रमुख वर्गों में बांटते हैं। इन तीनों वर्गों को प्रायः श्वेत जातियां, पीत जातियां और श्याम जातियां कहा जाता है। इनके लिए अधिक उपयुक्त नाम कॉकेशियाई, मंगोलीय और नीग्रोइड हैं। नीग्रो जाति नीग्रोइड वर्ग में ही आती है।

नीग्रो लोगों का मूल स्थान अफ्रीका है। वहां से आज ये दुनिया के विभिन्न भागों में फैले हुए हैं। कहा जाता है कि कोलम्बस ने जब अमरीका का पता लगाया था उस समय उसके मल्लाहों में एक नीग्रो भी था। नई दुनिया के कुछ नये यात्रियों—बाल्बोआ, कोर्तेज़ और पिज़ारो—के साथ भी नीग्रो लोग थे। अमरीका में आधुनिक युग के पहले जो नीग्रो पहुंचे थे, उन्हें गुलाम बनाकर ले जाया गया था। कारण यह था कि गरम प्रदेशों में खेती-बारी के काम के लिए ये बहुत उपयुक्त थे।

उन्नीसवीं शताब्दी में धीरे-धीरे दुनिया के सभी भागों से गुलामी की प्रथा समाप्त कर दी गई। लेकिन गुलामी से छूटने के बाद भी नीग्रो लोगों को आगे बढ़ने का अधिक अवसर नहीं मिला। उनके लिए कई प्रकार की रोज़ियों के द्वार बन्द कर दिए गए थे। अच्छी शिक्षा प्राप्त करने के बहुत ही कम अवसर उन्हें प्राप्त थे। लेकिन आज हालत काफी बदल गई है। अच्छी शिक्षा और प्रशिक्षण मिलने के कारण नीग्रो लोगों ने कई क्षेत्रों में नाम पैदा किया है।

नौका-दौड़ (BOAT RACE) : घोड़ों, मोटरों और साइकिलों की दौड़ की तरह, कितने ही देशों में नौका-दौड़ भी एक लोकप्रिय सामूहिक मनोरंजन है। नौका-दौड़ का इतिहास बहुत पुराना है। भारत के केरल राज्य में सदियों से धार्मिक त्योहारों पर नौका-दौड़ का कार्यक्रम भी रहता है। इधर काफी समय से इसे वहां एक सामूहिक खेल का रूप दे दिया गया है।

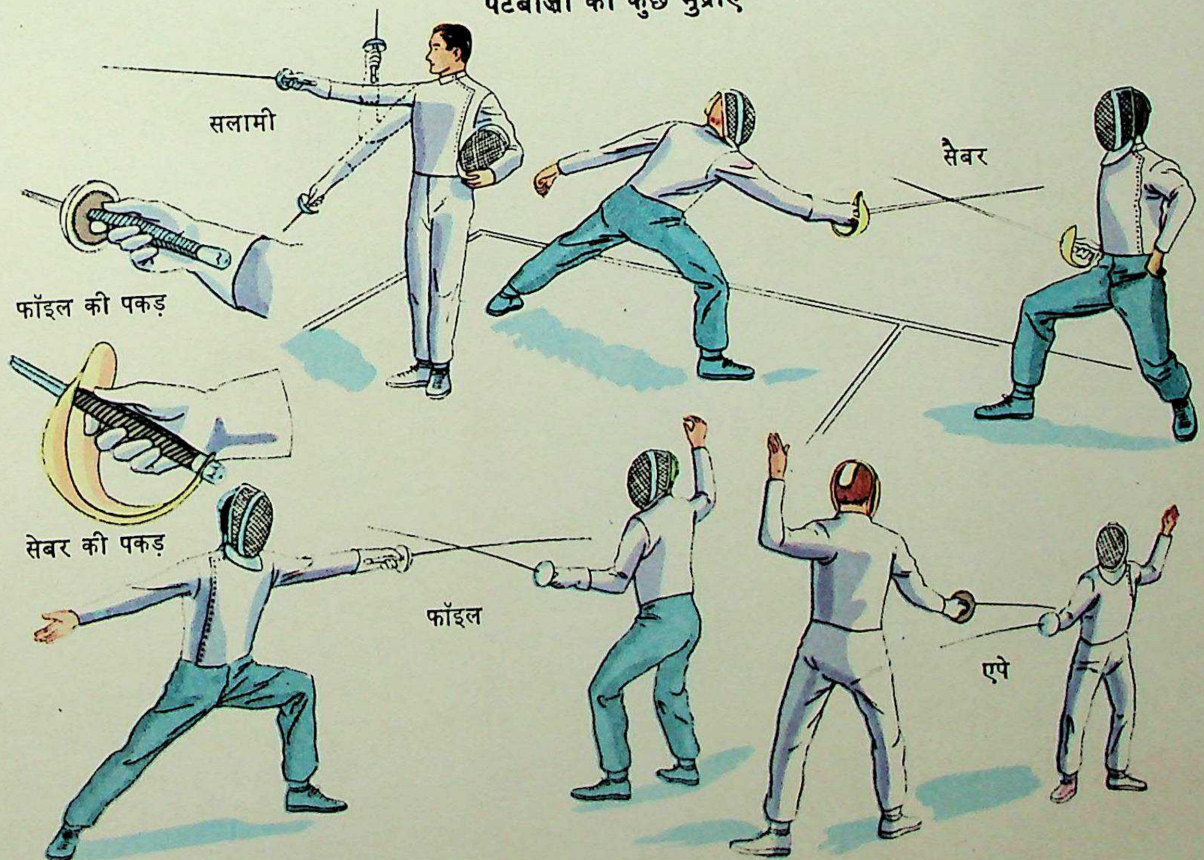
नौका-दौड़ के लिए केरल में जो नौकाएं प्रयोग में लाई जाती हैं वे सर्प नौकाएं कहलाती हैं। वे एक खास किस्म की काली लकड़ी की बनी होती हैं। सर्प नौकाएं कोई पचास फुट लम्बी और बीच में से इतनी तंग होती हैं कि बस दो आदमी ही बैठकर नौका खे सकते हैं। बाकी लोग दौड़ के समय नौका के बीच में खड़े रहते हैं और एक स्वर-ताल में ताली बजाकर नौका खेनेवालों का उत्साह बढ़ाते रहते हैं। नौकाओं के सिरे पर पक्षियों या पशुओं के चेहरे की आकृति बनी होती है। पानी पर ये नौकाएं तेज़ी से फिसल सकें, इसके लिए इनपर मछली का तेल मल दिया जाता है।

नौका-दौड़ पानी के बहाव के विरुद्ध होती है और प्रायः दो मील की होती है। नदी के किनारों पर दर्शक अपनी छोटी-छोटी नौकाओं में बैठे होते हैं। पानी पर जब ये नौकाएं तेज़ी से दौड़ती हैं तो ऐसा लगता है मानो बड़े-बड़े सर्प पानी की सतह पर भागे जा रहे हों। इसीलिए ये नौकाएं सर्प नौकाएं कहलाती हैं।

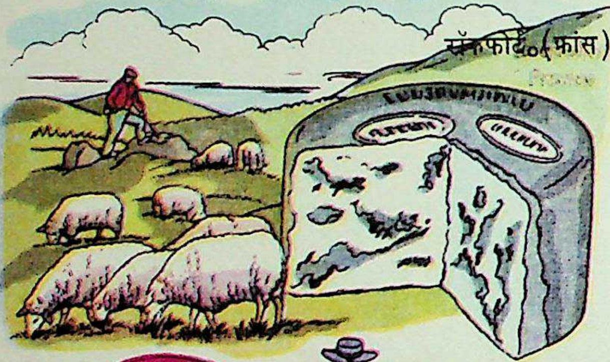
कई देशों में दौड़ के लिए अब आधुनिक ढंग की इंजनवाली नावें प्रयोग में लाई जाने लगी हैं जो यॉट (Yacht) कहलाती हैं। इस तरह की सबसे मशहूर नौका-दौड़ 'अमरीका' कप के लिए होती है। सन् 1851 में 'अमरीका' नामक नाव ने वाइट द्वीप के चारों ओर साठ मील की दौड़ में इस कप को जीता था। 'अमरीका' नाव के मालिक भी अमरीकी थे। कनाडा, इंग्लैंड आदि के नाविकों ने 'अमरीका' कप को जीतने की बार-बार कोशिश की है, लेकिन वे अभी तक सफल नहीं हो पाए हैं।

पटेबाज़ी (FENCING) : शताब्दियों से लोग अपने झगड़ों का फैसला तलवारों के द्वन्द्वयुद्ध से करते आए हैं। इन युद्धों में बहुत से लोग मारे गए। लगभग 600 वर्ष पहले जर्मनों ने तलवारों की धार कुंठित करके तलवारों के युद्ध को एक मनोरंजक खेल का रूप दे दिया। तलवार का शरीर को एक बार स्पर्श एक घाव मान लिया गया। कुशल

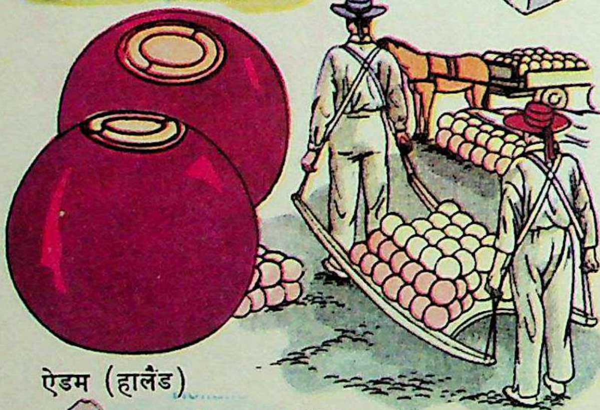
पटेबाज़ी की कुछ मुद्राएं



विभिन्न देशों के पनीर



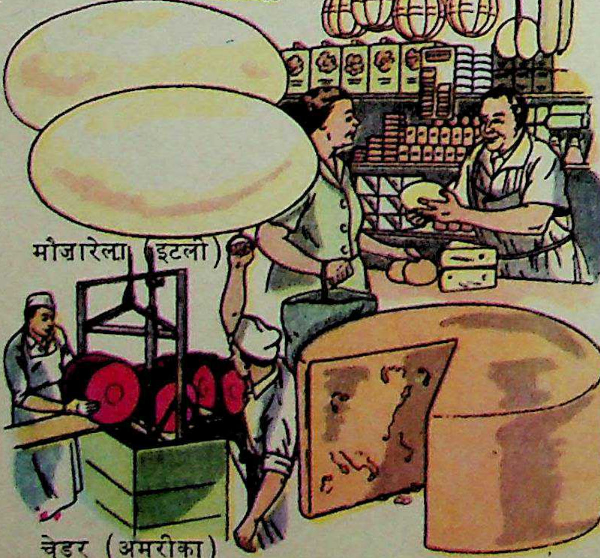
रॉकफोर्ट (फ्रांस)



ऐडम (हालैंड)



स्विस (स्विटज़रलैंड)



मोज़ारेला (इटली)

चेडर (अमरीका)

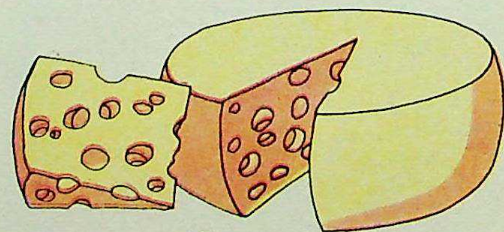
खिलाड़ी उसे माना जाता था जो प्रतिपक्षी के शरीर में तलवार छुग्रा दे ग्रौर ग्रपने-ग्रापको उसकी तलवार से बचाए रखे। यह खेल ग्रब भी लोकप्रिय है। इसे पटेबाज़ी या 'फेंसिंग' कहते हैं।

पटेबाज़ी में तीन प्रकार की तलवारें काम में ग्राती हैं। ग्रलग-ग्रलग खेलों में ग्रलग-ग्रलग तलवारों की ज़रूरत पड़ती है। फॉइल तलवार पतली, लचीली ग्रौर नुकीली होती है। इसका नुकीला हिस्सा शरीर के ऊपरी भाग में छुग्राया जाता है। एपे तलवार कुछ कड़ी होती है। स्पर्श नोक से किया जाता है, मगर शरीर के किसी भी भाग में हो सकता है। सैबर का फलका भारी होता है। इसमें खिलाड़ी को प्रतिपक्षी के शरीर के किसी भी हिस्से में नोक या धार छुग्राने पर ग्रंक मिलते हैं।

पनीर (CHEESE) : जब दूध फटता है तो छैना नीचे बैठ जाता है ग्रौर पानी ऊपर तिर ग्राता है। पनीर छैने से बनाया जाता है। कुछ पनीर बनानेवाले दूध फाड़ने के लिए रेनेट नामक पदार्थ काम में लाते हैं।

पनीर कई तरह का होता है। उसे बनाने के लिए गाय, भैंस, भेड़, बकरी, ऊंटनी या घोड़ी का दूध इस्तेमाल किया जा सकता है। छैने से पनीर बनाने के लिए ग्रनेक विधियां काम में लाई जा सकती हैं। कुछ पनीर जल्दी तैयार हो जाते हैं। कुछ को बहुत दिनों तक रखना होता है। विभिन्न देशों में पनीरों को विशिष्ट स्वाद देने के लिए विशेष प्रकार के फफूंद या जीवाणु डाले जाते हैं।

पनीर एक उत्तम पोषक खाद्य है।



पनीर

पर्वतारोहण (MOUNTAINEERING) : मानव का एक सबसे ग्रधिक दुष्कर, सबसे ग्रधिक कठिन ग्रौर सबसे ग्रधिक लाभकारी मनोरंजन है पर्वतारोहण। पर्वतारोहण का ग्रर्थ है पर्वत पर चढ़ना। जब तक पर्वत रहेंगे तब तक उनपर चढ़ने के इच्छुक लोग भी रहेंगे।

ग्राधुनिक पर्वतारोहियों में कई गुण ग्रपेक्षित हैं जिन्हें हम संक्षेप में दो शीर्षकों में बांट सकते हैं—शैलकौशल (Rock Craft) ग्रौर हिमकौशल (Snow Craft) शैल-शिखरों पर चढ़ना पर्वतारोहण का एक ग्रनिवार्य ग्रंग है। किन्तु वही सब कुछ नहीं है। उससे भी कहीं ग्रधिक इस सूझ



पर्वतारोहियों को कई बार अपने जीवन को संकट में डालकर चढ़ाई चढनी पड़ती है।

की ग्रावश्यकता है कि ग्रमुक शिला या ग्रमुक हाथ की पकड़ कितना भार सह सकती है। हिसाब में तनिक भी चूके कि खतरे में पड़े।

पर्वतारोही तीन-तीन या चार-चार के दलों में जाते हैं। वे लगभग बीस-बीस फुट के ग्रन्तर पर परस्पर रस्सों से बंधे रहते हैं। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि सब लोग एक साथ नहीं चढ़ते। साधारणतः एक ग्रादमी चढ़ता है तो दूसरे रस्से को लपेटकर तानकर रखते हैं। यही एक तरीका है जिससे कठिन ग्रौर खतरनाक चट्टानों से बुरी तरह गिरने से बचा जा सकता है। सबसे ग्रनुभवी ग्रारोही आगे-ग्रागे चलकर दूसरों का मार्गदर्शन करता है। जब वह ग्रच्छी जगह पहुंच जाता है ग्रौर समझता है कि रास्ता ठीक है तो एक-एक करके दूसरे भी उसका ग्रनुसरण करते हैं। यदि चट्टानों की सतह बर्फानी हो तो ग्रारोही लोग ग्रच्छी तरह पांव जमाने के लिए ग्रपने बूटों में ग्रारोहण नालें (Crampons) लगा लेते हैं।

ग्रधिकांश पर्वतारोहण बुरे मौसम में होता है, ग्रतः हिमकौशल इस कार्यवाही का एक महत्त्वपूर्ण विषय है। यहां ग्रनुभव ही ग्रधिक काम ग्राता है। बर्फ में पर्वतारोही हल्की गेंती-जैसा बर्फानी कुल्हाड़ा प्रयोग में लाते हैं। बर्फ काटकर पांव रखने की जगह बनाने के लिए, जहां शिलाएं न मिलें वहां रस्सा लपेटकर बांधने के लिए तथा धरती को जांचने के लिए उसकी ग्रावश्यकता पड़ती है। यह ग्राखिरी बात बहुत ही ग्रावश्यक है क्योंकि ग्रक्सर हिमनदों या ग्लेशियरों की गहरी खाइयां बर्फ से ढक जाती हैं। सामने की बर्फ के नीचे पक्की बर्फ या शिला है या नहीं—यह देखने का यही एक तरीका है कि उसमें कुल्हाड़ा धंसाकर देख लिया जाए। ऐसी दशा में पर्वतारोही सदैव ग्रापस में रस्सा बांधकर चलते हैं, ताकि नेता गिर भी पड़े तो भी दूसरे उसे थाम लें ग्रौर उसे सुरक्षित बाहर खींच लें।

वस्तुतः पर्वतारोहियों को जिन बाधाग्रों का सामना करना पड़ता है वे ग्रनगिनत हैं। चट्टानों का सरकना, ग्लेशियरों का सिर पर ग्रा जाना ग्रौर बर्फीले तूफान तो एक सामान्य-सी बात है। ग्रधिक ऊंचाइयों पर चढ़ते समय ग्रावश्यक ग्रत्यधिक शारीरिक श्रम इस कार्य का शायद सबसे कठिन भाग है। ग्रॉक्सीजन की कमी के कारण लोगों का सांस निरन्तर फूलने लगता है।

पर्वतारोहण में सबसे बड़ा साहसिक कार्य 1953 में सम्पन्न हुग्रा जबकि भारत के तेनसिंग नोर्के ग्रौर न्यूज़ीलैंड के सर एडमंड हिलैरी 29 मई को संसार के सर्वोच्च शिखर माउंट एवरेस्ट पर चढ़ने में सफल हो गए।



पाकविद्या (COOKING) : यदि हम भोजन पकाना न जानते तो वह हमें कैसा लगता ! गाजर, मूली, रसभरी कच्ची खाई जाती हैं। दूध भी कच्चा पिया जा सकता है। पर कच्चे अंडे, आलू और मांस बहुत-से लोगों को अच्छे नहीं लगेंगे। रोटी, दाल, खीर और बिस्कुट आदि तो बिना पकाए बन ही नहीं सकते।

पकाने से भोजन का स्वाद सुधरता है। वह सुपाच्य बनता है। गर्मी से कीटाणु भी मर जाते हैं।

कोई नहीं जानता कि मनुष्य ने भोजन पकाना कब आरम्भ किया। शायद कभी किसीके हाथ से मांस का टुकड़ा छटककर आग में गिर पड़ा। वह पका। लोगों ने खाया। वह स्वादिष्ट लगा और पकाने की रीति चल पड़ी।

आरम्भ में पकाने का अधिकतर काम खुली आग पर होता था। इससे भोजन तो पक जाता था, पर यह विधि गंदी और बेढंगी थी। आधुनिक चूल्हे, अंगीठियां और स्टोव वगैरह उससे अच्छे और सुविधाजनक हैं।



अमरीका के आदिवासी मांस के टुकड़ों को पत्तों और मिट्टी में लपेटकर अंगारों में डालते थे और पकने के बाद निकालकर खाते थे। दूसरी विधि में एक गढ़े के भीतर आग जलाई जाती थी। जब वह खूब गर्म हो जाता था तो उसके भीतर भोजन रखकर उसका मुंह बन्द कर दिया जाता था।

भोजन बनाने में कई क्रियाएं हैं। हम चने भूनते हैं, रोटी सेंकते हैं, गाजरें बफाते हैं, चावल उबालते हैं, पकौड़ियां तलते हैं और साग छौंकते हैं। आग लकड़ी और कोयले से जलाई जाती है। उसके लिए गैस और बिजली भी काम में लाई जाती है।

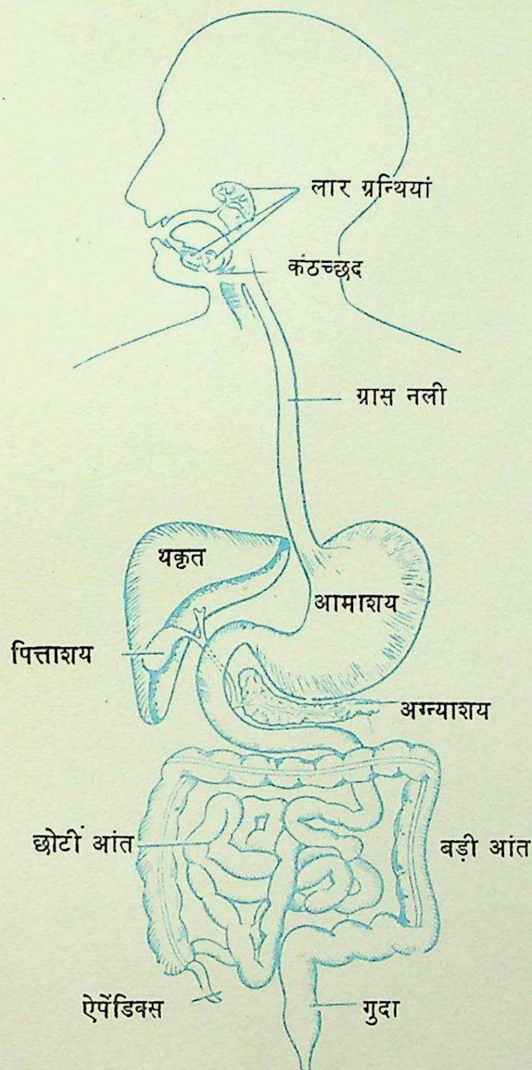
पाचन-क्रिया (DIGESTION) : हमारा शरीर करोड़ों कोशिकाओं या सेलों से बना है। इनमें से प्रत्येक कोशिका को भोजन की आवश्यकता होती है। रक्त द्वारा इन सब तक भोजन पहुंचता है। हमारा भोजन रक्त में मिल सके इसके लिए आवश्यक है कि वह तरल रूप में परिवर्तित हो। इसी परिवर्तन को पाचन-क्रिया कहते हैं।

भोजन पचाने में हमारे शरीर के कई अंग सहायक होते हैं। इन सबको मिलाकर पाचन-तंत्र (Digestive System) कहा जाता है।

हम भोजन के रूप में कई प्रकार की जिन चीज़ों को खाते हैं उन्हें तरल रूप में परिवर्तित करने के लिए कई प्रकार के पाचक रसों की आवश्यकता होती है। इनमें से एक रस है लार। लार हमारे मुंह में आस-पास की ग्रंथियों



पाचन-तंत्र



से आती है। जब हम भोजन चबाते हैं तो लार उसमें मिल जाती है।

जब भोजन आमाशय में पहुंचता है तो आमाशय-रस (Gastric Juice) उसमें मिल जाता है। आमाशय-रस हमारे आमाशय की दीवारों से निकलता है। इसके बाद भोजन छोटी आंत या क्षुद्रांत्र में पहुंचता है। वहां तीन प्रकार के अन्य पाचक रस उसमें मिल जाते हैं। ये तीन रस हैं पित्त (Bile), अग्न्याशय रस (Pancreatic Juice) और आंत्र रस (Intestinal Juice)। पित्त यकृत से आता है, अग्न्याशय रस अग्न्याशय से और आंत्र रस छोटी आंत की दीवारों से।

भोजन छोटी आंत में से गुज़रता है तो उसका जो कुछ अंश पचना होता है वह पच जाता है। पचा हुआ भोजन छोटी आंत की दीवार में स्थित रक्तवाहिकाओं की दीवारों द्वारा सोख लिया जाता है। भोजन का बचा हुआ कूड़ा-कर्कट बड़ी आंत में चला जाता है और वहां से बाहर निकाल दिया जाता है।

अन्य प्रकार के जीवों को भी अपना भोजन पचाना पड़ता है। लेकिन अधिकांश जीवों के भोजन में उतनी अधिक चीज़ें सम्मिलित नहीं होतीं जितनी कि हमारे भोजन में होती हैं।

पारिवारिक जीवन (FAMILY LIFE) : झील की तलहटी की रेती में सूर्यमत्स्य (सन फिश) नामक एक बड़ी गोल मछली का नर एक बिल बना देता है। उसकी मादा बिल में अंडे देती है और चली जाती है। जब तक अंडों से बच्चे नहीं निकल आते तब तक नर उनकी रखवाली करता है। इसके बाद बच्चों को उनके हाल पर छोड़कर वह भी चला जाता है। सूर्यमत्स्य पारिवारिक जीवन से अपरिचित है।

बहुत-से जानवरों में पारिवारिक जीवन है। मिसाल के तौर पर, रोबिन पक्षियों में नर अंडे सेती हुई मादा के लिए खाना जुटाता है। बच्चों के उड़ जाने में समर्थ होने के पूर्व उन्हें दाना खिलाने में नर अपनी मादा की मदद करता है। मादा गोरिल्ला और उसके बच्चे पेड़ के कोटर में सोते रहते हैं और नर गोरिल्ला उनकी चौकीदारी करता रहता है।

इस प्रकार के जीवों के परिवारों में बच्चों के भोजन और उनकी सुरक्षा पर विशेष ध्यान दिया जाता है। मानव-परिवारों में भी बच्चों के भोजन और उनकी सुरक्षा पर विशेष बल दिया जाता है। लेकिन मानव-परिवार में बच्चों के लिए और भी बहुत-कुछ किया जाता है। बच्चों को दूसरे लोगों से उचित बर्ताव करना सिखाया जाता है। उन्हें अपनी जाति के आचरण, रीति-रिवाज और मान्यताओं से परिचित कराया जाता है। छोटे बच्चे के लिए उसके परिवार के नियम ही सब कुछ हैं।

दुनिया-भर के रीति-रिवाज एक-से नहीं हैं। विभिन्न स्थानों के पारिवारिक जीवन में भिन्नता पाई जाती है। मिसाल के तौर पर, अरब के रेगिस्तानी घुमक्कड़ कबीले के लड़के को समझाया जाता है कि पिता की उपस्थिति में लड़के का भोजन करना अशिष्टता है। एक अंग्रेज़ परिवार के बच्चे को यही बात बड़ी अजीब लगेगी। इस तरह की और भी अनेक भिन्नताएं हैं।

बहुत पुराने ज़माने में परिवार को लेकर दो धारणाएं थीं। पहली धारणा के अनुसार परिवार की प्रमुख मां थी, दूसरी के अनुसार पिता। अन्त में दूसरी धारणा को ही मान्यता प्राप्त हुई। प्राचीन काल में परिवार पर पिता का शासन बहुत कठोर होता था। कभी-कभी क्रूर पिता बच्चे की जान तक ले लेता था।

औसत परिवार में घर की व्यवस्था और बच्चों की



देख-भाल में सामान्यतः मां-बाप दोनों ही हाथ बंटाते हैं। कुछ परिवारों में अपना और अपने बच्चों का गुज़ारा करने के लिए मां और बाप दोनों नौकरी करते हैं। अब स्कूलों, उपासना-घरों, शिविरों और क्लबों ने बड़े बच्चों को प्रशिक्षित करने की ज़िम्मेदारी मां-बाप से अपने ऊपर ले ली है।

किन्तु हमेशा की भांति पारिवारिक सम्बन्ध आज भी सुदृढ़ हैं। और क्योंकि आज लोगों के पास अपेक्षाकृत अधिक अवकाश है, इसलिए पहले के मुकाबले आज का पारिवारिक जीवन कहीं अधिक आनन्ददायक हो गया है।

पिग्मी (PYGMIES) : पिग्मी लोग अफ्रीका के जंगलों में रहते हैं। इनका कद बहुत छोटा होता है। लम्बे से लम्बा पिग्मी साढ़े चार फुट से अधिक का नहीं होता। इनका सिर, मुंह और नाक चौड़ी होती है और पैर छोटे होते हैं। इनका रंग काला होता है, लेकिन नीग्रो लोगों से कम काला होता है। सामान्यतया ये लोग बड़े साहसी और निडर होते हैं तथा अपने-आप में मस्त रहते हैं। कुछ पिग्मी दक्षिण-सागरीय द्वीपों और दक्षिण-पूर्वी एशिया के जंगलों में भी पाए जाते हैं। अंडमान और निकोबार द्वीपसमूह के कुछ आदिवासी पिग्मी जाति के हैं।

पिग्मी अलग-अलग कबीलों में रहते हैं। हर कबीले का एक सरदार होता है। एक कबीले के सदस्य एक-दूसरे को बहुत चाहते हैं। ये शाखाओं और पत्तियों से बनी झोंपड़ियों में रहते हैं।

इनका मुख्य भोजन मांस है। ज़मीन में गढ़े खोदकर ये उन्हें घास-फूस से ढंक देते हैं। हाथी, दरियाई घोड़ा, सूअर और चीता जैसे जंगली जानवर इन गढ़ों में फंस जाते हैं। तब ये लोग भालों से उन पशुओं को मार डालते हैं और उनका मांस खा जाते हैं।

पिग्मी शिकारी गुरिल्ला तक को मार डालते हैं।



कुछ पिग्मी लोग लम्बे कदवाले अपने पड़ोसियों से चीज़ों की अदला-बदली भी करते हैं। वे पड़ोसियों से फल और सब्ज़ियां ले लेते हैं और बदले में उन्हें मांस दे देते हैं।

पिग्मी लिखना-पढ़ना नहीं जानते। लेकिन, इनके अपने कुछ तरीके हैं जिनसे ये अपनी भावनाओं को एक-दूसरे पर प्रकट कर सकते हैं।

पिग्मी कम कपड़े पहनते हैं। कुछ पिग्मी सींगों, परों और अंडों के छिल्कों से सजी-धजी टोपियां भी पहनते हैं।

पोलो (POLO) : पोलो का खेल बिलकुल हॉकी की तरह का होता है, पर यह घोड़े पर सवार होकर खेला जाता है। घुड़सवार खिलाड़ी लकड़ी के लम्बे बल्ले से, जिसे 'मैलेट' कहते हैं, एक सफेद गेंद को गोल में से निकालने की कोशिश करते हैं। 'पोलो' शब्द तिब्बती भाषा के शब्द 'पुलु' से बना है जिसका अर्थ गेंद होता है।

पोलो का खेल छः, सात या आठ चक्करों में बंटा होता है जिन्हें 'चक्का' कहते हैं। एक चक्के का समय साढ़े सात मिनट होता है। हर चक्के के बाद कुछ अवकाश आराम के लिए दिया जाता है।

पोलो का खेल दुनिया के सबसे तेज़ खेलों में गिना जाता है। खिलाड़ी घुड़सवार मैदान के एक छोर से दूसरे छोर तक दौड़ते हैं। पोलो के घोड़े खास तरह के होते हैं। इनको बहुत जल्दी भागना और तुरन्त रुकना सिखाया जाता है। घोड़े को भी अपनी निगाह गेंद पर रखनी पड़ती है। जब तक कोई अच्छा घुड़सवार न हो, वह पोलो का अच्छा खिलाड़ी नहीं बन सकता। अच्छे खेल के लिए सवार को अच्छा घोड़ा मिलना चाहिए। पूरे खेल में खिलाड़ी को कम से कम दो या इससे अधिक घोड़ों की ज़रूरत पड़ती है। खिलाड़ी हर चक्के के बाद घोड़ा बदलता है। कभी-कभी किसी खिलाड़ी का घोड़ा गेंद को पैर से ठोकर मारकर गोल के अन्दर कर देता है। इस तरह का गोल 'पोनी गोल' कहलाता है।

पोलो 'इनडोर' और 'आउटडोर' दोनों तरह खेला जा सकता है। 'इनडोर' पोलो वहीं खेला जा सकता है, जहां बहुत बड़ा ढंका हुआ मैदान या हाता हो। 'आउटडोर' पोलो बाहर खेला जाता है। उसमें हर टीम में चार-चार खिलाड़ी होते हैं। 'इनडोर' खेल में केवल तीन-तीन खिलाड़ी होते हैं।

यह बड़ा खर्चीला खेल है। इसीलिए भारत में राजा-महाराजा या बड़े अफसर और धनी लोग ही इसे खेलते हैं। जयपुर के महाराज पोलो के बड़े अच्छे खिलाड़ी माने जाते हैं। दिल्ली में पोलो का मैदान जयपुर के नाम पर ही है।

वैसे पोलो बड़ा पुराना खेल है। दो हज़ार वर्ष पहले ईरान में लोग इसे खेलते थे। यह खेल सन् 1860 के बाद भारत से इंग्लैंड पहुंचा। आजकल पोलो भारत के अलावा अर्जेण्टाइना, इंग्लैंड और अमरीका में भी खेला जाता है। (देखें : खेल, प्रमुख भारतीय)



पोलो के खिलाड़ी गेंद को गोल की तरफ ले जा रहे हैं।

प्रतिभाशाली व्यक्ति (GENIUS) : जब कोई व्यक्ति किसी विशेष क्षेत्र में सामान्य जनों की अपेक्षा अधिक निपुण होता है तो उसे हम प्रतिभाशाली व्यक्ति कहते हैं। वह कलाकार, वैज्ञानिक या आविष्कारक कोई भी हो सकता है। वह संगीतज्ञ या कवि हो सकता है, अथवा अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन किसी अन्य क्षेत्र में कर सकता है। प्रतिभाशाली व्यक्ति प्रायः किसी एक चीज़ में इतनी गहरी दिलचस्पी रखते हैं कि दूसरी चीज़ों पर उनका ध्यान ही नहीं जाता। बहुत-से प्रतिभाशाली लोगों को लोग सिरफिरा समझते हैं।

अल्बर्ट आइन्स्टाइन निश्चित रूप से प्रतिभाशाली व्यक्ति थे। उन्होंने ब्रह्मांड की महती समस्याओं पर लिखा और चिन्तन किया। उनके विचार अणु-युग के सूत्रपात में सहायक सिद्ध हुए। इसी प्रकार व्यास, कालिदास, रवीन्द्रनाथ, जगदीशचन्द्र बोस, तानसेन, न्यूटन, गैलिलियो, मोज़ार्ट, शेक्सपियर, माइकेलेंजलो, लियोनार्दो दा विंची आदि विश्वविख्यात प्रतिभाशाली व्यक्ति रहे हैं। निश्चित रूप से अतीत में कुछ ऐसे प्रतिभाशाली लोग भी रहे होंगे जिनपर किसीका ध्यान नहीं गया।

प्रतिवर्त क्रिया (REFLEX ACTION) : यदि अचानक हमारा हाथ किसी गरम चीज़ से छू जाए, तो हम तुरन्त एक झटके के साथ अपना हाथ खींच लेते हैं। इसके लिए हमें सोचना नहीं पड़ता, बल्कि ऐसा अपने-आप होता है। अपने-आप होनेवाली इस तरह की क्रिया को प्रतिवर्त क्रिया कहते हैं। प्रतिवर्त क्रियाएं हमारे लिए बहुत ही उपयोगी हैं। वे ठीक-ठीक और इतनी जल्दी होती हैं कि हम आनेवाले खतरे से बच जाते हैं।

गरम चीज़ से जब चमड़ी का कोई भाग छूता है तो उस भाग से आवेग संवेदक नाड़ी के ज़रिये सुषुम्ना नाड़ी तक पहुंचता है। वहां यह आवेग सुषुम्ना से हाथ की पेशियों तक जानेवाली प्रेरक नाड़ी में एक दूसरा आवेग पैदा कर देता है। इससे पेशियां एकदम सिकुड़ जाती हैं और हाथ तुरन्त गरम चीज़ से अलग हट जाता है। यह सारी क्रिया सेकंड के लगभग दसवें भाग में पूरी हो जाती है। इसी तरह जब कोई चीज़ हमारे चेहरे की तरफ आ रही होती है, तो हम प्रतिवर्त क्रियाओं के कारण अपने चेहरे को एक ओर हटा लेते हैं और आंखें कसकर बंद कर लेते हैं।

प्रतिवर्त क्रिया के समय नाड़ी आवेग एक विशेष मार्ग से यात्रा करता है जिसे प्रतिवर्त चाप कहते हैं। कुछ प्रतिवर्त क्रियाएं वंशागत होती हैं और कुछ अर्जित। ऊपर जो उदाहरण दिए गए हैं वे वंशागत प्रतिवर्त क्रियाओं के हैं। इनके प्रतिवर्त चाप मनुष्य के विकास के दौरान स्थापित होते गए हैं। अर्जित प्रतिवर्त क्रिया वह है जिसे हम अनुभव से, किसी कार्य को बार-बार करके, सीखते हैं। हारमोनियम बजाते हुए या टाइप करते हुए उंगलियों की जो गतियां होती हैं, वे अर्जित प्रतिवर्त क्रिया की मिसालें हैं। कुछ प्रतिवर्त क्रियाओं में एक ही पेशी आवेग द्वारा प्रेरित होती है, तो कुछ में कई पेशियां प्रेरित होती हैं। कुछ प्रतिवर्त क्रियाओं में प्रतिवर्तों की पूरी श्रृंखला होती है और एक प्रतिवर्त दूसरे को प्रेरित करता जाता है। गतियों का वह लयबद्ध क्रम जिससे हम चलते-फिरते हैं, श्रृंखलाबद्ध प्रतिवर्त क्रिया का उदाहरण है। (देखें : आदत)

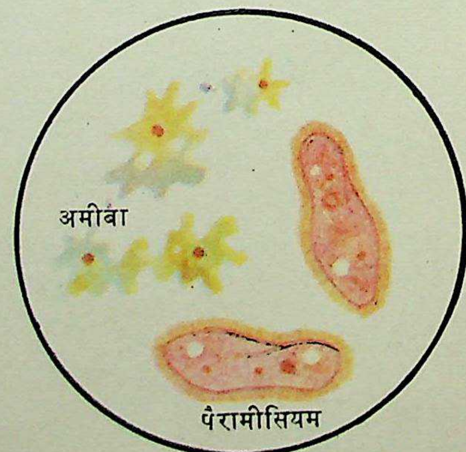
प्राथमिक उपचार (FIRST AID) : अगर किसी दुर्घटना में किसी व्यक्ति को ऐसी चोट पहुंचे कि उसका खून बहने लगे या हड्डी टूट जाए तो डाक्टरी सहायता मिलने के पहले ही उसका कुछ न कुछ उपचार आवश्यक हो जाता है। यदि खून बहना तुरन्त नहीं रोका जाए तो उस व्यक्ति की मृत्यु हो सकती है। टूटी हुई हड्डी पर तुरन्त अस्थायी रूप में पट्टी नहीं बांधी जाए तो उसके शरीर को और अधिक हानि पहुंच सकती है। इसी प्रकार यदि कोई व्यक्ति डूबते-डूबते बचा हो तो उसे तुरन्त कृत्रिम सांस देना आवश्यक हो जाता है। लेकिन इस प्रकार के काम वही व्यक्ति कर सकता है जिसे प्राथमिक उपचार की थोड़ी-बहुत जानकारी हो।

प्राथमिक उपचार या फर्स्ट एड व्यवस्थित डाक्टरी इलाज का स्थान नहीं ले सकता, लेकिन इसकी सहायता से हम तत्काल उचित कार्यवाही करके किसी की जान बचा सकते हैं। प्राथमिक उपचार में हमें यह बताया जाता है कि यदि डाक्टर के आने में कुछ देर लगे तो इस बीच हमें क्या करना चाहिए।

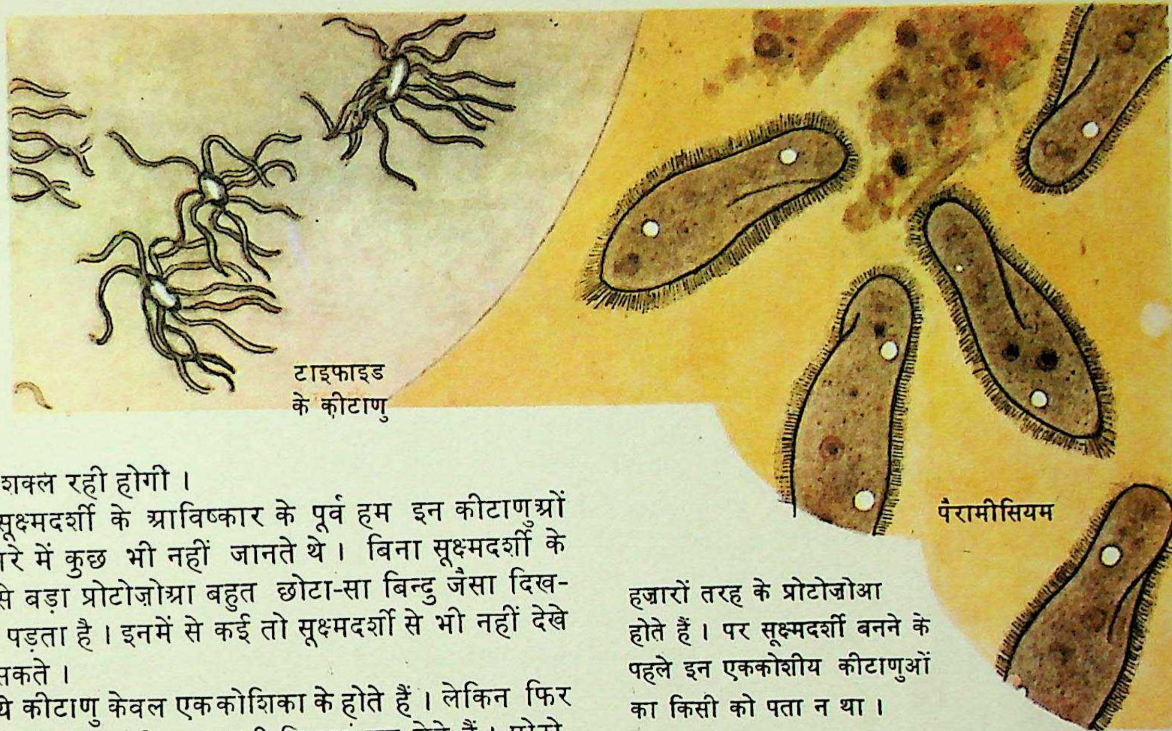
स्वयंसेवकों और बालचरों को प्राथमिक उपचार का प्रशिक्षण विशेष रूप से दिया जाता है। लेकिन प्रत्येक व्यक्ति को प्राथमिक उपचार की कुछ न कुछ जानकारी अवश्य होनी चाहिए। हमें यह जानना चाहिए कि बहुत अधिक खून बहने पर उसे तुरन्त किस प्रकार रोका जाए। खून को उस अंग से सम्बन्धित धमनी पर दबाव डालकर रोका जा सकता है। इसके लिए यह जानना ज़रूरी होता है कि शरीर के विभिन्न अंगों में धमनियां किन जगहों से होकर जा रही हैं। खून को रोकने के लिए अंगूठे या उंगलियों से धमनी को दबाया जाता है और फिर उस स्थान को टूर्निकेट से कस दिया जाता है। मोटे कपड़े की पट्टी को कई ऐंठनें देकर टूर्निकेट बनाया जा सकता है। खून का बहाव रोकने के बाद घाव को साफ और कीटाणुरहित की हुई पट्टी से ढंक देना चाहिए और डाक्टर की प्रतीक्षा करनी चाहिए। हड्डी टूटने पर खपच्चियां आदि बांधकर अंग को सीधा रखना चाहिए। रोगी के हिलने-डुलने पर टूटी हुई हड्डी के सिरे आसपास के मांस में घुस सकते हैं और इस प्रकार रोगी की हालत को और भी खराब कर सकते हैं। प्राथमिक उपचार में यह बताया जाता है कि हड्डियों के टूटने के कितने प्रकार हैं और उनके लिए खपच्चियां किस प्रकार बांधी जाती हैं।

इसी प्रकार प्राथमिक उपचार में जले हुए आदमी की सहायता करने के ढंग भी बताए जाते हैं। दम घुटने पर या डूब जाने पर रोगी को कृत्रिम रूप से सांस दी जाती है। रोगी को पेट के बल लिटाकर उसकी पीठ पर विशेष प्रकार से दबाव डाला जाता है। कभी-कभी सीधे मुंह से मुंह लगाकर फूंक मारी जाती है और इस प्रकार रोगी को कृत्रिम सांस पहुंचाई जाती है।

प्राथमिक उपचार की विधिवत् शिक्षा किसी योग्य डाक्टर से ली जा सकती है। रेड क्रॉस एसोसिएशन की विभिन्न शाखाएं भी प्राथमिक उपचार की शिक्षा की व्यवस्था करती हैं।



प्रोटोज़ोआ (PROTOZOA) : प्रोटोज़ोआ का अर्थ है 'आदि जीव'। यह नाम छोटे-छोटे कीटाणुओं को इसलिए दिया गया है कि अनुमान के अनुसार पृथ्वी के आदि जीवों की



हज़ारों तरह के प्रोटोज़ोआ होते हैं। पर सूक्ष्मदर्शी बनने के पहले इन एककोशीय कीटाणुओं का किसी को पता न था।

यही शक्ल रही होगी।

सूक्ष्मदर्शी के आविष्कार के पूर्व हम इन कीटाणुओं के बारे में कुछ भी नहीं जानते थे। बिना सूक्ष्मदर्शी के बड़े से बड़ा प्रोटोज़ोआ बहुत छोटा-सा बिन्दु जैसा दिखलाई पड़ता है। इनमें से कई तो सूक्ष्मदर्शी से भी नहीं देखे जा सकते।

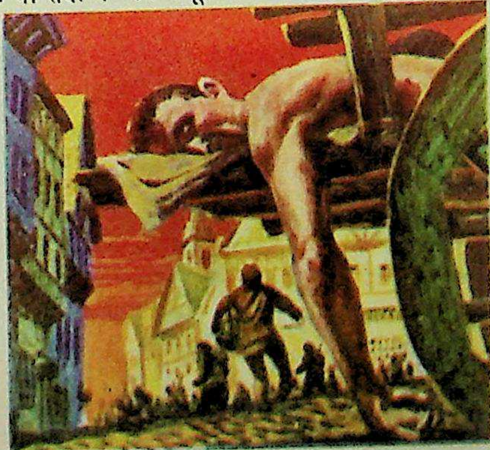
ये कीटाणु केवल एककोशिका के होते हैं। लेकिन फिर भी ये कीटाणु सभी प्रकार की क्रियाएं कर लेते हैं। प्रोटोज़ोआ खाना पचा लेता है, मल निकाल देता है, सांस लेता है और अपनी सन्तति भी बढ़ा लेता है।

प्रोटोज़ोआ सारी दुनिया में मीठे और खारे पानी में मिलते हैं। अगर हम पोखर के पानी की एक बूंद को सूक्ष्मदर्शी में देखें तो पता लगेगा कि उसमें बहुत से कीटाणु बिलबिला रहे हैं। ये कीटाणु अन्य जीवों के शरीर में भी मिलते हैं। इन्हें अपना भोजन उन्हीं जीवों के शरीर से मिलता है।

कम से कम पन्द्रह हज़ार तरह के प्रोटोज़ोआ होते हैं। शायद इनकी और भी किस्में हों। रोज़ नई-नई तरह के प्रोटोज़ोआ मिलते जाते हैं। इनमें 'अमीबा' (Amoeba) और पैरामीसियम (Paramecium) विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। अमीबा की शक्ल बराबर, हर गतिविधि के साथ, बदलती रहती है। यह अपने खाद्याणु को चारों ओर से घेरकर अपने में मिला लेता है। आगे बढ़ने के लिए यह अपने शरीर से एक 'नकली पैर' जैसा अंग निकालकर खिसक जाता है।

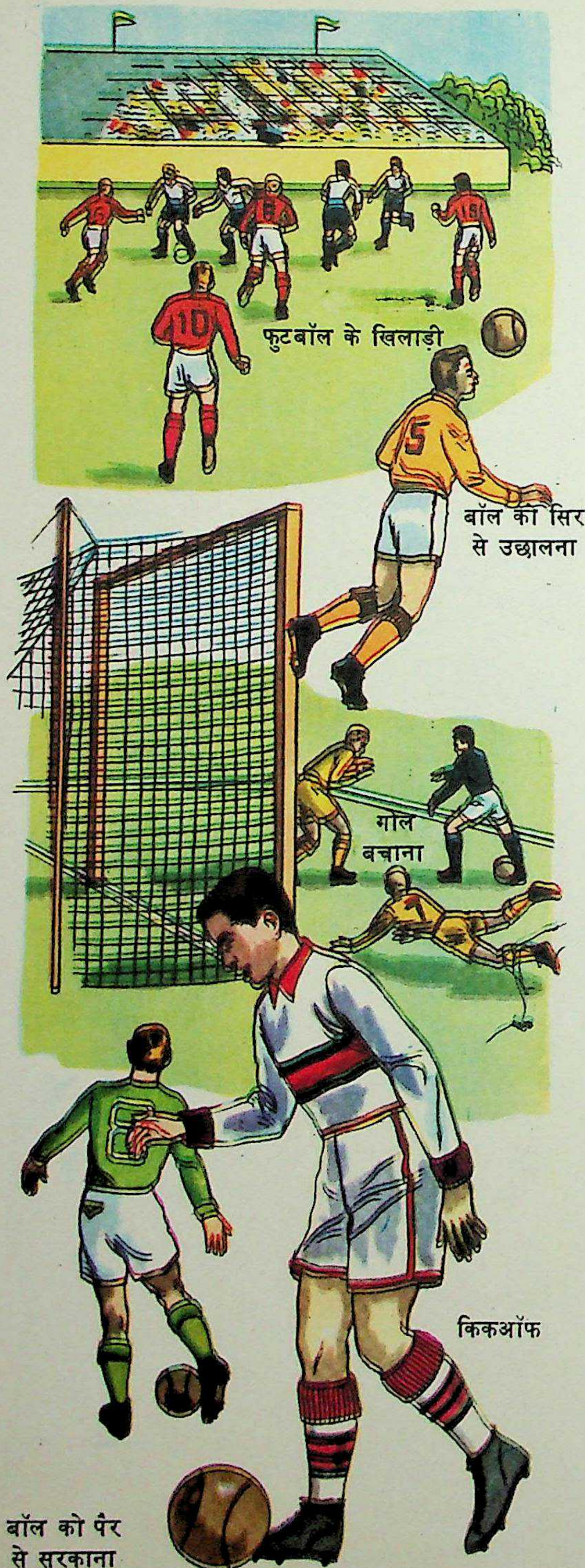
प्रोटोज़ोआ से कुछ अधिक विकसित जीव इन्हें खा लेते हैं। इस तरह प्रोटोज़ोआ जीव-जगत के सहायक हैं। लेकिन कुछ प्रोटोज़ोआ बीमारियां फैलाते हैं। मलेरिया इन्हींके कारण होता है। (देखें : रोग के कीटाणु)

14 वीं सदी में प्लेग ने यूरोप को आतंकित कर दिया था।



प्लेग (PLAGUE) : चौदहवीं सदी में यूरोप-भर में एक महा विनाशक रोग फैल गया। लाखों लोगों को इसने अपना शिकार बना लिया। डर के मारे लोग इसे काली मौत या ब्लैक डेथ कहने लगे। यह रोग असल में प्लेग या ताऊन था। पर लोगों को तब इसके बारे में कुछ भी मालूम न था। वे समझते थे कि मौत उन्हें ग्रहों के अशुभ संयोग के कारण इस तरह ग्रस रही है। उन्हें इसका कोई इलाज मालूम न था।

अब यह जान लिया गया है कि प्लेग चूहों के शरीर पर पलनेवाले पिस्सुओं के काटने से होता है। चूहों का विनाश करके इसके फैलानेवाले सबसे बड़े कारण को काबू में लाया जा सकता है। आधुनिक चिकित्सा-विज्ञान में इसे असाध्य भी नहीं माना जाता। सफाई, स्वास्थ्य-रक्षा तथा रोगों की रोक-थाम के तरीकों के उपयोग से इसके फैलने की आशंका कम की जा सकती है। आज भी यह एक खतरनाक बीमारी है, पर इसे बहुत-कुछ काबू में लाया जा चुका है।



फनी बोन (FUNNY BONE) : कुहनी के मोड़ वाले कोने पर एक तंत्रिका अस्थि के बहुत समीप आ जाती है और उसके बचाव के लिए उसपर कोई गद्दी वगैरह नहीं रहती। इस जगह को 'फनी बोन' कहते हैं। जब किसी आदमी की कुहनी किसी चीज़ से टकराती है तो कई बार यह टकराव कुहनी के फनी बोन नामक स्थान से होता है। तब उसकी पूरी बांह में एक झनझनाहट दौड़ जाती है। यह झनझनाहट ज़रा भी अच्छी नहीं लगती, यद्यपि इस हड्डी के नाम से ऐसा लगता है जैसे इसके टकराने में कुछ मज़ा (Fun) मिलता हो।

फुटबॉल (FOOTBALL) : ब्रिटेन का यह लोकप्रिय खेल मध्य युग में भी प्रचलित था। उन दिनों खिलाड़ियों की कोई संख्या निश्चित नहीं थी। खेल के कोई निश्चित नियम भी नहीं थे। अक्सर खेल के समय उपस्थित सभी लोग उसमें शामिल हो जाते थे। लोग अपनी मनमानी करते थे। अपने आधुनिक रूप में फुटबॉल 100 साल से अधिक प्राचीन नहीं है।

सन् 1846 में कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में पहली बार इस खेल के नियम निर्धारित किए गए। यह निश्चित किया गया कि खेल में एक तरफ से ग्यारह से ज़्यादा खिलाड़ी भाग नहीं ले सकते। इससे खेल में पहले वाली अनियमितता नहीं रह गई। सन् 1863 में फुटबॉल एसोसिएशन की स्थापना हुई और फुटबॉल का आधुनिक रूप विकसित होना आरम्भ हुआ।

उन दिनों ज़्यादातर खिलाड़ी आगे बढ़कर खेलते थे और विपक्ष पर गोल करने के प्रयत्न में ही लगे रहते थे। लेकिन, धीरे-धीरे कुछ खिलाड़ी अपने गोल की रक्षा के लिए पीछे खेलने लगे, और मैच का फैसला इस बात पर निर्भर रहने लगा कि कौन-सा पक्ष गेंद पर नियंत्रण रखने और अपने ही साथियों को गेंद देते हुए आगे बढ़ने में अधिक कुशल है।

सन् 1875 में गोल के खंभों के ऊपर लगनेवाली रस्सी को हटाकर उसके स्थान पर लकड़ी की एक पट्टी लगा दी गई। इसके बाद गोल के खंभों के पीछे जाल भी लगाया जाने लगा। इससे गोलों के बारे में पहले जो वाद-विवाद होता था उसकी समाप्ति हो गई। इसके बाद सन् 1893 में रेफ्रीज़ एसोसिएशन की स्थापना हुई।

इंग्लिश फुटबॉल लीग की स्थापना सन् 1888 में हुई। उस समय इसमें 12 पेशेवर क्लब शामिल थे। इन क्लबों में नॉट्स काउंटी भी शामिल था। नॉट्स काउन्टी क्लब सबसे पुराने क्लबों में से एक है। आजकल फुटबॉल लीग में 92 क्लब शामिल हैं। लीग—पहली, दूसरी, तीसरी और चौथी—चार डिवीज़नों में बंटी हुई है।

फुटबॉल एसोसिएशन की ओर से एक एमेच्योर चैलेंज कप प्रतियोगिता का भी आयोजन किया जाता है।

इसमें केवल गैर-पेशेवर टीमें भाग ले सकती हैं। स्कॉटलैंड की अपनी पेशेवर फुटबॉल लीग है जो इंग्लिश फुटबॉल लीग के ही समान प्रतियोगिता का आयोजन करती है।

फुटबॉल सारी दुनिया में खेला जाता है। यह जितना लोकप्रिय यूरोप में है उतना ही पूर्वी अफ्रीका में भी है, जहां के लोग अक्सर नंगे पांव खेलते हैं।

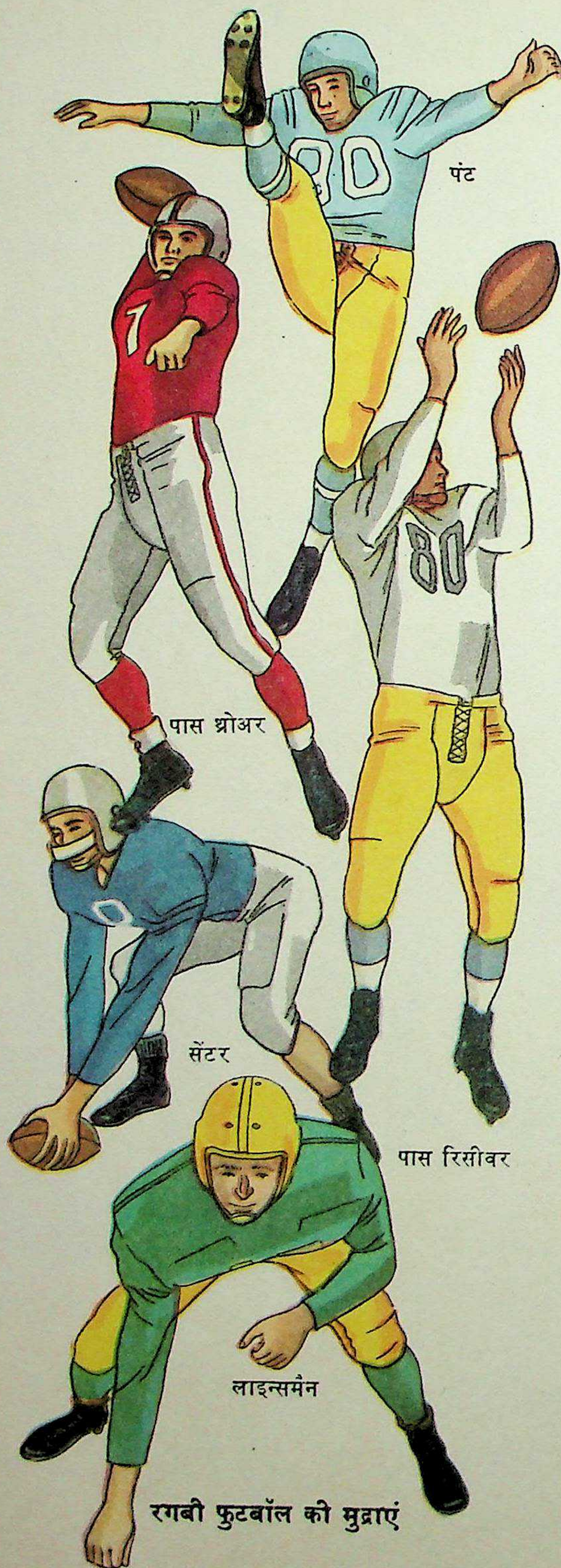
भारत में भी फुटबॉल बहुत लोकप्रिय है। यहां की राष्ट्रीय फुटबॉल प्रतियोगिता डूरेंड में प्रतिवर्ष अनेक टीमें भाग लेती हैं। यह प्रतियोगिता 75 वर्ष पुरानी है। देश के कोने-कोने से चोटी की टीमें इसमें भाग लेने के लिए आती हैं, रोवर्स कप, डी० सी० एम० कप, आदि भारत की अन्य प्रमुख प्रतियोगिताएं हैं। मोहनबगान, ईस्ट बंगाल, आंध्र प्रदेश पुलिस, मद्रास रेजिमेंटल सेंटर, ई० एम० ई० सिकन्दराबाद, मुहम्मडन स्पोर्टिंग, बी० एन० आर०, पंजाब पुलिस, लीडर्स क्लब जालंधर, मफतलाल ग्रुप, आदि देश की चोटी की फुटबॉल टीमें हैं। भारत की राष्ट्रीय फुटबॉल टीम काफी सशक्त है। पिछली एशियाई खेल प्रतियोगिता में हुई फुटबॉल प्रतियोगिता में भारत ही चैम्पियन राष्ट्र रहा था।

(देखें : खिलाड़ी, भारत के प्रमुख; फुटबॉल, रगबी)

फुटबॉल, रगबी (RUGBY FOOTBALL) : फुटबॉल एसोसिएशन के नियमों के अनुसार खेल में गेंद को हाथ से छूना मना है, लेकिन रगबी यूनियन फुटबॉल में यह मनाही नहीं है। रगबी फुटबॉल में खेल का परिणाम इस बात पर निर्भर रहता है कि किसी पक्ष के खिलाड़ी हाथ की मदद से गेंद को किस प्रकार आगे बढ़ाते हैं। हर



रेफ़्री के संकेत



रगबी फुटबॉल की मुद्राएं

पक्ष में 15 खिलाड़ी होते हैं और वे सभी गैर-पेशेवर होते हैं। रगबी फुटबॉल में गोल गेंद का नहीं अंडाकार गेंद का प्रयोग होता है। खिलाड़ियों की कोशिश यह रहती है कि वे गेंद को दूसरी टीम की ट्राई लाइन (Try Line) के परे पहुंचाकर अधिक से अधिक अंक अर्जित करें। 3 अंक अर्जित कर लेने पर एक ट्राई का मौका मिलता है। इस मौके पर अगर 10 फुट की ऊंचाई पर लगे डंडे को पार करके गेंद को गोल के खंभों के बीच में फेंक दिया जाए तो एक गोल हो जाता है। गोल करनेवाली टीम को एक गोल पर पांच अंक मिलते हैं। अगर किसी और मौके पर गेंद को गोल में डाल दिया जाए तो तीन अंक मिलते हैं।

रगबी फुटबॉल का खेल फुटबॉल के पुराने खेल से निकला है। सन् 1823 में इंग्लैंड के प्रसिद्ध रगबी स्कूल में खेल हो रहा था। एक खिलाड़ी किक लगाने में असफल रहा। इसपर उसे गुस्सा आ गया और वह गेंद को हाथ में उठाकर गोल में डाल आया। कहते हैं इसी घटना ने रगबी फुटबॉल को जन्म दिया। स्कूल के नाम पर उसका नाम रगबी रखा गया।

आजकल एक पक्ष से केवल 13 खिलाड़ी खेलते हैं। ट्राई के लिए तीन अंक मिलते हैं, और अगर ट्राई को गोल में बदल दिया जाता है तो दो अंक और मिलते हैं। ट्राई के अलावा किसी और तरीके से गोल करने पर दो अंक मिलते हैं।

भारत में यह खेल लोकप्रिय नहीं है।

(देखें : फुटबॉल)

फेफड़े (LUNGS) : शरीर में हृदय के बाद सबसे महत्त्वपूर्ण अंग फेफड़े ही हैं। पसलियों और रीढ़ की हड्डियों के मिलने से हमारी छाती एक मज़बूत संदूक की तरह है। हृदय के समान फेफड़े भी इसी संदूक के भीतर सुरक्षित रहते हैं। फेफड़े दो हैं : एक दाईं ओर, दूसरा बाईं ओर। हरेक फेफड़ा असंख्य वायुकोष्ठिकाओं का एक गुच्छा है, और प्रत्येक वायुकोष्ठिका के चारों ओर सूक्ष्म रक्तवाहिनियों का जाल बिछा है।

फेफड़ों में एक ओर कार्बन डाइऑक्साइड मिला शरीर का गन्दा रक्त और दूसरी ओर श्वास के साथ शुद्ध ऑक्सीजन आती है। ऑक्सीजन के मिलने से रक्त शुद्ध होकर हृदय में चला जाता है। दूसरी ओर, रक्तवाहिनियों में से कार्बन डाइऑक्साइड निकलकर पहले वायुकोष्ठिकाओं में जाती है और फिर वहां से प्रश्वास द्वारा बाहर निकल जाती है। इस तरह फेफड़ों में शुद्ध और दूषित वायु की बराबर अदला-बदली होती रहती है। जन्म से लेकर मृत्यु तक ये कभी हवा से खाली नहीं रहते।

फेफड़ों के नीचे छाती और पेट के बीच में मध्यच्छद नामक एक चपटी और शक्तिशाली पेशी होती है। जब

यह पेशी नीचे की ओर झुकती है तो इसके प्रभाव से पसलियां ऊपर और बाहर की ओर उठ जाती हैं। इसका फल यह होता है कि फेफड़ों में से कुछ हवा निकल जाती है और वे कुछ खाली हो जाते हैं। इस हालत में शरीर के बाहर की हवा का दबाव फेफड़ों के अन्दर की हवा के दबाव से ज़्यादा हो जाता है, और हवा नाक के अन्दर चली जाती है। नाक से हवा गले में होती हुई श्वास-प्रणाल में चली जाती है और अंत में फेफड़ों में पहुंच जाती है। श्वास-प्रणाल दो शाखाओं में बंटा है जो श्वास नलिकाएं कहलाती हैं और फेफड़ों में चली गई हैं। इन्हीं श्वास नलिकाओं की सबसे छोटी असंख्य शाखाएं वायु कोष्ठिकाएं कहलाती हैं। जिन तंतुओं से वायुकोष्ठिकाएं बनती हैं उनमें केशिकाएं और शिराएं होती हैं। हवा में से ऑक्सीजन केशिकाओं की दीवारों को पार करके रक्त की लाल कोशिकाओं से मिल जाती है। साथ ही, शिराओं की दीवारों को पार करके कार्बन डाइऑक्साइड फेफड़ों की हवा में मिल जाती है।

मध्यच्छद पेशी जब ढीली पड़ती है तो पसलियां नीचे की ओर दबती हैं और वे फेफड़ों को दबा देती हैं। फेफड़ों के दबने से कार्बन डाइऑक्साइड से मिली हुई हवा उसी रास्ते से बाहर निकल जाती है जिससे वह अंदर आई थी।

बच्चे का जन्म (BIRTH OF A BABY)

: जीवित वस्तुएं अपना पुनरुत्पादन कर सकती हैं। वे ऐसी चीज़ों का प्रजनन कर सकती हैं जो बिलकुल उनके जैसी ही होती हैं। कुत्ते अपने-आपको पिल्लों के रूप में पैदा करते हैं जो बड़े होकर कुत्ते बनते हैं। इसी तरह मनुष्य अपने-आपको बच्चों के रूप में पैदा करते हैं जो बड़े होकर अपने माता-पिता की तरह ही पूरे आदमी बन जाते हैं।

मनुष्यों और अन्य प्राणियों में प्रजनन एक अकेली कोशिका से शुरू होता है। स्त्री के शरीर में डिम्ब ग्रंथि होती है जिसमें डिम्बाणु बनते हैं। इसी प्रकार पुरुष के अंडकोशों में शुक्राणु बनते हैं। संभोग के फलस्वरूप, जब कोई शुक्राणु किसी डिम्बाणु के सम्पर्क में आता है तो डिम्बाणु शुक्राणु को अपने अन्दर सोख लेता है, और इस प्रकार एक नई कोशिका बनती है। यह नई कोशिका दो भागों में टूट जाती है और अपना पुनरुत्पादन शुरू कर देती है। टूटकर दो भागों में बंटने की यह क्रिया तब तक चलती रहती है जब तक कि मूल कोशिका हज़ारों कोशिकाओं में नहीं बदल जाती। यह प्रक्रिया स्त्री के शरीर के अन्दर होती है।

ये हज़ारों कोशिकाएं मिलकर एक खोखली गेंद बन जाती हैं। इस गेंद में भी कोशिकाओं का पुनरुत्पादन जारी रहता है, अतः गेंद की एक दीवार अन्दर की ओर मुड़ जाती है। इस तरह धीरे-धीरे एक ऐसा गोलार्ध-सा बन जाता है जिसके दोनों ओर दीवार होती है। अभी तक इस गोलार्ध



बच्चे के जन्म के साथ एक नया जीवन शुरू होता है।

की सभी कोशिकाएं एक-जैसी दिखाई पड़ती थीं। लेकिन अब इस गोलार्ध के विभिन्न भागों में अलग-अलग प्रकार की कोशिकाएं बनने लगती हैं। इस तरह जो चीज़ कभी केवल एक गेंद की तरह थी अब उसमें शरीर के सभी अंगों का निर्माण शुरू हो जाता है।

स्त्री के शरीर के जिस अंग में इस नये प्राणी का निर्माण होता है उसे गर्भाशय कहते हैं। अन्त में कोशिकाओं के पुनरुत्पादन से एक नन्हा-सा प्राणी बन जाता है। जब यह नन्हा प्राणी पूरा हो जाता है तो गर्भाशय की पेशियां सिकुड़ने लगती हैं और यह नन्हा प्राणी गर्भाशय से बाहर धकेल दिया जाता है, यानी बच्चे का जन्म हो जाता है।

मनुष्यों में बच्चे के प्रजनन की क्रिया के पूरा होने में लगभग नौ महीने लग जाते हैं।

बर्फ के खेल (WINTER SPORTS)

: ठंडे देशों में जाड़ों में बर्फ पर अनेक खेल खेले जाते हैं। इनमें से कुछ की लोकप्रियता तो दिनों-दिन बढ़ती जा रही है। चित्र में कुछ ऐसे ही खेल दिखाए गए हैं।

स्केटिंग एक पुराना खेल है। दुनिया के कुछ संग्रहालयों में हड्डी के स्केट हैं, जो 2,000 वर्ष पुराने माने जाते हैं। ये स्केट साम्भर, बैल और रेंडियर की हड्डियों से उस युग में बनाए गए थे जब लोहे का चलन नहीं था। डेनमार्क, स्वीडन और आइसलैंड स्केटिंग के घर हैं।

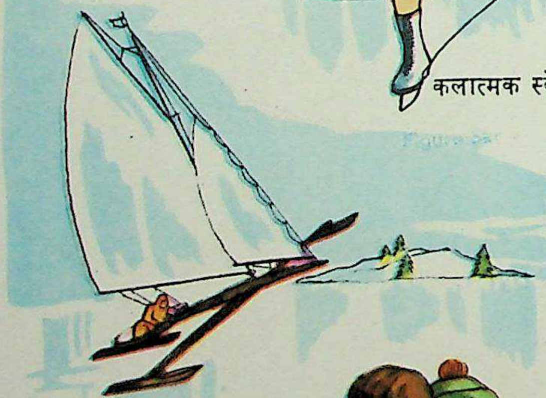
यूरोप के कुछ देशों में स्कीइंग बर्फ का खेल ही नहीं, बल्कि दैनिक जीवन का एक आवश्यक अंग भी है।



कुछ लोकप्रिय बर्फ के खेल


स्कीइंग


कलात्मक स्केटिंग


बर्फ की नाव

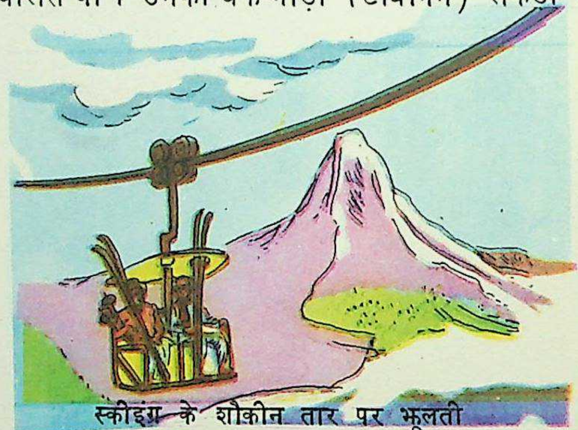

टोबॉगैनिंग

स्केटिंग की चार तरह की प्रतियोगिताएं होती हैं: स्केटिंग दौड़; कलात्मक स्केटिंग—जो एकल और युगल दो तरह की होती है; और स्केटिंग नृत्य।

बर्फ पर एक और खेल खेला जाता है, जिसे बर्फ की हॉकी कहते हैं। स्केटिंग इसका भी एक प्रमुख अंग है। बर्फ की हॉकी एक बनावटी आइस रिंक (स्केटिंग हॉल) में खेली जाती है। लेकिन उत्तरी अमरीका आदि में यह खेल मैदानों में भी खेला जाता है। इस खेल में रबर की एक छोटी चकली पर, जिसे 'पक' कहते हैं, चोट करके उसे एक जालीदार गोल के भीतर पहुंचाना होता है।

कभी-कभी स्केटिंग के खिलाड़ी अपनी पीठ पर पंख बांध लेते हैं। हवा पंखों पर लगकर उनकी चाल को और तेज़ कर देती है।

एक दूसरा खेल बर्फ-गाड़ी पर फिसलना है। यह खेल सैकड़ों वर्षों से लोकप्रिय है। इसे 'टोबॉगैनिंग' कहते हैं। सबसे पहले यह अमरीका के आदिवासियों में प्रचलित था। उनकी बर्फ-गाड़ी (टोबॉगैन) लकड़ी की


स्कीइंग के शौकीन तार पर झूलती लिफ्ट से खेल की जगह पर पहुंचते हैं।

चपटियों से बनती थी जो अगले सिरे पर मुड़ी होती थीं। आजकल दौड़ में 'बाबस्लेज' का प्रयोग होता है। 'बाबस्लेज' में दो 'टोबॉगैन' एक तख्ते से जुड़े रहते हैं। इसे रस्सियों, पहिए या अर्गला से चलाते हैं। कुछ बाबस्लेज इतने बड़े होते हैं कि उनपर दस आदमी तक बैठ सकते हैं। स्विट्ज़रलैंड का 'क्रेस्टा रन' इस खेल का सबसे मशहूर केन्द्र है। यहां की प्रतियोगिताओं में सत्तर मील प्रति घंटा रफ्तार तक की दौड़ें हो चुकी हैं।

'स्की' से भी बर्फ पर चलने में आसानी होती है। 'स्की' लकड़ी की पटरी होती है जो पांव में पहनी जाती है। सम्भवतः इनका प्रयोग सबसे पहले नार्वे में होता था। स्की पहनना अपने दोनों पांवों में टोबॉगैन लगाने जैसा ही है। स्की के सहारे ऊंची जगह से ढलान की ओर फिसलना बड़ी चतुराई का काम है। कई स्थानों पर इसके लिए खास तरह के ढलान बनाए गए हैं जो 'स्की जम्प' कहलाते हैं। सबसे मशहूर 'स्की जम्प' ओस्लो के बाहर हॉल्मेंकोलेन में है। खिलाड़ी इन ढलानों के

निचले सिरों से गज़ब की छलांगें लगाते हैं।

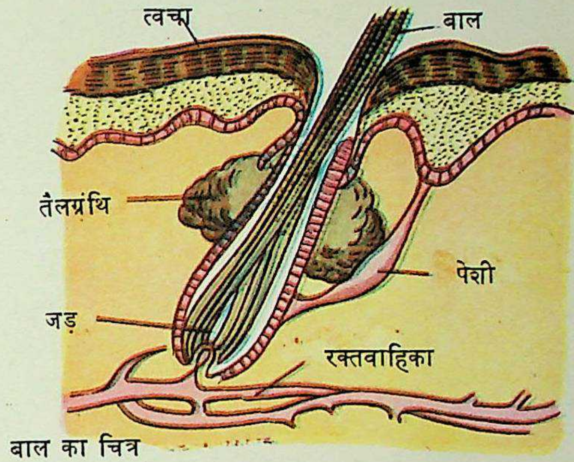
'स्की' के खेल (स्कीइंग) की दो ग्रौर प्रतियोगिताएं हैं। इनमें पहली को ग्रल्पाइन कहते हैं जिसमें ढलान की ग्रोर दौड़ना होता है, दूसरी को नॉर्डिक कहते हैं जिसमें लम्बी दौड़ ग्रौर छलांगें होती हैं।

ग्राजकल जाड़ों में भी ग्रोलिम्पिक प्रतियोगिताएं होती हैं। इनमें स्केटिंग दौड़, कलात्मक स्केटिंग, बर्फ की हॉकी बाबस्लेजिंग ग्रौर स्कीइंग के खेल खेले जाते हैं।

बाउलिंग (BOWLING) : यह एक बड़ा रोचक ग्रमरीकी खेल है जो ग्रब ग्रमरीका के बाहर भी लोकप्रिय होता जा रहा है। यह एक बड़ी गेंद ग्रौर लकड़ी की बोतल की शक्ल की दस बड़ी-बड़ी 'पिनों' से खेला जाता है। प्रत्येक पिन का वज़न लगभग साढ़े तीन पौंड होता है। इन पिनों को एक चिकनी गली या 'रनवे' के सिरे पर खड़ा किया जाता है। गेंद का वज़न सोलह पौंड तक हो सकता है ग्रौर उसकी गोलाई 27 इंच तक हो सकती है। यदि कोई खिलाड़ी चाहे तो इससे कुछ हलकी गेंद का प्रयोग भी कर सकता है। लेकिन भारी गेंद से पिनों को गिराना ग्रधिक ग्रासान होता है।

एक खेल में दस 'राउण्ड' या 'फ्रेम' माने जाते हैं। एक फ्रेम में प्रत्येक खिलाड़ी को दो बार गेंद लुढ़काने का मौका मिलता है। ग्रगर वह पहली गेंद से ही सारी पिनों को गिरा देता है तो इसे 'स्ट्राइक' कहा जाता है ग्रौर ग्रगर वह दो गेंदों से उन्हें गिराता है तो इसे 'स्पेयर' कहा जाता है। किसी खेल या 'गेम' में ग्रधिक से ग्रधिक 300 स्कोर तक प्राप्त किए जा सकते हैं। इसके लिए खिलाड़ी को प्रत्येक फ्रेम में एक स्ट्राइक प्राप्त करनी पड़ती है।

बाउलिंग का खेल ग्रारम्भिक डच निवासियों द्वारा ग्रमरीका पहुंचा था। तब इसे नौ पिनों से खेला जाता था ग्रौर इसका नाम 'स्किटल्स' था।



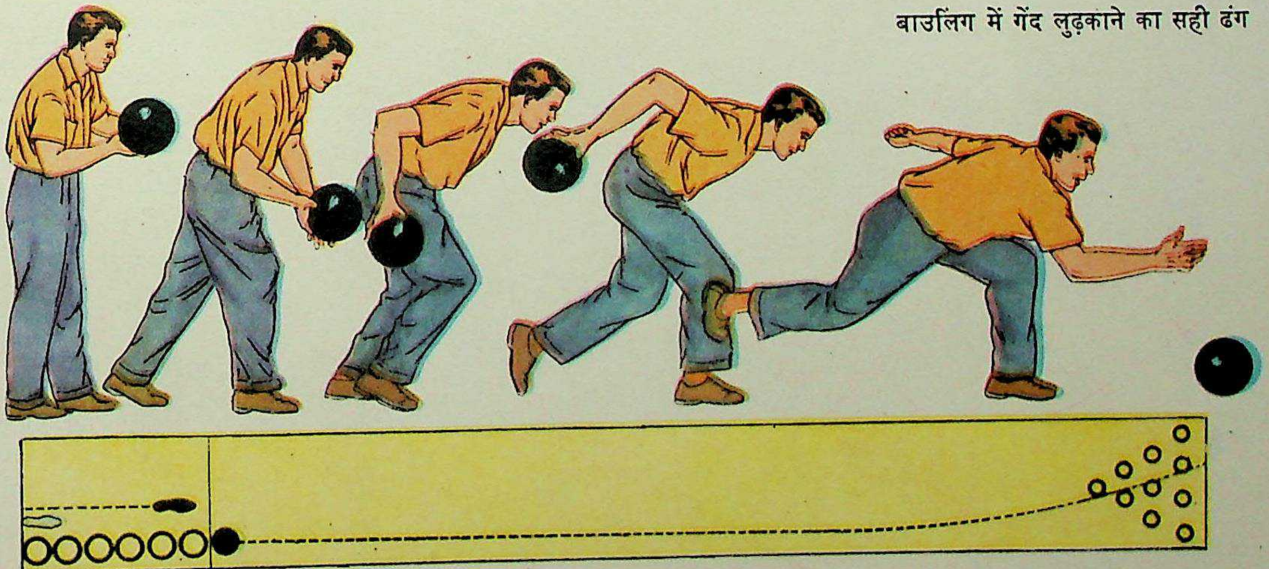
बाल का चित्र

बाल (HAIR) : भेड़ की ऊन, बिल्ली का मुलायम समूर ग्रौर छोटी बालिका की घुंघराली ग्रलकें, ये सब बाल हैं। केवल उन्हीं जीवों के बाल होते हैं जो ग्रपने बच्चों को स्तन से दूध पिलाते हैं। ह्वेल मछली, हाथी, दरियाई घोड़े ग्रादि भी इसी वर्ग में ग्राते हैं, भले ही उनके कुछ ही बाल क्यों न हों।

हथेली ग्रौर पैर के तलुवों को छोड़कर, ग्रादमी के शरीर के हर हिस्से पर बालों का ग्रावरण होता है। किन्तु शरीर के ग्रधिकांश भाग पर रोम होते हैं, जो दूर से साफ दिखाई नहीं पड़ते।

माइक्रोस्कोप के नीचे हर जीव के बाल ग्रलग-ग्रलग प्रकार के दिखलाई पड़ते हैं। हर ग्रादमी के बाल ग्रलग-ग्रलग तरह के होते हैं।

बाउलिंग में गेंद लुढ़काने का सही ढंग



अधिकांश बालों में उन्हें रंगने वाला कुछ तत्त्व होता है। सफेद बालों में ऐसा कोई तत्त्व नहीं होता। बाल कई तरह के होते हैं, मोटे, बारीक, खुरदरे, चिकने, सीधे और घुंघराले। लेकिन ये त्वचा से उगते एक ही तरह से हैं। हर बाल की जड़ होती है। एक छोटी रक्तवाहिका बाल की जड़ तक उसका भोजन पहुंचाती है। ऐसा न हो तो बाल उगें ही नहीं। प्रत्येक बाल की जड़ में एक छोटी-सी पेशी होती है। साथ ही एक बारीक-सी स्नायु भी होती है। जब बाल खड़े होते हैं तो स्नायु द्वारा संदेश आता है और मांसपेशी बाल को खड़ा कर देती है। त्वचा की छोटी-छोटी तैलग्रंथियां बाल को चिकना रखती हैं।

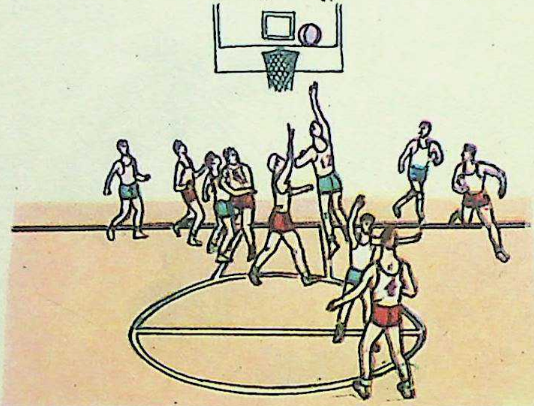
ठंड से बचने के लिए बालों का आवरण बहुत अच्छा है। इससे जानवरों के शरीर की गर्मी बाहर नहीं जाती। जानवर का शरीर भी आहत होने से बचता है।

अन्य जानवरों के बाल हमारे लिए बड़े उपयोगी हैं। फर-कोट जानवरों के बालों और खाल के बनाए जाते हैं। ऊनी कपड़े और कम्बल जानवरों के बालों, विशेषकर भेड़ के बालों के बनते हैं। बहुत-से ब्रश जानवरों के बालों से बनाए जाते हैं।

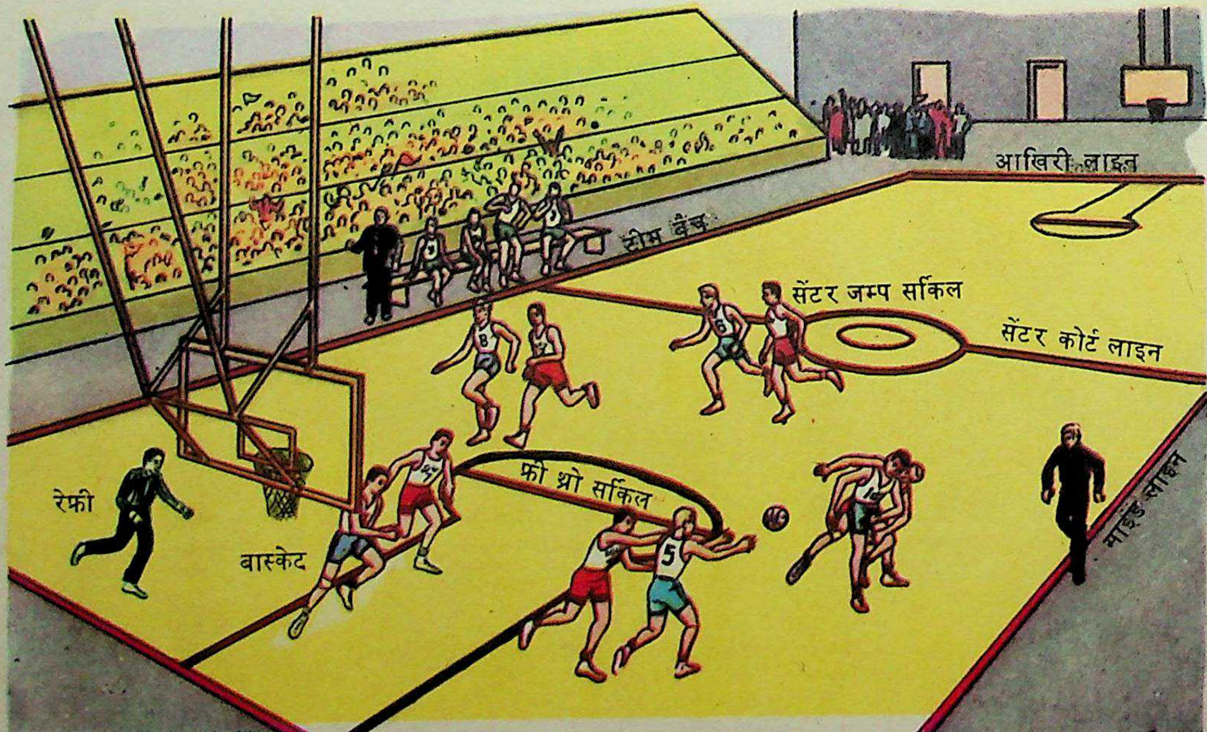
बाल-पक्षाघात (POLIOMYELITIS) : साधारणतः यह रोग 'पोलियो' कहलाता है। जैसाकि नाम से स्पष्ट है, यह रोग बच्चों को होता है। लेकिन बड़ों को भी हो सकता है। इस रोग से पीड़ित बहुत-से बच्चे मर जाते हैं, लेकिन उनसे भी अधिक अपंग हो जाते हैं।

बाल-पक्षाघात का कारण एक प्रकार के रोगाणु हैं, जो 'वायरस' कहलाते हैं। कहते हैं कि यह रोग एक से दूसरे व्यक्ति को लग जाता है, लेकिन अभी यह पता नहीं है कि ऐसा किस तरह होता है। रोगाणु जब शरीर में पहुंच जाते हैं तो वे मांसपेशियों का नियंत्रण करनेवाली तंत्रिकाओं की कोशिकाओं पर आक्रमण करते हैं। अगर रोगाणुओं ने किसी पेशी की कोशिकाओं को नष्ट कर दिया या उन्हें नुकसान पहुंचा दिया तो फिर वह मांसपेशी कोई काम नहीं कर सकती।

बरसों कोई नहीं जानता था कि पोलियो को कैसे रोका जा सकता है। सन् 1955 में डाक्टर जोनास साल्क ने पोलियो से बचने के टीके का आविष्कार किया। थोड़े-थोड़े समय के अन्तर से तीन इंजेक्शन लगा देने के बाद अधिकतर व्यक्तियों की रक्षा हो जाती है। जल्दी ही पोलियो भी चेचक की तरह काबू में आ जाएगा।



बास्केट बॉल (BASKETBALL) : यह खेल बहुत पुराना नहीं है। इसका प्रारम्भ 1891 में अमरीका के निवासी डा० जेम्स नाइस्मिथ ने किया। वे असल में एक ऐसे खेल का



ग्राविष्कार करना चाहते थे जो फुटबॉल ग्रौर बेस-बॉल खेलों के मौसमों के बीच खेला जा सके। इस खेल के लिए इतनी कम जगह की ज़रूरत होती है कि बड़े कमरों में भी इसे ग्रासानी से खेला जा सकता है। तबसे इस खेल में कई सुधार हो चुके हैं ग्रौर इसमें काफी तेज़ी ग्रा चुकी है। ग्रब यह कई देशों में बड़ा लोकप्रिय है ग्रौर इसे ग्रन्तर्राष्ट्रीय ग्रोलिम्पिक खेलों में भी स्थान मिल चुका है। भारत में भी ग्रब यह खेल बहुत लोकप्रिय हो गया है।



पढ़ने से बच्चे अनेक नई चीज़ें सीखते हैं।

बुद्धि-लब्धि (INTELLIGENCE QUOTIENT) : कुछ लोग जल्द ही किसी बात को समझ लेते हैं ग्रौर ग्रपनी सुनी, देखी ग्रौर पढ़ी हुई चीज़ को ग्रधिक समय तक याद रख पाते हैं। किसी समस्या से सामना पड़ने पर वे उसे सुलझा



लेते हैं। ये लोग अति मेधावी कहे जाते हैं। दूसरे लोग जो इन्हीं कामों को कर पाने में कम समर्थ होते हैं, कम मेधावी समझे जाते हैं।

वैज्ञानिकों ने इस बात का पता लगा लिया है कि विभिन्न अवस्थाओं पर एक औसत व्यक्ति कैसे सोचता या काम करता है। उन्होंने यह जान लिया है कि दो वर्ष के, तीन वर्ष के, या अन्य किसी भी अवस्था के बच्चे से क्या अपेक्षा की जा सकती है। जांचों से पता चला है कि यदि एक दस वर्ष का लड़का उस चीज़ को कर दिखाता है जिसकी आशा एक चौदह साल के औसत लड़के से की जाती है, तो ऐसी अवस्था में वह अतिशय मेधावी समझा जाएगा और उसकी बुद्धि-लब्धि 140 मानी जाएगी। अगर वह मात्र उतना ही कर पाता है जिसकी अपेक्षा उसकी अवस्था के बच्चे से की जाती है, तो उसकी बुद्धि-लब्धि 100 हुई। लेकिन अगर वह केवल उतना ही कर पाता है जिसकी अपेक्षा एक आठ साल के लड़के से की जाती है तो उसकी बुद्धि-लब्धि 80 हुई।

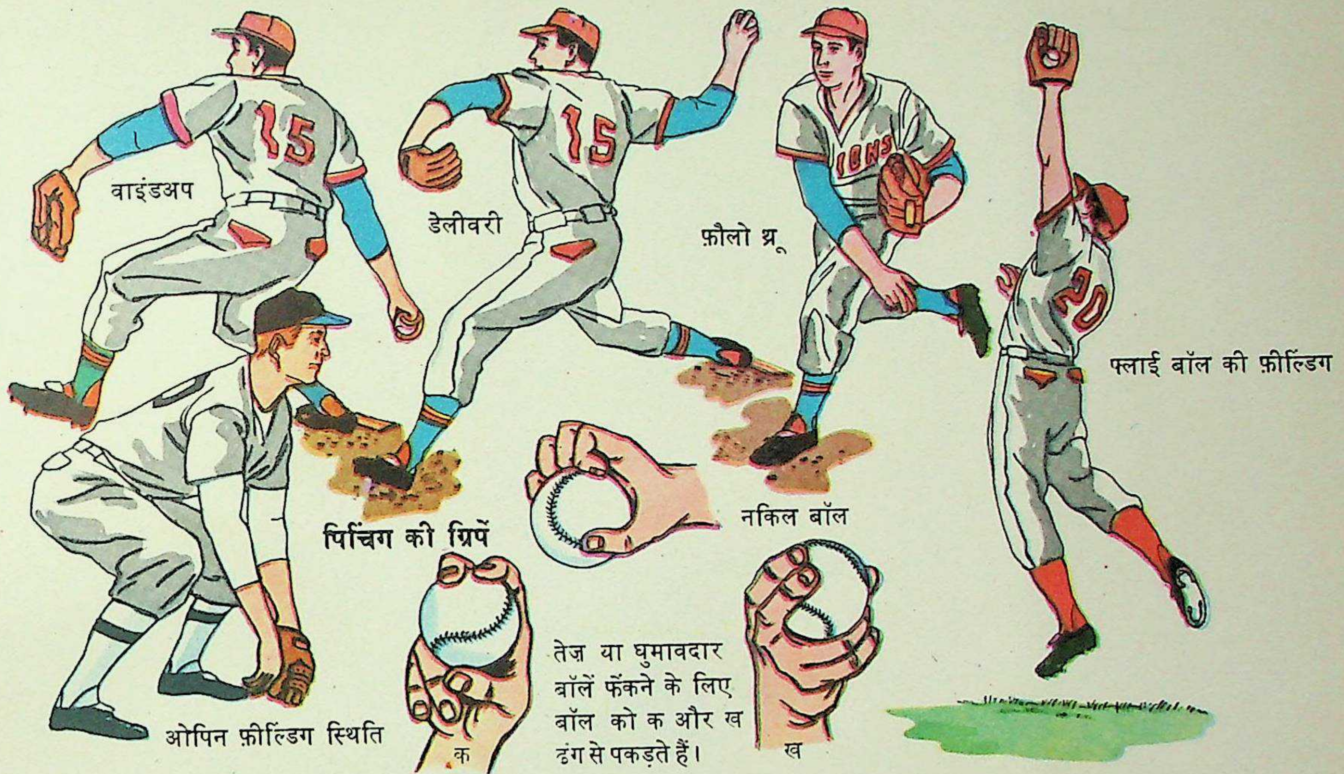
किसी व्यक्ति की बुद्धि-लब्धि निकालने का उपाय यह है: पहले उसकी बौद्धिक जांच करके उसकी मानसिक आयु का पता लगाया जाता है। उसकी मानसिक आयु को फिर 100 से गुणा किया जाता है। परिणाम को उसकी वास्तविक आयु से भाग दिया जाता है। उत्तर में जो कुछ आता है उसे उसकी बुद्धि-लब्धि कहते हैं।

$$\frac{\text{मानसिक आयु} \times 100}{\text{वास्तविक वायु (वर्षों में)}} = \text{बुद्धि-लब्धि}$$

$$\frac{14 \ (\text{मा० आ०}) \times 100}{10 \ (\text{वास्तविक आयु})} = 140 \ \text{बुद्धि-लब्धि}$$

बेस बॉल (BASEBALL) : इसे अमरीका का राष्ट्रीय खेल कहा जा सकता है। यह क्रिकेट से ही निकला है और उससे काफी मिलता भी है। इसकी शुरूआत उन्नीसवीं

पिचिंग



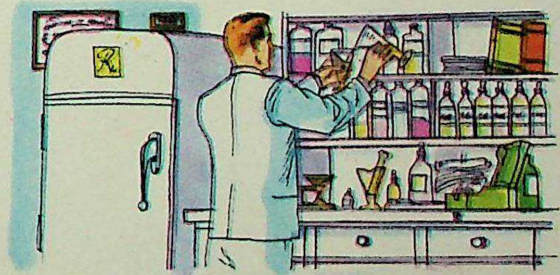
सदी के आरम्भ में हुई थी। अमरीका में इसकी लोकप्रियता का अनुमान इसीसे लगाया जा सकता है कि अमरीका के राष्ट्रपति भी साल में कम से कम एक दिन इस खेल में अवश्य भाग लेते हैं।

बौने (DWARFS) : अधिकांश व्यक्ति पांच फुट से ज़्यादा लम्बे होते हैं। लेकिन कुछ लोगों का कद चार फुट से भी कम रह जाता है। ऐसे स्त्री-पुरुष बौने या नाटे कहलाते हैं। पेड़-पौधों और जीव-जन्तुओं में भी बौने होते हैं।

राजा-महाराजा बौनों को भी अपनी सेवा में रखते थे।



कुछ देशों में, विशेषकर यूरोप के देशों में, प्राचीन काल में राज-दरबार में बौनों को विशेष रूप से रखा जाता था। वे राजाओं का मनोरंजन किया करते थे। ऐसा भी समझा जाता था कि बौने आदमी अधिक चालाक होते हैं। बौनों के विषय में बच्चों के लिए कई प्रसिद्ध कहानियां भी लिखी गई हैं।



भेषज (DRUGS) : छोटे-बड़े हर शहर में, यहां तक कि कस्बों तक में ऐसी दूकानें होती हैं जहां भेषज, यानी औषध मिलती हैं। ये भेषज बीमारियों को अच्छा करती हैं और दवाइयों में पड़ती हैं। किसी दवाई में एक ही भेषज होती है तो किसी में अनेक।

भेषज हमें ज़मीन से, पेड़-पौधों से और पशुओं से प्राप्त होती है, या फिर प्रयोगशालाओं में रासायनिक विधि से

तैयार की जाती है। वंशलोचन बांस में से निकलता है। पैनिसिलिन जैसी मशहूर भेषज एक प्रकार के फफूंद से तैयार की जाती है। गंधक ज़मीन में से निकलता है। कस्तूरी हिरन की नाभि में से निकाली जाती है। हर साल नई-नई प्रभावशाली भेषज का पता लगाया जाता है।

कुछ भेषज बहुत ही ज़हरीली होती हैं। कुछ नशीली होती हैं और बहुत-से लोगों को उनकी ऐसी लत पड़ जाती है कि आसानी से छूटती ही नहीं। वे स्वास्थ्य को बहुत ही हानि पहुंचाती हैं।

भोजन (FOOD) : भोजन हमारे शरीर के लिए एक प्रकार का ईंधन है। इससे हमें ताकत और गर्मी मिलती है। मोटर गाड़ी के लिए जो काम पेट्रोल करता है, मानव-शरीर के लिए वही काम भोजन करता है। बल्कि, देखा जाए तो भोजन का काम इससे कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है। पेट्रोल कार को बड़ा नहीं बनाता और टायर में पंचर हो जाने पर उसे ठीक भी नहीं करता। लेकिन, भोजन हमारे शरीर का विकास भी करता है और ऐसे पदार्थों का निर्माण भी करता है जो हमारी उंगली के कट जाने पर या हड्डी के टूट जाने पर उसे ठीक करने में सहायक होते हैं। भोजन से ही हमें वे तत्त्व प्राप्त होते हैं जो हमारे शरीर को ठीक रखते हैं।

पेट भर लेना और उपयुक्त भोजन करना दो अलग-अलग चीज़ें हैं। मिसाल के तौर पर, शर्करा से हमें काफी

हमारे भोजन की कुछ वस्तुएं

दूध, दही, मक्खन और पनीर
अंडे और मांस, मछली
गेहूं, चावल और दालें
ताज़े फल और साग-सब्ज़ी

शक्ति मिलती है लेकिन केवल शर्करा वाले पदार्थ खाकर हम ज़िन्दा नहीं रह सकते, क्योंकि शर्करा में शरीर के निर्माता तत्त्व नहीं होते। हमारे शरीर को अलग-अलग काम के लिए अलग-अलग तरह के भोजन की आवश्यकता होती है। विटामिन वे अद्‌भुत पदार्थ हैं जो हमारे शरीर को दुरुस्त रखते हैं। विटामिन फलों और सब्ज़ियों में प्रचुरता से होते हैं। दूसरी तरह का भोजन, जैसे अनाज, हड्डियों और दांतों को मज़बूत बनानेवाले तत्त्वों से युक्त होता है। पेशियां बनाने के लिए गोश्त और अंडे अच्छे रहते हैं। शरीर के विकास की दृष्टि से उनका विशेष महत्त्व है। दूध को कभी-कभी सम्पूर्ण भोजन कहा जाता है। वास्तव में दूध बच्चों के लिए ही सम्पूर्ण खूराक है। फिर भी, दूध ऐसा भोजन है जो प्रत्येक व्यक्ति के लिए लाभप्रद है।

विश्व के कुछ देश अपने निवासियों की आवश्यकता से अधिक भोजन उत्पन्न करते हैं। लेकिन, दुनिया की आबादी तेज़ी से बढ़ रही है, और उसके साथ ही उन देशों की संख्या भी बढ़ रही है जो अपने लिए पर्याप्त भोजन पैदा नहीं कर पाते। हरेक व्यक्ति को उपयुक्त भोजन देने के लिए यह ज़रूरी है कि संसार के खाद्योत्पादक क्षेत्र की वृद्धि करने के नये तरीके निकाले जाएं।

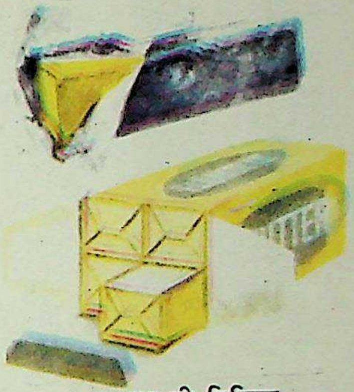
कुछ देशों ने अपनी बड़ी-बडी सिंचाई-योजनाओं द्वारा अपनी खेती की ज़मीन बढ़ा ली है। इन योजनाओं को कार्यान्वित करके भारत अपने विशाल रेगिस्तानी इलाके को लहलहाते खेतों में बदल रहा है। हालैंड ने ज़ूडर ज़ी (Zuider Zee) को सुखाकर हज़ारों एकड़ ज़मीन खेती के योग्य बना ली है। सोवियत संघ में साइबेरिया के ठंडे प्रदेशों में ऐसे खाद्यान्न उत्पन्न किए जा रहे हैं जिनकी फसलें बहुत कम समय में तैयार हो जाती हैं। एक सुझाव यह भी दिया जा रहा है कि भूमध्यसागर पर एक विशाल बांध का निर्माण करके सागर के कुछ भाग को सुखा लिया जाए और उसपर खेती की जाए। (देखें : विटामिन)

मक्खन (BUTTER) : हर प्रकार के दूध में कुछ चिकनाई होती है। मक्खन इस चिकनाई से ही तैयार होता है। लेकिन इसमें दूध का कुछ जल भी रह जाता है। सबसे मुख्य बात यह है कि इसमें कुछ ऐसे विटामिन भी पाए जाते हैं जो हमारे शरीर के लिए ज़रूरी होते हैं। बाज़ार में बिकनेवाले मक्खन में कुछ नमक भी मिला दिया जाता है।

मक्खन दूध को मथकर या क्रीम से तैयार किया जाता है। क्रीम दूध का वह भाग है जिसमें सबसे अधिक मक्खन पाया जाता है। मथानी से दूध या क्रीम को मथा जाता है। मथते समय दूध से चिकनाई के नन्हे कण ऊपर आते जाते हैं और एक लौंदे की तरह जम जाते हैं। फिर इन लौंदों से मक्खन तैयार किया जाता है।

हम जिस मक्खन का प्रयोग करते हैं, वह भैंस या गाय के दूध से तैयार होता है। तिब्बत में याक के दूध से और


मथकर मक्खन निकालना


मक्खन की टिकिया

अनेक देशों में भेड़ों और बकरियों के दूध से मक्खन तैयार होता है।

लोगों ने हज़ारों वर्ष पूर्व मक्खन बनाना सीख लिया था। उन्हें इसका पता संयोग से ही चला होगा।

मनोभाव और स्मृति (EMOTIONS AND MEMORY): हमारे मन में उठनेवाली विभिन्न प्रकार की भावनाएं या मनोभाव, हमारी स्मृति तथा ज्ञान आदि ऐसी मानसिक अवस्थाएं हैं जिनका शरीरशास्त्र की दृष्टि से उद्गम अभी तक स्पष्ट नहीं हो सका है। हमें इस बात की कम ही जानकारी है कि मस्तिष्क का कौन-सा भाग इनके लिए उत्तरदायी है। हाल के कुछ वर्षों में इतना ज्ञात हो सका है कि ललाट के कुछ खंडों की चीर-फाड़ से मस्तिष्क-संबंधी कुछ रोगों की तीव्रता को काफी कम किया जा सकता है। फिर भी यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि इन खण्डों का भावनाओं से सीधा संबंध है। इतना अवश्य कहा जा सकता है कि प्रमण्तिक कोर्टेक्स (Cerebral Cortex) उन अधश्चेतक केन्द्रों को संचालित करता है जो अंतरंग की गतियों को प्रेरित करते हैं। इन्हीं गतियों के कारण हम कुछ ऐसी क्रियाएं करते हैं जो हमारे मनोभावों के साथ-साथ होती हैं, जैसे आवेग में त्वचा का लाल या पीला पड़ जाना, शर्माना, दिल की धड़कन का बढ़ जाना आदि-आदि।

इसी प्रकार हम स्मृति और ज्ञान आदि की उच्चतर मानसिक स्थितियों और क्रियाओं के बारे में भी निश्चित रूप से नहीं जानते कि बृहत् मस्तिष्क का कौन-सा विशेष भाग उनके लिए उत्तरदायी है। मस्तिष्क के तन्तु लाखों न्यूटॉनों से निर्मित हैं और हो सकता है कि किसी एक बात को याद रखने या सीखने की क्रिया में हज़ारों न्यूटॉन एकसाथ सक्रिय होते हों। हो सकता है कि यह प्रतिवर्त क्रियाओं का ही एक ऐसा सिलसिला हो जिसके बारे में अभी हम ठीक-ठीक नहीं जान पाए हैं। इस संबंध में वैज्ञानिकों द्वारा अभी खोज जारी है।

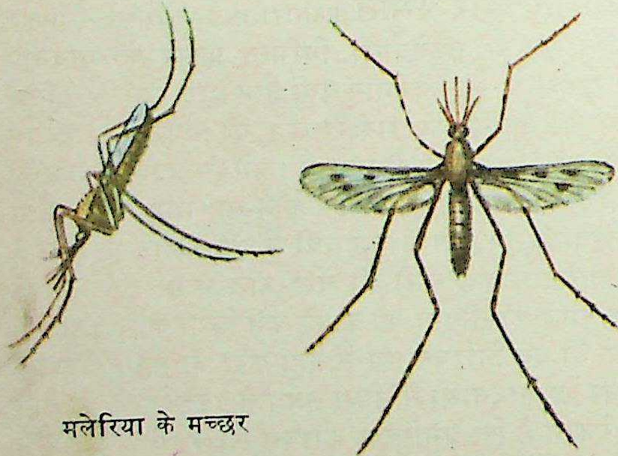
(देखें : मस्तिष्क ; प्रतिवर्त क्रिया)

मलेरिया (MALARIA) : दुनिया में जितनी भी बीमारियां हैं, उनमें मलेरिया सबसे अधिक व्यापक है। ठीक इस समय भी दुनिया के बहुत से लोग मलेरिया से पीड़ित हो सकते हैं। इस बीमारी में जाड़ा देकर बहुत तेज़ बुखार आता है। मलेरिया से जितने लोग मरते हैं शायद उतने दूसरी किसी बीमारी से नहीं मरते। हर साल लगभग 30,00,000 व्यक्ति मलेरिया से मौत के घाट पहुंचते हैं।

गरम और तर प्रदेशों में मलेरिया बहुत अधिक पाया जाता है। लेकिन गरम प्रदेशों के बाहर दलदली जगहों पर भी मलेरिया का रोग फैलता है।

पहले लोग यह समझते थे कि मलेरिया की बीमारी दलदलों से उठनेवाली हवा से पैदा होती है। आज हमें यह पता है कि यह बीमारी एक प्रकार के सूक्ष्म एककोशिकी जीवों से फैलती है। इन एककोशिकी जीवों को मलेरिया के रोगाणु कहते हैं।

मलेरिया एक से दूसरे व्यक्ति में मलेरिया के मच्छरों (एनोफेलीज़) द्वारा फैलाया जाता है। यह मच्छर जब



मलेरिया के मच्छर

मलेरिया के रोगी को काटता है तो उसका कुछ खून चूस लेता है। इस खून में मलेरिया के रोगाणु मिले होते हैं। जब यही मच्छर किसी और को काटता है तो वह जिस स्थान पर घाव करता है वहां मलेरिया के कुछ रोगाणु छूट जाते हैं।

बहुत लम्बे समय तक कुनैन मलेरिया की एक अच्छी दवा थी। दूसरे महायुद्ध के समय कुनैन बहुत मुश्किल से मिलती थी। इसका कारण यह था कि अधिकतर लड़ाइयां ऐसी जगहों पर हो रही थीं जहां मलेरिया बहुत आम बीमारी है। इस बीच वैज्ञानिक लोग किसी दूसरी दवा की खोज में लगे। अन्त में उन्हें कुछ ऐसी दवाएं बनाने में सफलता मिली जो कुनैन से भी अच्छी हैं।

अगर मच्छर न रहें तो मलेरिया की बीमारी भी खत्म हो जाए। मलेरिया को दूर करने का सबसे अच्छा उपाय यह है कि मच्छरों का सर्वनाश कर दिया जाए।

हमारे देश में राष्ट्रीय स्तर पर मलेरिया उन्मूलन अभियान चल रहा है। आशा की जाती है कि यह रोग शीघ्र ही समाप्त हो जाएगा।



मसालों के पौधे

मसाले (SPICES) : हमारे भोजन की प्रधान सामग्रियां हैं—अनाज, दालें, दूध, मांस, सब्ज़ियां, फल, आदि। यह सही है कि हमारी भोजन की आवश्यकता इनसे ही पूरी होती है। पर मसालों के बिना ये खाद्य-पदार्थ शायद इतने रोचक न रह जाएं। मसालों से सब्ज़ी बड़ी स्वादिष्ट बन जाती है। सब्ज़ी में पड़े मसाले की गंध ही हमारे चित्त को प्रसन्न कर देती है। यही नहीं, मसाले भोजन के प्रति हमारी रुचि को जाग्रत करते हैं और भोजन के पचाने में भी सहायक होते हैं।

मसाले भारतीय भोजन के महत्त्वपूर्ण अंग हैं। बहुत प्राचीन काल से हमारे पूर्वज मसालों का उपयोग करते आ रहे हैं। पर सभी देशों के निवासियों के लिए ऐसा सम्भव नहीं था। उदाहरण के लिए, मध्ययुग में यूरोप के लोगों को मसाले मुश्किल से मिलते थे। उन दिनों वहां मसाले इतने महंगे बिकते थे कि केवल कुछ धनी लोग ही इन्हें खरीद पाते थे। वास्तव में मसाले वहां पैदा नहीं होते। मसाले मुख्यतया दक्षिणी भारत और पूर्वी द्वीपसमूह की विशेष पैदावार हैं।



पुराने ज़माने के यूरोपीय सौदागर मसालों के लिए बड़ी-बड़ी संकटपूर्ण समुद्री यात्राएं करते थे।

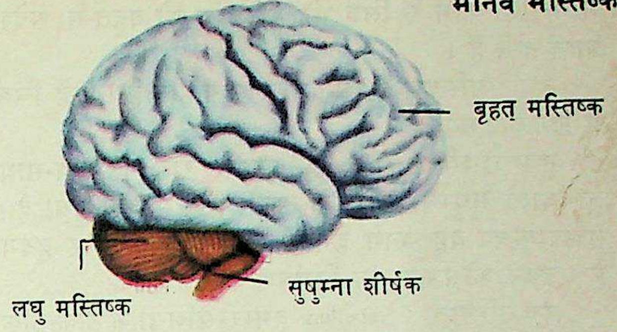
मध्ययुगीन यूरोप में मसालों का इतना महत्व था कि तमाम कष्ट सहन करते हुए वहां से व्यापारियों के काफिले आते थे और भारत, लंका तथा पूर्वी द्वीपसमूह से मसाले खरीदकर ले जाते थे। इन देशों तक पहुंचने के लिए नये-नये रास्तों की खोज की जाती थी। इन रास्तों पर नियंत्रण के अधिकार के लिए यूरोपीय राष्ट्रों के बीच बड़े-बड़े युद्ध हुआ करते थे। यह सुनने में अविश्वसनीय लगता है, पर एक बार एक आदमी को केवल इसलिए फांसी दे दी गई थी कि उसने बिना अनुमति के दारचीनी का एक टुकड़ा बेच दिया था। सम्भवतः इसकी वजह शायद यह रही हो कि मध्ययुग में यूरोपीय भोजन बहुत बेस्वाद होता था। जाड़ों में सब्ज़ियां या फल नहीं मिलते थे। भोजन को संरक्षित रखने की विधियां ज्ञात नहीं थीं। शरद् ऋतु में मारे गए पशुओं का मांस जाड़े में बहुत-कुछ नष्ट हो जाता था। यही कारण था कि वे लोग अपने भोजन को सुस्वादु बनाने के लिए इतने लालायित रहते थे।

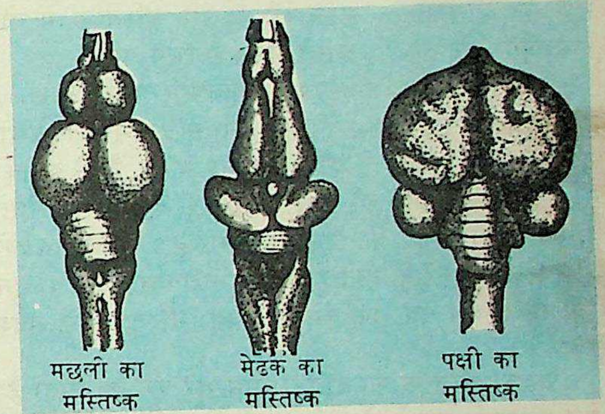
यूरोपीय व्यापारियों के लिए भारत या पूर्वी द्वीपसमूह आने का रास्ता उन दिनों बहुत दुर्गम था। समुद्री रास्ते से आने पर पूरे अफ्रीका का चक्कर लगाकर और अरब सागर पार करके वे भारत पहुंचते थे। उन दिनों के जहाज़ भी इतने अच्छे नहीं थे। फिर रास्ते में लुटेरों, तूफानों और शत्रुओं का भय भी बना रहता था। साहसी यात्री भारत आने के लिए नये-नये रास्तों की तलाश किया करते थे। समुद्री रास्ते से भारत पहुंचने में सब से पहले वास्को द गामा सफल हुआ था। कोलम्बस ने भारत पहुंचने के प्रयत्न में एक नया महाद्वीप ही खोज डाला।

सभी मसाले पौधों से मिलते हैं। लेकिन सभी मसाले पौधों के एक ही अंग से नहीं आते। यहां प्रमुख मसालों की एक सूची दी जा रही है। इसमें यह भी बताया गया है कि ये मसाले पौधे के किस भाग से मिलते हैं।

मसाले	पौधे का भाग
सौंफ	बीज
काली मिर्च	बेरियां
इलायची	बीज
दारचीनी	छिलका
लौंग	कलियां
धनिया	फल
अदरख	भूमिगत तना
जावित्री	बीज-खोल
सरसों, राई	बीज
जायफल	बीज
पीपर	फल
लाल मिर्च	फल

मानव मस्तिष्क





मस्तिष्क (BRAIN) : हवाई जहाज़ एक बड़ा आश्चर्यजनक यंत्र है। लेकिन हवाई जहाज़ तब तक नहीं उड़ सकता जब तक कि चालक उसे चलाता नहीं। हमारा शरीर भी एक आश्चर्यजनक यंत्र है। लेकिन शरीर के यंत्र को चलाने के लिए भी चालक की ज़रूरत होती है। हमारे शरीर का चालक है हमारा मस्तिष्क।

हमारा मस्तिष्क चालक से कहीं बढ़कर है। मस्तिष्क हमारे शरीर को केवल चलाता ही नहीं है, बल्कि वह सोचता भी है, याद भी रखता है और कल्पना के किले भी बनाता है। स्कूल जानेवाले हर लड़के को कुछ पहाड़े और बारहखड़ी याद होती है। उसे बहुत-से शब्द और उनके अर्थ भी याद होते हैं। इसके अलावा, वह बहुत-सी बातें सोचता भी है। लेकिन अगर हम किसी प्रकार उस लड़के के मस्तिष्क को देख सकें तो हमें उसमें इसका कोई चिह्न नहीं मिलेगा कि उसमें क्या-क्या जमा पड़ा है। हमारा मस्तिष्क भी शरीर के अन्य अंगों की भांति कोशिकाओं से बना होता है। उसका बाहरी भाग भूरे रंग का होता है।

मस्तिष्क शरीर के दूसरे अंगों तक अपने संदेश स्नायुओं के ज़रिये भेजता है और उन्हीं के ज़रिये संदेशों को प्राप्त भी करता है। अगर कोई व्यक्ति ज़मीन पर पड़ी किसी पिन को उठाने के लिए झुकना चाहता है तो उसका मस्तिष्क पीठ की पेशियों को संदेश भेजता है। वह हाथ और उंगलियों की पेशियों को भी संदेश भेजता है। इसी प्रकार

मामूली-से काम के लिए भी मस्तिष्क को बहुत-से संदेश प्राप्त होते हैं।

हमारे मस्तिष्क के तीन मुख्य भाग होते हैं। इन्हें चित्र में दिखाया गया है।

सुषुम्ना-शीर्षक (Medulla) हमारी रीढ़ के साथ-साथ जानेवाली सुषुम्ना नाड़ी के ऊपरी सिरे से जुड़ा हुआ है। मस्तिष्क का यह भाग हमारी श्वास-क्रिया और हृदय के धड़कने की क्रिया का नियंत्रण करता है।

लघु मस्तिष्क (Cerebellum) हमारी पेशियों के ठीक-ठीक संचालन में सहायता करता है। लघु मस्तिष्क में चोट लग जाने पर आदमी चलते समय डगमगाता है।

मस्तिष्क का सबसे बड़ा भाग बृहत् मस्तिष्क (Cerebrum) कहलाता है। इसी भाग की सहायता से हम सोचते-विचारते हैं, याद रखते हैं और कल्पना करते हैं। इसीकी सहायता से हम सुनते और बात करते हैं, देखते और सूंघते हैं, स्वाद और स्पर्श का अनुभव करते हैं। अच्छी आंखों और अच्छे कानों के होते हुए भी हम तब तक देख या सुन नहीं सकते जब तक कि हमारे बृहत् मस्तिष्क में संदेश न पहुंचे।

बृहत् मस्तिष्क का बाहरी भाग भूरे रंग का होता है। यह भीतर से सफेद होता है। भूरे भाग में कई सिकुड़नें होती हैं।

सभी स्तनपायी जीवों में हमारे जैसे मस्तिष्क होते हैं। उनके भाग भी ऐसे ही होते हैं। लेकिन हमारा बृहत् मस्तिष्क उनकी अपेक्षा काफी बड़ा होता है। हमारे बृहत् मस्तिष्क का पीला आवरण भी अधिक सिकुड़नों वाला होता है। वैसे तो हम कई बातों में अन्य स्तनपायी जीवों की अपेक्षा काफ़ी पिछड़े हुए हैं। हम उनकी अपेक्षा बहुत कमज़ोर हैं और हमारी गति भी बहुत धीमी है। लेकिन हम अन्य सभी जीवों की अपेक्षा अधिक बुद्धिमान हैं, क्योंकि हमारा बृहत् मस्तिष्क उनसे कहीं अधिक बड़ा और अधिक सिकुड़नों वाला होता है।

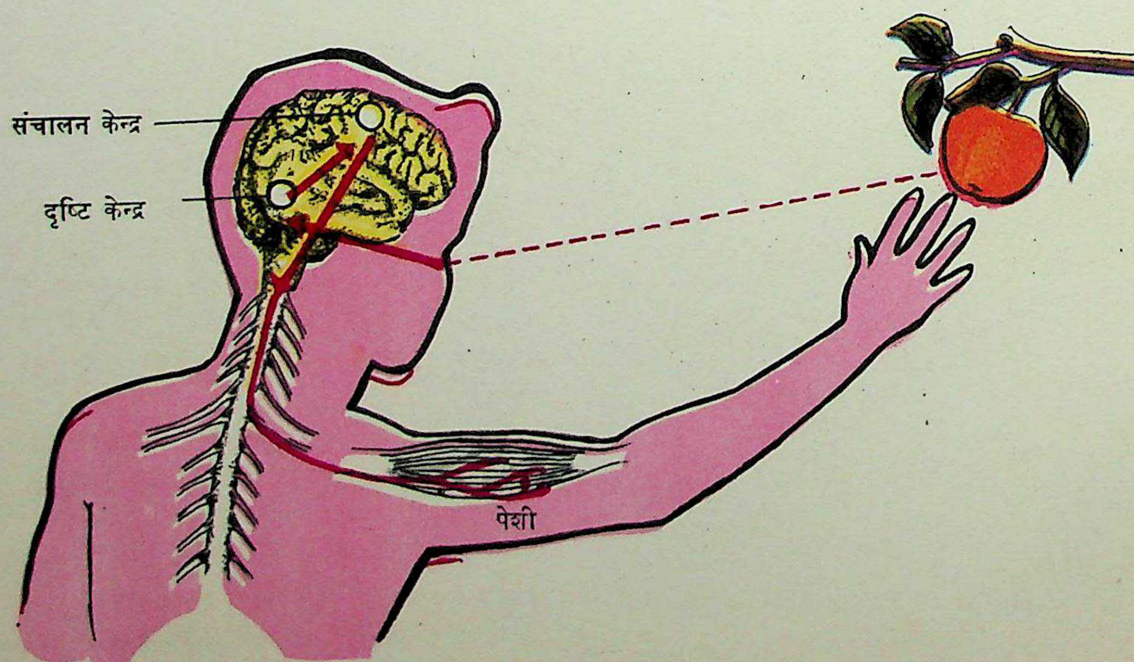
रीढ़वाले अन्य जीवों की तुलना में भी हम बहुत आगे बढ़े हुए हैं। पक्षियों का बृहत् मस्तिष्क बहुत छोटा होता है और उसमें सिकुड़नें नहीं होतीं। रेंगकर चलनेवाले और जलस्थलीय जीवों का बृहत् मस्तिष्क और भी छोटा होता है। मछलियों का बृहत् मस्तिष्क तो बहुत ही छोटा होता है।

बिना रीढ़ के जीवों में बृहत् मस्तिष्क नहीं होता। कुछ ऐसे जीव भी हैं जिनमें मस्तिष्क होता ही नहीं है।



महक (FLAVOURING) : टॉफ़ी, आइसक्रीम, केक और पुडिंग—सभी की अलग-अलग महक होती है। इसी प्रकार अलग-अलग मिठाइयों और मुरब्बों वगैरह की महक भी अलग-अलग होती है।

आइसक्रीम और केक में महक लाने के लिए वनीला सबसे प्रसिद्ध है। टॉफ़ियों में भी इसका प्रयोग होता है। आज से लगभग 400 वर्ष पहले स्पेनवासियों ने मैक्सिको





पर विजय प्राप्त की थीं। तब तक वनीला के बारे में किसी को कुछ पता नहीं था। स्पेनवासियों ने मैक्सिको के आदिवासियों से वनीला तैयार करना सीखा। इन आदिवासियों को चॉकलेट का प्रयोग भी मालूम था। आज चॉकलेट की महक बहुत अधिक लोकप्रिय हो चुकी है।

पिपरमिंट, अर्क पुदीना और विंटरग्रीन—इन पौधों की पत्तियों से तैयार किए जाते हैं। चूइंगगम में महक लाने के लिए इन तीनों चीज़ों का प्रयोग सबसे अधिक होता है।

पिपरमिंट और विंटरग्रीन टॉफियों में भी काम आते हैं। मिठाइयों में बहुत-से फलों की महक का प्रयोग किया जाता है। नींबू और संतरे की महक इन फलों के छिल्के से तैयार की जाती है।

असल में महक का प्रयोग करने से खाने में जो एक विशेष स्वाद आ जाता है वह बहुत कुछ उसकी सुगंध के कारण आता है। स्वाद तो केवल चार तरह के हैं—कड़वा, खट्टा, मीठा और नमकीन। जिन चीज़ों में इन चारों के अलावा कोई नया स्वाद होता है वह उनकी महक के कारण ही होता है। स्वाद की अपेक्षा गंध कहीं अधिक सशक्त इंद्रियबोध है। अगर सेब खाते समय आपकी नाक के नीचे नाशपाती रख दी जाए तो आपको उस सेब में नाशपाती का स्वाद आने लगेगा।

प्रारम्भ में सभी प्रकार की महक पौधों से तैयार की जाती थी। अब वैज्ञानिकों ने दूसरे तरीके भी निकाल लिए हैं। मिसाल के तौर पर आजकल वनीला की नकली महक कोलतार से तैयार की जाती है।

मांस और मांस की डिब्बाबंदी (MEAT AND MEAT PACKING) : प्रारम्भिक युगों में लोग अपने लिए सारा मांस जंगली जीवों से प्राप्त करते थे। शिकार उनके जीवन का मुख्य अंग था। आजकल लोग जो मांस खाते हैं उसमें से अधिकांश पालतू पशुओं का होता है जिन्हें मांस के लिए मारा जाता है। अब तो जगह-जगह मांस की दूकानें होती हैं जहां से मांस खरीदा जा सकता है। हमारे पूर्वजों के पास गरम मौसम में मांस को सड़ने-गलने से बचाने का कोई सरल उपाय न था। ज्योंही कोई बड़ा पशु मारा जाता वे प्रायः दावत उड़ा लेते थे और जितना खा सकते खा लेते थे। इसका मतलब यह होता था कि उन्हें अपने परिवार के लिए मांस जुटाने के लिए जल्दी-जल्दी शिकार करना पड़ता था।

धीरे-धीरे उन्होंने मांस को सुखाकर, नमक लगाकर, या धुआं देकर खाने के लिए सुरक्षित रखना सीख लिया। आजकल मांस को जमा लिया जाता है या टीन के डिब्बों में बंद कर लिया जाता है। फिर उसे चाहे महीनों बाद खाएं चाहे साल के बाद।

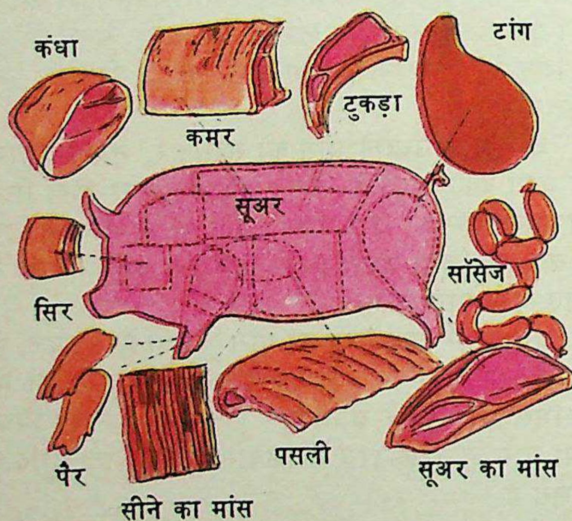
बाज़ार में तरह-तरह का मांस बिकता है—सूअर, भेड़, बकरी का मांस। चूज़े, बत्तख, पेरू, हंस आदि का मांस भी मिलता है। इसके अतिरिक्त, कटे-पिसे मांस का मिश्रण तथा मांस के तरह-तरह के पकवान और पकौड़े आदि भी मिलते हैं।

मांस को सेका जा रहा है।



आजकल लोग इतना मांस खाने लग गए हैं कि पशुओं को मारकर उनका मांस बाज़ार में भेजना एक आवश्यक उद्योग बन गया है। अब तो रेफ्रिजरेटर की सहायता से मांस को जमा लिया जाता है और उसे काफी समय तक रखा जा सकता है। बाज़ारों में मांस का थोक व्यापार भी चलता है जहां दुनिया के दूसरे कोने से भी मांस पहुंचता है। अमरीका, अर्जेंटीना, दक्षिण-पश्चिमी रूस, ब्रिटेन, आस्ट्रेलिया और न्यूज़ीलैंड मांसोत्पादन के प्रमुख क्षेत्र हैं।

मांस की डिब्बाबंदी या पैकिंग के समय इस बात की विशेष सावधानी बरती जाती है कि मांस खाने योग्य और सुरक्षित रहे। सरकारी निरीक्षक उसकी परीक्षा करते हैं और उसपर मुहर लगा देते हैं कि वह प्रामाणिक है। इसके अलावा, मुहर से यह भी मालूम होता है कि वह किस दर्जे का मांस है। पहले, पशुओं की खाल और चर्बी के अतिरिक्त उनका जो भी भाग प्रयुक्त नहीं होता था वह यूंही फेंक दिया जाता था। किन्तु अब प्रायः कुछ भी



नहीं फेंका जाता है। उनका रक्त, हड्डियां, खुर, बाल, यहां तक कि ग्रन्थियां भी खाद, साबुन, गोंद, दवाइयां, रंग-रोगन, प्लास्टिक, रासायनिक पदार्थ आदि बनाने के काम आती हैं।

माओरी (MAORIS) : माओरी जाति के लोग न्यूज़ीलैंड के मूल निवासी हैं। ये वहां लगभग छः सौ साल पहले जाकर बसे थे। ये शायद दो हज़ार मील दूर ताहिती से आए थे। आरम्भ में न्यूज़ीलैंड में बसने के लिए आए यूरोप-वासियों के साथ माओरियों के लम्बे युद्ध हुए। अब अधिकांश माओरी लोग न्यूज़ीलैंड के उत्तरी द्वीप में रहते हैं। इन्होंने अभी तक अपने विचित्र रीति-रिवाजों और परम्पराओं को कायम रखा है। इनकी अपनी अलग भाषा है।

मानव (MAN) : आज से 50 करोड़ वर्ष पूर्व ट्राइलोबाइट धरती के प्रमुख जीव थे। फिर उसके बाद एक बहुत लम्बे काल तक मछलियां दुनिया के सर्वश्रेष्ठ जीवों में थीं। उसके बाद सरीसृपों की प्रधानता हुई। आगे चलकर इनको स्तनपायियों ने किनारे कर दिया। आज हम मानव-युग में जी रहे हैं। मानव आज जीवधारियों का सिरमौर है।

यहां मानव से मतलब सम्पूर्ण मानव-जाति से है।

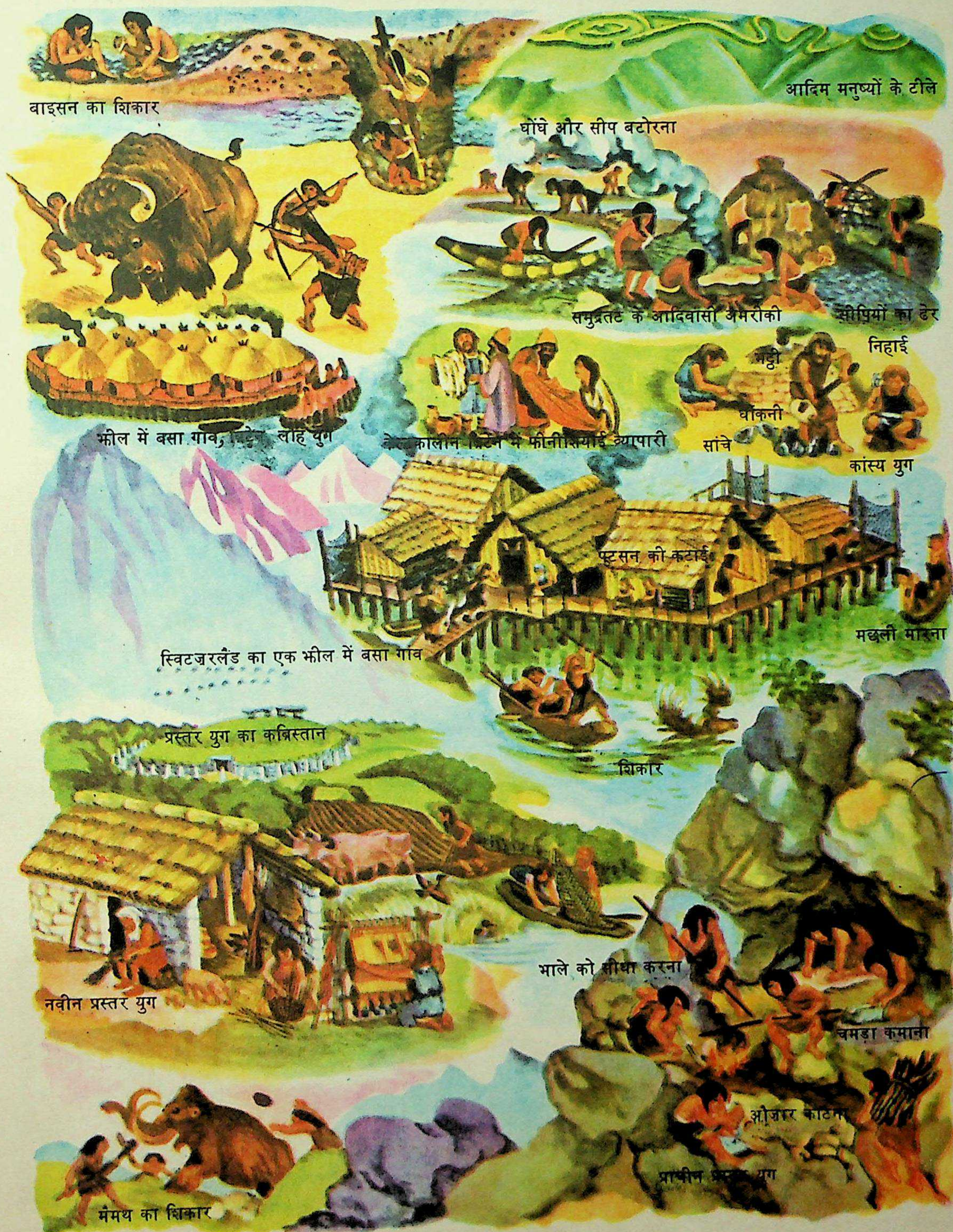
मानव एक स्तनपायी जीव है। स्तनपायियों के जिस वर्ग में इसकी गिनती है उसे वानर-प्रजाति कहते हैं। जीवों की दुनिया में मानव की बिरादरी में ही वानरों की गिनती है। वानरों में गोरिल्ला, चिंपैंज़ी, गिब्बन और ओरांग-उटान प्रमुख हैं। लेकिन मानव अपनी बिरादरी के इन जीवों से कई महत्त्वपूर्ण अर्थों में बहुत भिन्न है।

वैज्ञानिकों को जितने भी प्राणियों के बारे में कुछ पता है, उनका उन्होंने कुछ नाम दे रखा है। ये नाम लैटिन भाषा में हैं। मानव का वैज्ञानिक नाम 'होमो सेपियन्स' है। 'होमो' शब्द लैटिन में मानव के लिए प्रयोग में आता है। 'सेपियन्स' शब्द लैटिन में 'चिन्तनशील' के लिए आता है। 'होमो सेपियन्स' का अर्थ है, सोचने-विचारने वाला मानव प्राणी।

किसीको इस बात का ठीक पता नहीं है कि सबसे पहले कब और कहां मनुष्य की उत्पत्ति हुई। सम्भवतः इसकी उत्पत्ति आज से 10 लाख वर्ष पहले हुई। इस बात के बारे में हमें काफी निश्चित ज्ञान है कि आज से 5,00,000 वर्ष पूर्व भी मनुष्य नामक प्राणी थे। यह उस हिमयुग की बात है जब उत्तरी गोलार्ध के अधिकांश भाग में बर्फ की एक मोटी तह बिछ गई थी।

जब हम उस युग के कुछ अन्य जीवों के बारे में सोचते हैं तो यह सोचकर आश्चर्य होता है कि कैसे उस युग में मनुष्य अपनी रक्षा कर सके। वे उतने बड़े नहीं थे जितने बड़े उस युग के 'मैमथ' और 'मैस्टोडन' हुआ करते थे। वे उतने शक्तिशाली भी नहीं थे जितने उस युग के गुहा-वासी रीछ हुआ करते थे। वे घोड़ों और हिरनों के समान तेज़ भाग भी नहीं सकते थे। उनके पास लम्बे दांतों वाले शेरों की तरह कोई नोकीला अंग भी नहीं था।

लेकिन आदि काल के मनुष्यों को कुछ बड़ी सुविधाएं प्राप्त थीं। उनका मस्तिष्क दूसरे जीवों से अच्छा था। उनके हाथ अन्य जीवों से अच्छे थे, क्योंकि उनके हाथों में अंगूठे थे जिनके सहारे वे किसी चीज़ को पकड़ सकते थे। वे सीधे चल सकते थे जिससे उनके हाथ हमेशा खाली रहते थे और उन्हें वे ज़रूरत पड़ने पर काम में ला सकते थे। उनकी आंखें एक ही सीध में थीं, जिससे वे किसी चीज़ का पूरा दृश्य दोनों आंखों से देख सकते थे। चूंकि उनका मस्तिष्क दूसरे जानवरों से अधिक अच्छा था, इसलिए वे अपने लिए ज़रूरी चीज़ों का आविष्कार कर सकते थे। अपनी आंखों की सहायता से, जो और जानवरों की


तीर की नोक काटना
चकमक पत्थर खोदना
आदिम मनुष्यों के टीले
बाइसन का शिकार
घोंघे और सीप बटोरना
समुद्रतट के आदिवासी अमरीकी
सीपियों का ढेर
निहाई
भट्ठी
धौंकनी
सांचे
कांस्य युग
झील में बसा गांव,
लोह युग
फीनीशियाई व्यापारी
पटसन की कटाई
मछली मारना
स्विटजरलैंड का एक झील में बसा गांव
प्रस्तर युग का कब्रिस्तान
शिकार
भाले को सीधा करना
नवीन प्रस्तर युग
चमड़ा कमाना
औज़ार
प्राचीन
मैमथ का शिकार



हिमयुग में आत्म-रक्षा के लिए गुफाओं की खोज हुई

आंखों से अच्छी थीं, वे अपनी योजना को कार्य रूप में बदल सकते थे। अपने मस्तिष्क से उन्होंने एक-दूसरे से बात करने का ढंग भी निकाल लिया था। हमें किसी दूसरे ऐसे जीव का पता नहीं है जिसकी अपनी कोई भाषा हो।

चूंकि मनुष्य आपस में बात कर सकते थे, इसलिए इससे उन्हें मिल-जुलकर काम करने में आसानी होती थी। धीरे-धीरे उन्होंने काम को बांटकर करना सीख लिया। मनुष्य के अलावा दूसरे कुछ ही ऐसे जीव हैं जो अपना काम बांटकर और मिल-जुलकर करते हैं। इनमें चींटी, दीमक और शहद की मक्खियों की गिनती होती है।

बहुत लम्बे समय तक मनुष्य लिखना नहीं जानता था। सच कहिए तो लेखन की कला कुछ ही हज़ार वर्षों पुरानी है। इसलिए आदिम मानव का कोई लिखित विवरण हमें नहीं मिलता। हम आदिम मानवों के बारे में उनके अस्थिपंजरों, हथियारों और उन जानवरों की जानकारी के आधार पर ही कुछ कह सकते हैं जिनका कि वे शिकार करते थे।

सबसे प्रारभिक मानवों को, जिनके बारे में हमें कुछ ज्ञान है, नानडरताल (Neanderthal) मानव कहते हैं। नानडरताल मानव तीन महाद्वीपों में फैले हुए थे : यूरोप, एशिया और अफ्रीका। कई हज़ार वर्ष तक उनमें से कुछ दक्षिणी यूरोप की गुफाओं में रहते थे। वे उस युग में रहते थे जिसे हम प्राचीन प्रस्तरयुग कहते हैं। उनके हथियार और औज़ार सभी पत्थर के बने हुए थे।

मनुष्य की आदि उत्पत्ति से लेकर लेखन-कला के आरम्भ तक की कहानी एक बहुत ऊंची चढ़ाई की तरह है। इसकी कुछ महत्त्वपूर्ण सीढ़ियां इस प्रकार थीं :

बर्तन बनाना सीखना।
खाना पकाना सीखना।
कताई और बुनाई सीखना।
जानवरों और पौधों को पालना और उगाना।
धातुओं का प्रयोग सीखना।
सादी मशीनों का आविष्कार करना।

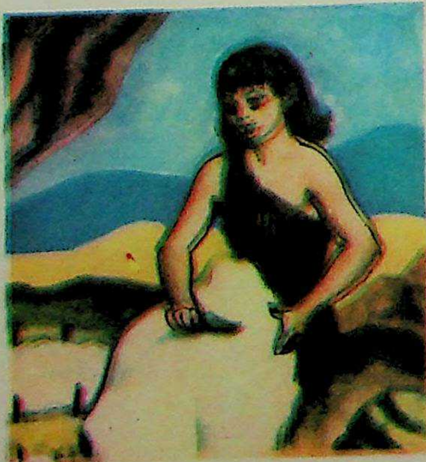
क्या यह संभव है कि कुछ लाख वर्षों में मनुष्य-जाति का भी नाश हो जाए, जैसेकि उन प्राचीन सरीसृपों का हो गया जिन्हें डाइनोसॉर कहा जाता है? अधिकांश वैज्ञानिकों का कहना है कि मनुष्य अपनी बुद्धि के बल पर अपना अस्तित्व बनाए रखेगा। अगर मनुष्य ने ही युद्ध आदि के द्वारा स्वयं अपनी जाति का विनाश नहीं किया, तो मनुष्य का प्रभुत्व सदा बना रहेगा।

(देखें : मानव-जातियां ; मानव-विज्ञान)

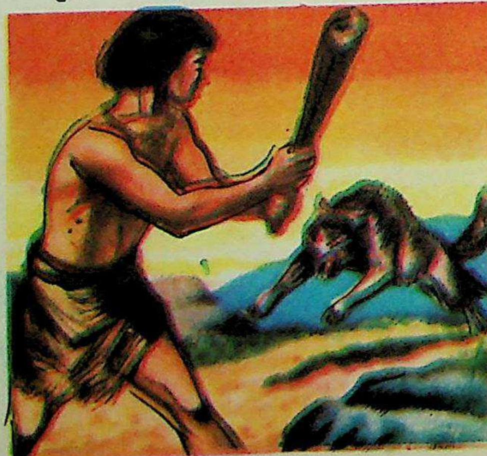
मानव, गुहावासी (CAVE MEN) : सभ्यता के आरम्भ में आदिम मानव गुफाओं में रहा करते थे। दक्षिणी फ्रांस और उत्तरी स्पेन में ऐसी कुछ गुफाएं पाई गई हैं। महान हिमयुग के अंतिम भाग में इन गुफाओं में आदिम मानव रहा करते थे। यूरोप में उन दिनों ये ही लोग रहते थे। इन लोगों को हम गुहावासी मानव कहते हैं।

हिमयुग में अनेक बार ऐसा होता था कि बर्फ की परतें उत्तर से दक्षिण की ओर बिछ जाती थीं और फिर पिघल जाती थीं। वैज्ञानिकों का कहना है कि हिम के अंतिम धक्के के पहले भी, आज से एक लाख वर्ष पूर्व, यूरोप में मनुष्य रहते थे। इन मनुष्यों के अनेक चिह्न मिले हैं।

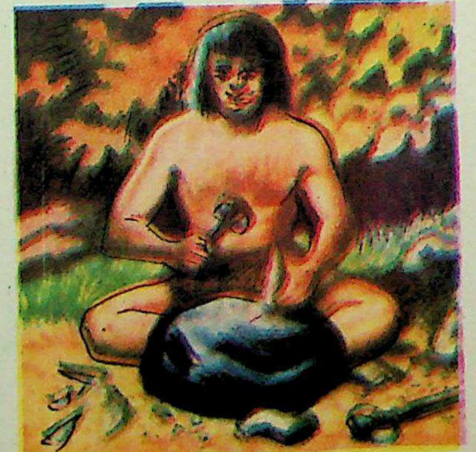
जब हिम उत्तर से दक्षिण की ओर बढ़ता था तब वहां



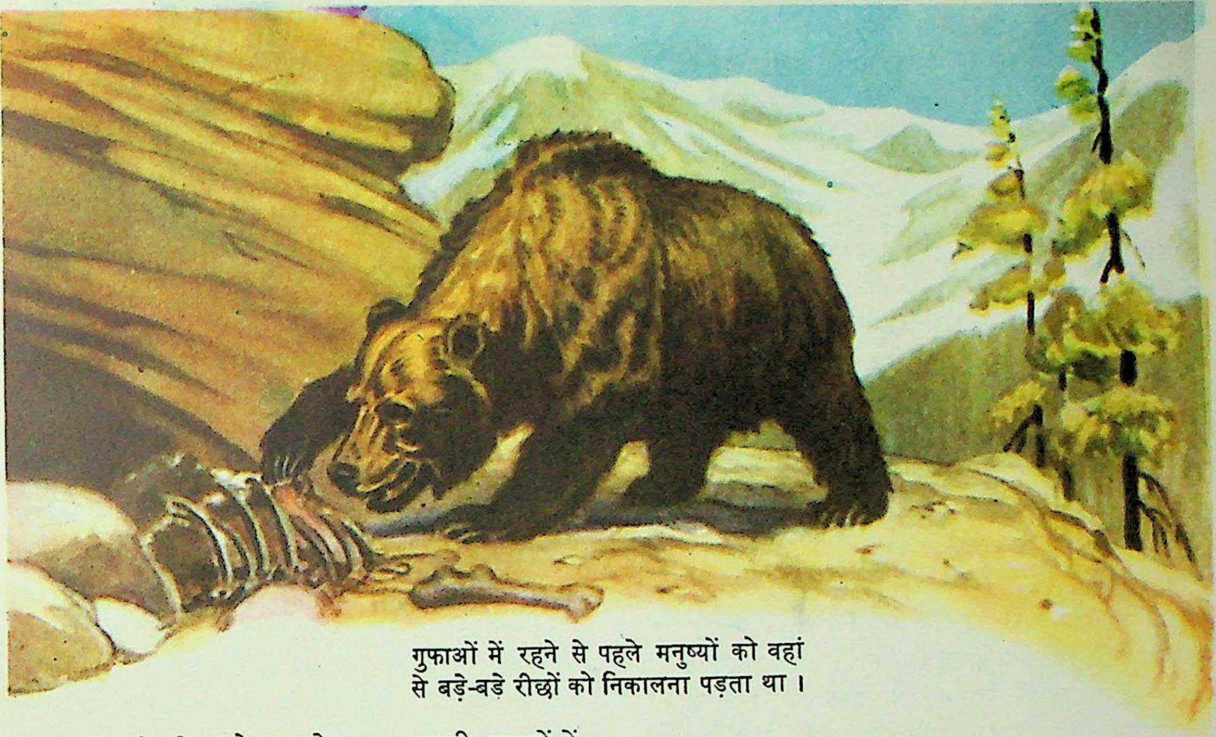
औरतें जानवरों के चमड़ों को कमाती थीं।



मनुष्य जंगली जानवरों से अपनी रक्षा करते थे।



गुहावासी मानव पत्थर के औज़ार बनाते थे।


गुफाओं में रहने से पहले मनुष्यों को वहां से बड़े-बड़े रीछों को निकालना पड़ता था।

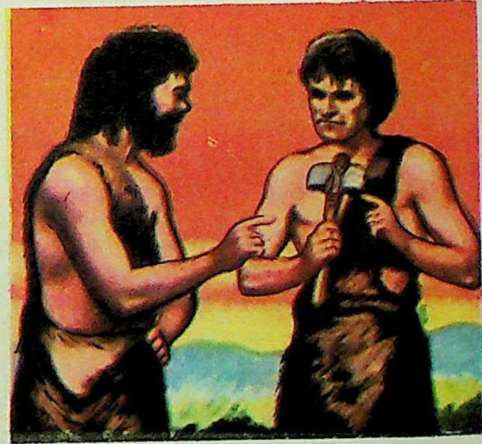
की ठंड बढ़ जाती थी। लोग पहले बाहर खुली जगहों में रहते थे। शायद उन्होंने पेड़ों की टहनियों को जैसे-तैसे छाकर अपने रहने के लिए स्थान बना लिए थे। लेकिन ठंड के कारण उन्हें उससे अच्छी जगहों की ज़रूरत थी। वे गुफाओं में चले गए।

खुद गुफा में रहने के लिए उन्हें गुफाओं में रहनेवाले भयानक रीछों और दूसरे जानवरों को निकालना पड़ता था। वे इन जानवरों को निकाल भगाने में कुछ तो इसलिए सफल हुए कि वे आग बनाना जानते थे। किसी जानवर को भगाने के लिए जलते हुए लुकाठे बहुत काम के सिद्ध होते थे। इसके अतिरिक्त उनके पास पत्थर की बनी कुल्हा-ड़ियां और छुरियां भी थीं।

प्रारंभिक गुहावासी मनुष्यों के आगे भोजन प्राप्त करने का एक ही उपाय था, और वह था शिकार। जब वे किसी जानवर का शिकार करते थे तो उसे उठाकर अपनी गुफा में ले आते थे और पकाते थे। हड्डियों को वे एक किनारे फेंक देते थे। जब उनकी आग के आस-पास बहुत अधिक राख हो जाती थी, तो वे राख को भी हटाकर उससे हड्डियों को ढक देते थे। कभी-कभी ऐसा भी होता था कि राख की ढेरी में उनके हथियार खो जाते थे। इन गुफाओं में छूटी हुई राख की ढेरियों की खुदाई करके वैज्ञानिकों ने उनके बारे में अनेक बातों का पता लगाया है।

जब गुहावासी मनुष्यों को अपनी गुफाओं में रहते हुए हज़ारों वर्ष बीत गए तब बर्फ पिघलने लगी। इसके बाद दक्षिण की ओर से एक नई जाति के लोग घुस आए।

ये बाद के गुहावासी मानव लम्बे और तगड़े थे। वे आज के मनुष्यों से बहुत मिलते-जुलते थे। उनका मस्तिष्क


शब्द-शब्द करके धीरे-धीरे भाषा विकसित हुई।


गुहावासी मनुष्यों द्वारा बनाया गया एक चित्र

अधिक अच्छा था—उनकी खोपड़ी की बनावट को देखकर ही यह अनुमान लगाया गया है। वे अपने कुछ हथियार हड्डियों से बनाते थे, लेकिन उनके भी अधिकतर हथियार पत्थर के ही होते थे। उनको भी अपने भोजन के लिए शिकार का ही सहारा लेना पड़ता था। उन्हें पशु पालने या खेती करने का तरीका मालूम नहीं था। वे बर्तन नहीं बनाते थे। उनके वस्त्र सिर्फ जानवरों की खाल के बने होते थे।

लेकिन एक बात में वे आदिम गुहावासियों से बहुत आगे थे। वे अपनी गुफाओं की दीवारों पर जानवरों और दूसरी चीज़ों के बहुत सुन्दर चित्र बनाते थे। इन चित्रों को वे रंगते भी थे। इनमें से कुछ ऐसे जानवरों के चित्र भी हैं, जो बहुत लम्बे समय से उस क्षेत्र में नहीं पाए जाते थे। इन जानवरों में मैमथ और अरना भैंसा आदि प्रमुख हैं।

जिन जगहों पर चित्र बने हैं, उनमें से कुछ तक पहुंचने के लिए बहुत संकरे द्वारों से रेंगकर जाना पड़ता है। अनेक चित्र भीतरी छतों पर बने हुए हैं।

ये गुफाएं इतनी अंधेरी हैं कि इन्हें देखकर ऐसा लगता है कि गुहावासी मानवों के पास किसी तरह की रोशनी अवश्य रही होगी। शायद वे सूखी लकड़ी और सेवार वगैरह जलाते थे।

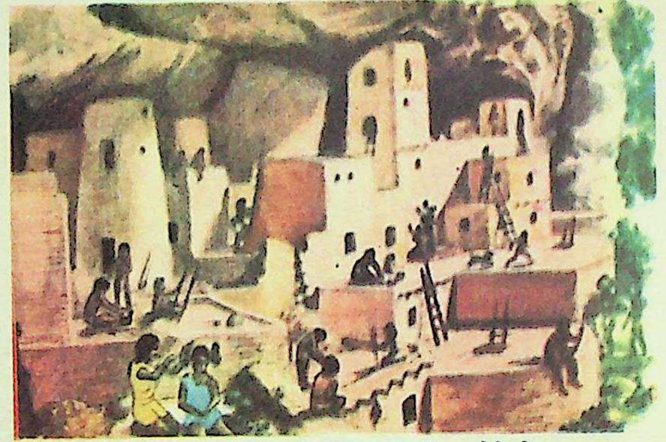
गुहावासी मानव जानवरों की बहुत सुन्दर मूर्तियां भी गढ़ते थे। इनमें से कुछ तो इतनी अच्छी हैं कि उन्हें बनाने पर आज के भी कलाकार गर्व अनुभव कर सकते हैं। अनेक हथियारों की मूठें जानवरों की शक्ल की हुआ करती थीं।

जिस युग में ये गुहावासी मनुष्य रहते थे, उसे अक्सर प्राचीन प्रस्तर युग कहा जाता है। यह नाम उस युग के मनुष्यों के प्रयोग में आनेवाले भोंडे हथियारों के कारण दिया गया है, जो पत्थर के बने होते थे।

बर्फ के पिघल जाने पर लोग जीवन को सुखी बनाने के लिए अधिक अच्छी तरह काम कर सकते थे। इस समय कुछ दूसरे लोग भी आकर यूरोप के गुहावासी मनुष्यों में मिल-जुल गए। इसके बाद और अच्छे हथियार विकसित हुए और गुफाओं से अधिक आरामदेह मकान बनाए जाने लगे। इसके बाद नये प्रस्तर युग का आरम्भ हुआ।

मानव, चट्टानवासी (CLIFF DWELLERS) : संयुक्त राज्य अमरीका के दक्षिण-पश्चिमी भाग में आदिवासियों के गांवों के बहुत-से खंडहर मिलते हैं। एक चित्र यहां दिया जा रहा है। कुछ खंडहर चट्टानों की ढलानों पर, कुछ गुफाओं में और कुछ पहाड़ियों की तलहटी में हैं। हम इन गांवों के निर्माताओं को चट्टानवासी कहते हैं।

यहां के निवासियों को गोरों ने कभी नहीं देखा। वे गोरे लोगों के आने के पहले ही इन गांवों को छोड़ गए थे। हम अब जानते हैं कि इस क्षेत्र में कोई 650 वर्ष पहले



चट्टानवासियों के गांव बहुत सुरक्षित होते थे।

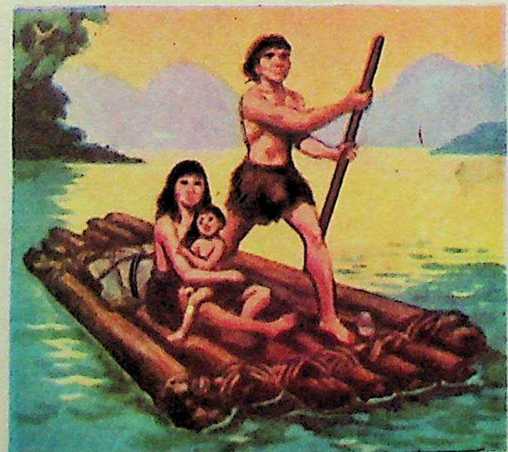
निरंतर 30 वर्ष तक वर्षा नहीं हुई थी। शायद इसीलिए उन्हें अपनी बस्तियां छोड़नी पड़ी हों।

उनकी स्त्रियां टोकरियां, मिट्टी के बर्तन, और रूई के कपड़े बनाती थीं। सीपियों और फीरोज़ों के गहने बनाए जाते थे। पुराने घर कच्ची ईंटों के बने हैं। पिछली इमारतों में मिट्टी से पत्थर की चिनाई की गई है। कुछ दीवारों पर पलस्तर है। कुछ घरों में चित्र भी बने हैं।

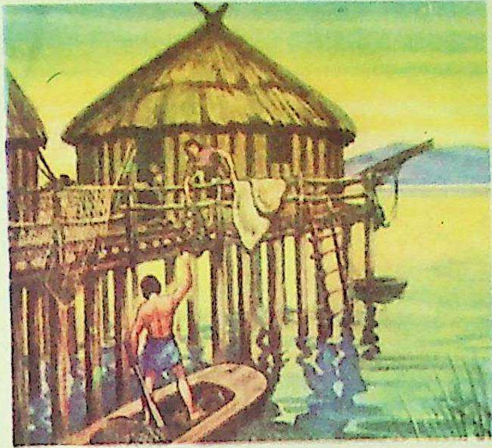
बड़े मकानों में कई परिवार रहते थे। एक परिवार को एक कमरा मिलता था। कुछ इमारतें भंडार-घर का और कुछ सभा-भवन का काम देती थीं। कमरे चट्टानों को खोदकर भी बनाए जाते थे। यहां लोग आंधी-पानी और शत्रुओं से सुरक्षित रहते थे।

मानव, झीलवासी (LAKE DWELLERS) : गुहावासी मानवों के युग को प्राचीन प्रस्तर युग कहते हैं। उसके बाद नव प्रस्तर युग आया। नव प्रस्तर युग के लोगों में ही स्विट्ज़रलैंड के झीलवासी लोग थे।

झीलवासी लोग आज से 4,500 वर्ष पहले रहा करते थे।



सम्भवतः झीलवासी लट्ठों के बजरे का प्रयोग करते थे।



झीलवासी छोटे-छोटे गांवों में रहते थे।

इनके घर गहरी झीलों के तटों पर हुआ करते थे। अपने घरों की नींव ये तट के कीचड़ में खम्बे गाड़कर तैयार करते थे। इस तरह के घरों के छोटे-छोटे गांव बसे होते थे। झील-वासी मनुष्यों ने गिरोह बनाकर रहना सीख लिया था।

नव प्रस्तर युग के ये लोग गुहावासी मानवों की भांति ही अपने हथियार पत्थर के बनाया करते थे। लेकिन इनके हथियार चिकने किए हुए पत्थर के होते थे। ये अपने हथियारों को पत्थर या और किसी दूसरी चीज़ पर घिसकर चिकना करते थे।

झीलवासी लोग कई बातों में गुहावासी मनुष्यों से आगे थे। भूमध्यसागर के आस-पास रहनेवाले मनुष्यों से इन्होंने कई नई बातें सीख ली थीं। इनके पास धनुष और बाण थे। ये बर्तन बनाना जानते थे। ये कपड़ा बनाना भी जान गए थे और उन्हें सीकर पोशाक तैयार कर लेते थे। ये लोग मछलियां पकड़ने के लिए जाल बना लेते थे।

सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि झीलवासी लोग अपने लिए पौधे लगाना और पशु पालना भी सीख गए थे। अपने छोटे-छोटे खेतों में वे जौ, बाजरा और पाट बोते थे। उनके पालतू जानवरों में सूअर, बकरी, भेड़, गाय-बैल और कुत्ते थे।

प्राचीन काल के इन लोगों को अपना अधिकांश समय शिकार करने में नहीं बिताना पड़ता था। अब इन्हें कुछ समय जीवन को अधिक आसान और खुशहाल बनाने के बारे में सोचने के लिए भी मिल जाता था। ये सभ्यता के मार्ग पर काफी आगे बढ़ गए थे। जहां तक वैज्ञानिकों को मालूम है, झीलवासी लोग कई शताब्दियों तक शान्ति-पूर्वक जीवन बिताते रहे।

वैज्ञानिकों को 100 वर्ष से कुछ ही पहले स्विट्ज़रलैंड के झीलवासी मनुष्यों के बारे में पता चला। सन् 1854 में सबसे पहले भग्नावशेष ज़्यूरिख नगर के पास एक झील में मिले।

यद्यपि स्विट्ज़रलैंड के झीलवाली ही सबसे अधिक प्रसिद्ध हैं, लेकिन यूरोप के अन्य कई भागों और दूसरे महाद्वीपों में भी, विभिन्न समयों में, झीलवासी मनुष्य रहे हैं। आज भी कुछ आदिम मनुष्य झीलवासी हैं।

मानव, टीले बनानेवाले (MOUND BUILDERS) :

उत्तरी अमरीका के पूर्वी अर्धभाग में मानव-निर्मित हज़ारों टीले जहां-तहां विद्यमान हैं। इनमें से कई टीले सपाट या गोल शिखर वाली छोटी-छोटी पहाड़ियों जैसे दिखाई देते हैं, और कई चीते, सांप, हिरन, भेड़िये, जंगली सांड आदि किसी जीव के आकार के बने हैं।

प्रायः सभी टीले कब्रिस्तानी टीले हैं, जिनमें से कई अस्थिपंजर प्राप्त हुए हैं। उनमें से उन टीलों को बनाने-वाले लोगों की अन्य असंख्य चीज़ें भी प्राप्त हुई हैं, जिनमें कई प्रकार के औज़ार, छोटी मूर्तियां और मिट्टी के बर्तनों के टुकड़े भी हैं।

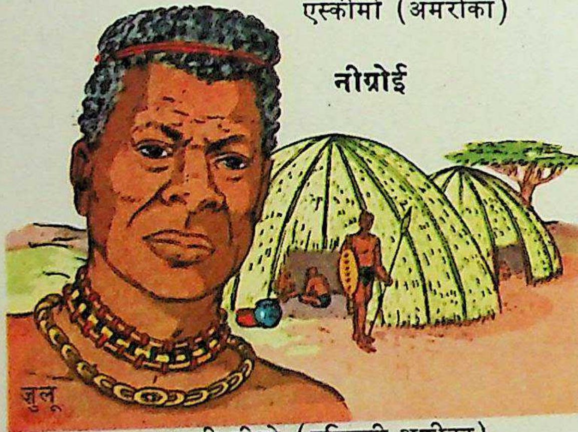
टीले छः मंज़िली इमारतों जितने ऊंचे होते थे।



स्त्रियां टीलों पर टोकरियों में मिट्टी ले जाती थीं।



सिनिक (चीन और जापान)
मंगोल (मध्य एशिया)
अमरीकी आदिवासी (अमरीका)
एस्कीमो (अमरीका)



असली नीग्रो (पश्चिमी अफ्रीका)
बण्टू (दक्षिणी अफ्रीका)
बुशमैन हॉटेनटॉट (दक्षिणी अफ्रीका)
मलनेशियाई (प्रशान्त के द्वीप)



नार्डिक (उत्तरपश्चिमी यूरोप)
अल्पाइन (मध्य यूरोप)
भूमध्यसागरीय (दक्षिणी यूरोप)
भारतीय द्रविड़ (भारत)
अरब (दक्षिणपश्चिमी एशिया)

पहले वैज्ञानिकों का यह विचार था कि ये सब टीले अमरीकी आदिवासियों के एक वर्ग द्वारा बनाए गए थे। किन्तु अब पता चला है कि इनका निर्माण अनेकों विभिन्न वर्गों के लोगों ने और अलग-अलग कालों में किया। इनमें से कुछ तो ईसा से भी पहले के हैं।

बड़ी-बड़ी मशीनों से मिट्टी के ऊंचे-ऊंचे टीले बनाना कठिन नहीं है, किन्तु उन लोगों के पास मशीनें कहां थीं। उन्हें तो टोकरियों में भर-भरकर मिट्टी ले जानी पड़ती थी। कितना मन्द और कितना कठोर रहा होगा वह कार्य!

टीलों में प्राप्त उपकरणों और मिट्टी के बर्तनों से यह मालूम होता है कि टीलों के निर्माताओं में से कुछ अत्यन्त सभ्य रहे होंगे। उपलब्ध आभूषणों से पता चलता है कि वे घरों में टिकनेवाले लोग नहीं थे, क्योंकि वहां मैक्सिको की खाड़ी की सीपियां और मोती भी प्राप्त हुए हैं। सुपीरियर झील का तांबा और चांदी, पश्चिमी पहाड़ियों के रीछों के दांत और उत्तरी अमरीका के विभिन्न प्रदेशों के सुन्दर पाषाण भी वहां मिले हैं।

कोई नहीं जानता कि इन टीलों के निर्माताओं का क्या हुआ? शायद वे सब के सब चेचक जैसी किसी महामारी के शिकार हो गए, या शायद वे इतने अधिक शांत प्रकृति के थे कि किसी शक्तिशाली शत्रु के चढ़ आने पर वे उसके सामने न टिक सके। शायद यह रहस्य सदा रहस्य ही बना रहेगा।

मानव-जातियां (RACES OF MANKIND) : वैज्ञानिक दुनिया के हर विशेष प्रकार के जीव को एक जाति (स्पीशीज़) कहते हैं। एक ही आकार-प्रकार होते हुए भी जो नर और मादा आपस में सन्तानोत्पत्ति नहीं कर सकते, वे एक जाति के नहीं हो सकते। इस तरह वैज्ञानिकों ने हर जाति का वैज्ञानिक नाम रख दिया है। कभी-कभी जीव-जातियों के नाम के लिए लैटिन शब्दों का प्रयोग किया जाता है।

संसार के समस्त मानव एक ही जाति के हैं। अमरीका का मूलनिवासी स्वीडन के गोरे निवासी की तुलना में बड़ा भिन्न होता है। गरम देशों के निवासी शीत प्रदेशों के निवासियों से काफी भिन्न होते हैं। लेकिन, वैसे सभी मनुष्यों में काफी समानताएं पाई जाती हैं, बाहरी रूप-रंग भले ही भिन्न हो। सारी मानव-जाति के हर व्यक्ति को वैज्ञानिक 'होमो सेपियन्स' कहते हैं।

शरीर की बनावट में सभी व्यक्ति प्रायः एक-से होते हैं, लेकिन कुछ दूसरों से अधिक मिलते हैं और कुछ कम। अमरीका के मूलनिवासी रेड इण्डियन, उत्तरी ध्रुव-क्षेत्र के एस्कीमो लोगों से अधिक मिलते हैं। वे अफ्रीकी बौनों से नहीं मिलते। अरबवासी भारतीयों से अधिक और चीनियों से कम मिलते हैं। विभिन्न जातियों के बीच

समानताओं और भिन्नताओं के आधार पर वैज्ञानिकों ने विभिन्न मानव-जातियों का वर्गीकरण किया है।

'जातिसमूह' (रेसेज़) बड़ा व्यापक शब्द है। जब यह कहा जाता है कि अमुक व्यक्ति अमुक जातिसमूह का है तो इसका यह मतलब होता है कि उसमें कुछ विशेषताएं हैं। ये विशेषताएं मोटे तौर पर रूप-रंग की होती हैं और उस व्यक्ति के जातिसमूह के अन्य लोगों में भी पाई जाती हैं। कभी-कभी इन विशेषताओं के आधार पर किसी व्यक्ति-विशेष का जातिसमूह निश्चित करना कठिन हो जाता है।

कुछ जातिसमूह दूसरों की तुलना में अधिक निकट होते हैं। मनुष्यों के तीन बड़े जातिसमूह हैं। सामान्य भाषा में इन्हें गोरे, काले और पीले कहा जाता है। ये नाम इनकी चमड़ी के रंग पर दिए गए हैं। कुछ जातिसमूह के लोग ऐसे हैं जिनका वर्ण गहरा भूरा होता है। कुछ सांवले होते हैं। पीली चमड़ी वालों में कुछ लाल-भूरा रंग लिए होते हैं। इन तीनों के वैज्ञानिक नाम हैं: कॉकेशियाई, नीग्रोइड और मंगोलीय। जातिसमूहों का नामकरण और वर्गीकरण करने में वैज्ञानिक चमड़ी के रंग का ही नहीं, बल्कि इस बात का भी ध्यान रखते हैं कि खोपड़ी की बनावट कैसी है और रक्त किस प्रकार का है।

साथ के चित्र में कुछ जातिसमूहों के व्यक्तियों के चित्र हैं। बहुत-से लोग स्वयं यह नहीं जानते कि वे किस जातिसमूह के हैं। अगर गोरे रंग वाले व्यक्ति से पूछा जाए कि वह किस जातिसमूह का है तो बहुत सम्भव है कि वह अपने को 'श्वेत' बताए। लेकिन वह वास्तव में गोरे जातिसमूह की एक विशेष जाति का है, जिसे हम 'नार्डिक' कहेंगे।

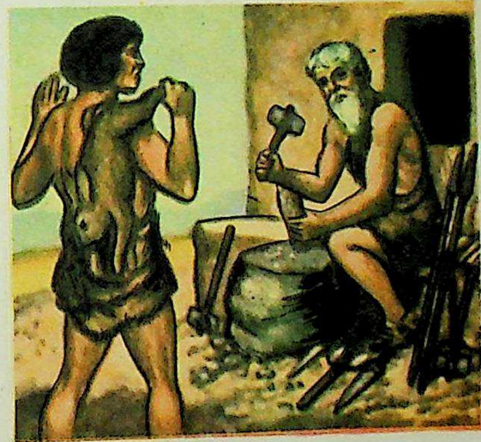
जातिसमूहों की सूची में जर्मन, ब्राजीलियन, स्वीडिश, या कनाडियन जैसे नाम नहीं मिलेंगे। इस तरह के नामों से केवल व्यक्ति की राष्ट्रीयता का पता लगता है, उसके वैज्ञानिक जातिसमूह का नहीं। सच तो यह है कि एक ही राष्ट्रीयता के लोगों में भी कई जातिसमूहों के लोग हो सकते हैं।

कुछ लोग जातिसमूह और धर्म दोनों को मिलाने के कारण उलझन में पड़ जाते हैं। कुछ समझते हैं कि मुसलमान कोई विशेष जातिसमूह है। लेकिन ऐसी बात नहीं है। मुसलमान नाम तो एक विशेष धर्म मानने के कारण पड़ा है। अरबवासियों में प्रायः सभी मुसलमान हैं। लेकिन कुछ ऐसे भी हैं जो इस्लाम धर्म नहीं मानते। कुछ ऐसे भी मुसलमान हैं जो अरब नहीं हैं।

जब हिटलर जर्मनी का शासक था तो वह अपने देश को शुद्ध आर्यों का राष्ट्र बनाना चाहता था। यह बात बड़ी मूर्खतापूर्ण थी, क्योंकि आर्य किसी जातिसमूह का नाम नहीं है। यह तो भाषाओं के एक समूह और उन लोगों का नाम है जो ये भाषाएं बोलते हैं। आजकल कोई ऐसा जातिसमूह नहीं है जो खून की शुद्धता का दावा कर सके। जातिसमूहों का एक-दूसरे में काफी मिश्रण हुआ है।

वैज्ञानिक कहते हैं कि अपनी जाति के बड़प्पन की शेखी बघारने का कोई हक़दार नहीं है। वे यह भी कहते हैं कि कोई जाति दूसरी से अधिक प्रतिभाशाली नहीं है। अगर समान अवसर मिले तो सभी जातियों के लोग एक-सा विकास कर सकते हैं। (देखें: मानव-विज्ञान)

मानव-विज्ञान (ANTHROPOLOGY): यह विज्ञान की उस शाखा का नाम है जिसमें मानव-समाज के विविध अंगों का अध्ययन किया जाता है। मानव-विज्ञान में इस तरह के प्रश्नों का अध्ययन किया जाता है: प्रारंभिक मनुष्य कहां, कब और किस तरह रहा करता था? प्रारंभिक मनुष्य का रूप, रंग तथा आकार कैसा था? मनुष्य की आज कितनी जातियां हैं? इन जातियों में आपस में क्या भेद है? आदि, आदि।

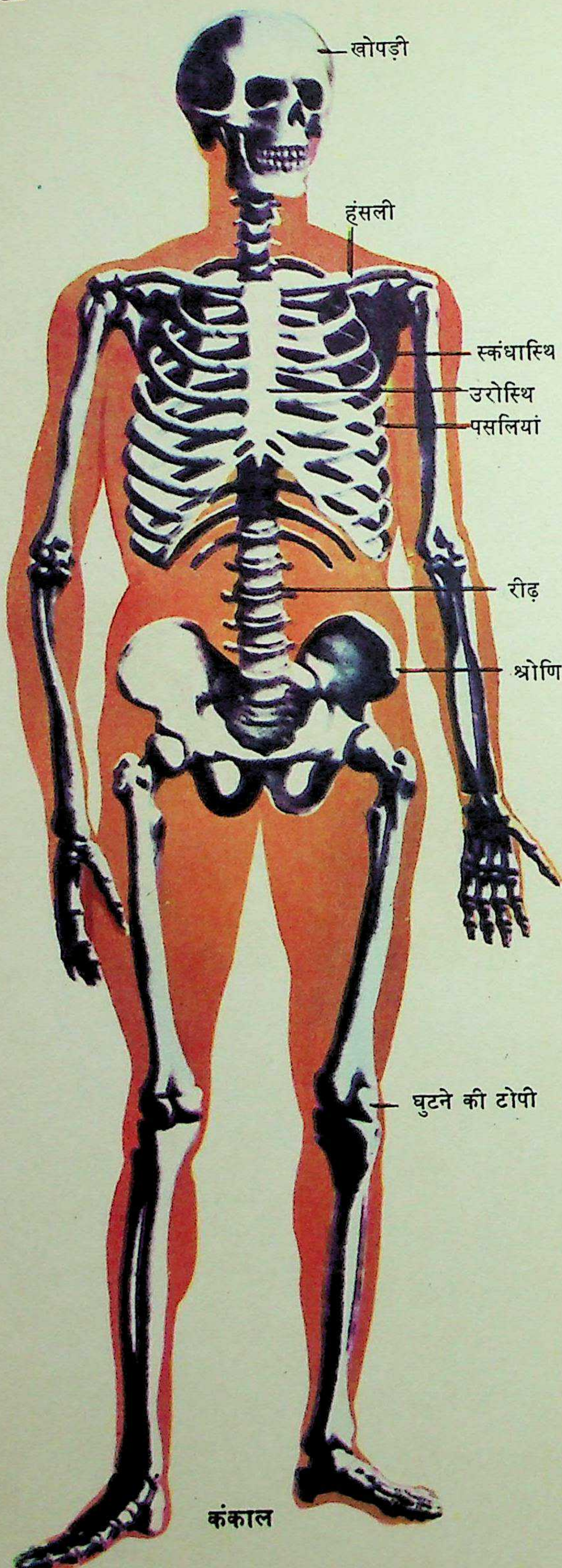


पुराने हथियारों से उस युग के मनुष्यों के रहन-सहन का पता चलता है।

मानव-समाज के अध्ययन में मनुष्य-जाति की विविध वर्तमान तथा भूतकालीन संस्कृतियों का अध्ययन भी आ जाता है। किसी जाति के रहन-सहन के ढंग को ही उसकी संस्कृति कहते हैं। संस्कृति के अध्ययन में उस जाति के घर, वेशभूषा, खान-पान, औज़ार, भाषा, नाच-गान, लोक-कथाए, लोकगीत, रीति-रिवाज, त्यौहार, कला, धर्म, प्रथा और कानून आदि सभी का अध्ययन आ जाता है।

मानव-विज्ञान की अनेक शाखाएं हैं। पुरातत्त्व (Archaeology) इन्हीं में से एक है, जिसमें प्राचीन काल के अवशेषों का अध्ययन किया जाता है। (देखें: मानव-जातियां)

मानव-शरीर (HUMAN BODY): हमारा शरीर एक बड़ी आश्चर्यजनक मशीन है। यह मनुष्य द्वारा आज तक बनाई गई सभी मशीनों से कहीं अधिक आश्चर्यजनक है। लेकिन हमारा शरीर किस चीज़ से बना है? हम



लोग कहते हैं कि हमारा शरीर हड्डी, मांस, रक्त आदि से बना है। लेकिन यह प्रश्न का ठीक उत्तर नहीं हुआ। हम पूछ सकते हैं कि हड्डी, मांस, रक्त आदि किस चीज़ से बने हैं? वास्तव में हमारा शरीर, संसार की अन्य जीवित या निर्जीव वस्तुओं की भांति, कुछ तत्त्वों से बना है। ये तत्त्व इस प्रकार हैं:

कैल्सियम	हाइड्रोजन	ऑक्सीजन
कार्बन	आयोडीन	पोटाशियम
क्लोरिन	लोहा	फ़ॉस्फ़ोरस
कोबाल्ट	मैग्नेशियम	सोडियम
तांबा	मैंगानीज़	गंधक
फ्लोरिन	नाइट्रोजन	जस्ता

लेकिन केवल तत्त्वों के नाम जानने से ही हमें यह नहीं मालूम हो जाता कि हमारा शरीर कैसे बना है। जैसे हमें यह मालूम है कि रेल का इंजन लोहे का बना होता है, फिर भी केवल इतने से हम यह नहीं जान सकते कि उसके पुर्ज़े कैसे होते हैं और वे किस तरह काम करते हैं। इसके लिए हमें इंजन की बनावट या रचना के बारे में जानना पड़ता है। इसी तरह हमारे लिए अपने शरीर की रचना के बारे में जानना भी ज़रूरी है।

जिस प्रकार कोई मकान हज़ारों छोटी-छोटी ईंटों से बना होता है, उसी प्रकार हमारा शरीर लाखों छोटी-छोटी कोशिकाओं से बना है। कोशिकाएं जीवद्रव्य नामक एक चीज़ से बनी होती हैं। जीवद्रव्य एक बड़ी रहस्यमय वस्तु है। वैज्ञानिकों ने यह तो पता लगा लिया है कि जीवद्रव्य किन तत्त्वों का बना होता है, लेकिन वे इन तत्त्वों को मिलाकर प्रयोगशाला में जीवद्रव्य का निर्माण नहीं कर सकते।

हमारा शरीर असंख्य कोशिकाओं से बना है। ये कोशिकाएं इतनी छोटी होती हैं कि इन्हें सूक्ष्मदर्शी के बिना देख पाना असम्भव है। सभी कोशिकाएं एक-जैसी नहीं होतीं। कोशिकाओं की कई किस्में हैं। हमारी पेशियां हड्डियों से बहुत भिन्न होती हैं, क्योंकि वे भिन्न प्रकार की कोशिकाओं से बनी हैं। इसी प्रकार हमारा मस्तिष्क हमारे आमाशय से भिन्न है, क्योंकि वह भिन्न प्रकार की कोशिकाओं से बना है।

हमारे शरीर में हड्डियों से एक ऐसा ढांचा बना है जो

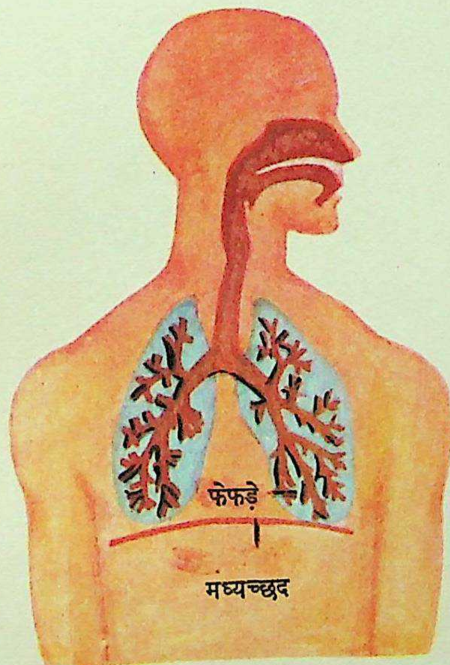




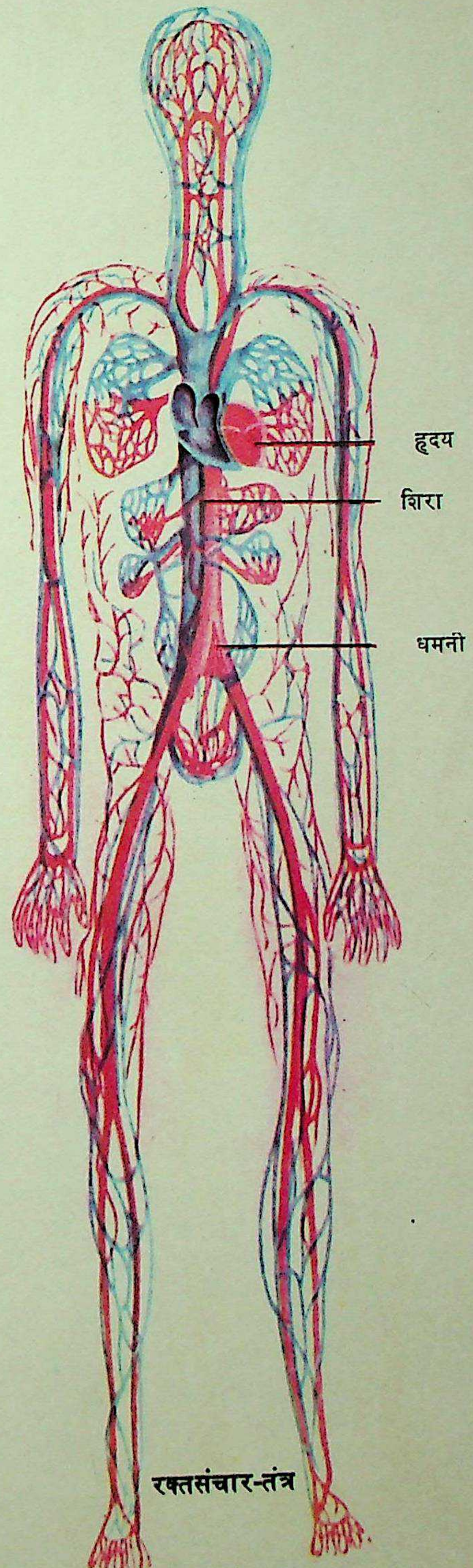
शरीर को संभाले रखता है और हमें एक रूप प्रदान करता है। हड्डियां हमारे शरीर के भीतर के कोमल अंगों की रक्षा भी करती हैं।

हमारी मांस-पेशियां हड्डियों से बंधी हुई हैं। पेशियों के कारण ही हम हिलडुल सकते हैं। अगर पेशियां न होतीं तो हम लकड़ी के पुतले की तरह एक जगह स्थिर रहते और कोई काम नहीं कर पाते। कुछ ऐसी पेशियां भी हैं जो हड्डियों से बंधी हुई नहीं हैं। हमारा हृदय एक ऐसी ही पेशी है। इसी प्रकार आमाशय की पेशी भी किसी हड्डी से नहीं बंधी है।

हमारा हृदय एक तरह के पंप का काम करता है और रक्त को शरीर के विभिन्न अंगों तक भेजता है। रक्त हमारे शरीर के सभी अंगों को भोजन, जल और ऑक्सीजन पहुंचाता है और वहां से अनुपयोगी पदार्थों को बाहर लाता है। रक्त हमारे शरीर के लिए इतना महत्त्वपूर्ण है कि इसके बिना हमारा कोई अंग काम नहीं कर सकता। इसीलिए हृदय हमारे जीवन के प्रत्येक दिन के प्रत्येक क्षण रक्त पम्प करता रहता है। रक्त तीन प्रकार की नलियों के ज़रिये हमारे शरीर में घूमता है। ये नलियां हैं : धमनियां, शिराएं और केशिकाएं। धमनियां (Arteries) हृदय से शुद्ध रक्त ले जाती हैं। शिराएं (Veins) अशुद्ध रक्त हृदय में लाती हैं। केशिकाएं (Capillaries) धमनियों और शिराओं को जोड़ती हैं। ऑक्सीजन प्राप्त करने के लिए हमें सबसे पहले अपने शरीर में हवा पहुंचानी पड़ती है। यह काम हम सांस द्वारा हवा खींचकर करते हैं।

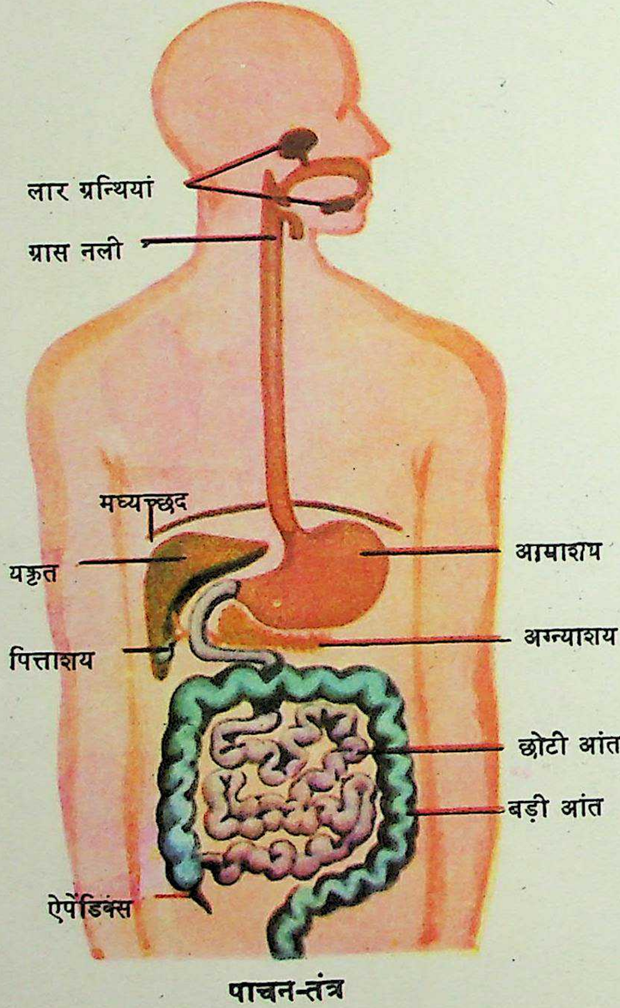


श्वास-तंत्र



रक्तसंचार-तंत्र

हमारे शरीर में हवा पम्प करने का काम फेफड़े करते हैं। फेफड़े नलियों और छोटी-छोटी थैलियों से बने हैं। नाक, कठ, वायुनलिका और श्वासनलियों के ज़रिये हवा फेफड़ों तक पहुंचती है। सचाई यह है कि फेफड़े खुद हवा



पाचन-तंत्र

को पम्प करने का काम नहीं करते। हवा को पम्प करने की क्रिया मध्यच्छद (Diaphragm) नामक एक पेशी की मोटी दीवार और पसलियों के संचालन से होती है।

शरीर के भीतर की दूषित वायु कार्बन डाइऑक्साइड रक्त के साथ फेफड़ों में आ जाती है और जब हम सांस छोड़ते हैं, तब बाहर निकल जाती है।

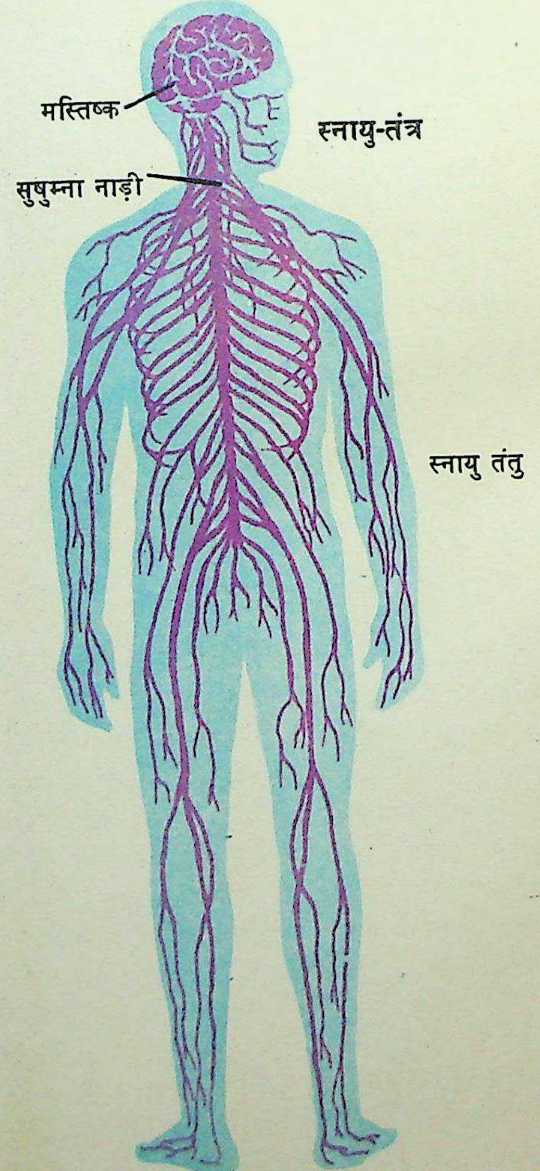
हमारा शरीर अपना काम करते समय बहुत-सा कूड़ा-कर्कट या अवशिष्ट द्रव्य भी उत्पन्न करता है। रक्त इस गन्दगी को बटोरकर अलग कर देता है। इस गन्दगी को दूर करने का अधिकांश काम गुर्दे करते हैं।

हम जानते हैं कि शरीर को भोजन की आवश्यकता होती है। लेकिन शरीर भोजन का उपयोग तभी कर सकता है जब भोजन पच जाता है। भोजन का पाचन एक पेचीदा काम है। हमारे शरीर के कई अंग भोजन को पचाकर उस रूप में बदलने में मदद देते हैं जिस रूप में वह शरीर के काम आ सकता है।

स्नायु या वातनाड़ियां हमारे शरीर के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। हमारा स्नायु-तंत्र स्नायुओं, सुषुम्ना नाड़ी और मस्तिष्क से मिलकर बना है। टेलीफोन के तारों की भांति स्नायुओं का जाल हमारे पूरे शरीर में फैला हुआ है। स्नायुओं के ज़रिये ही हर प्रकार के संदेश हमारे मस्तिष्क तक पहुंचते हैं। हम स्नायुओं की सहायता से ही चीज़ों को देखते हैं, सुनते हैं, स्वाद चखते हैं, सूंघते हैं और महसूस करते हैं।

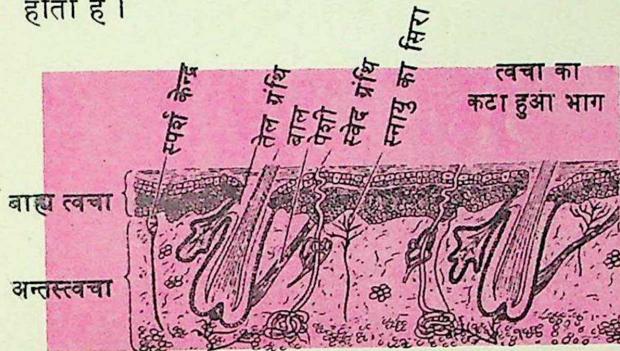
इसके अलावा, हमारे शरीर में बहुत-सी ग्रंथियां (Glands) भी हैं, जो हमारे लिए बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। ये ग्रंथियां कई प्रकार के रासायनिक द्रव्य या रस उत्पन्न करती हैं। इन रसों की सहायता से ही हमारे शरीर के विभिन्न अंग अपना काम भली भांति कर पाते हैं।

अगर हमारे शरीर के भीतरी अंग बाहर से भी दिखाई



स्नायु-तंत्र

देते होते तो हमारा रूप बड़ा विचित्र होता और हम देखने में काफी भद्दे नज़र आते। लेकिन ऐसा नहीं है। हमारे भीतरी अंग बाहर से नज़र नहीं आते। इसका कारण यह है कि हमारे पूरे शरीर पर त्वचा या चमड़ी मढ़ी हुई है। त्वचा के कारण हमारे शरीर का तापमान भी ठीक बना रहता है। त्वचा हमारे शरीर की कुछ गन्दगी को भी बाहर निकालती है। हमारी त्वचा में कई प्रकार की कोशिकाएं होती हैं।



मनुष्य द्वारा निर्मित संसार की किसी भी मशीन के पुर्ज़े इतने बढ़िया और इतने आश्चर्यजनक नहीं हैं जितने कि हमारे शरीर के आंख, हृदय या मस्तिष्क जैसे कुछ अंग हैं। इसके अलावा, कुछ अन्य बातों में भी हमारा शरीर किसी मशीन से कहीं अधिक बढ़कर है। हमारा शरीर धीरे-धीरे विकास करता है—छोटे से बड़ा होता है। अगर कहीं चोट लग जाती है या कुछ टूट-फूट हो जाती है तो शरीर अपने-आप उसे ठीक कर लेता है। क्या आप रेल के किसी ऐसे इंजन की कल्पना कर सकते हैं जो अपनी टूट-फूट की मरम्मत खुद कर लेता हो। अपने निर्माण के समय वह जितना बड़ा था उससे बढ़कर बीस गुना बड़ा हो सकता हो और नन्हे-मुन्ने इंजनों को पैदा भी कर सकता हो। लेकिन हमारा शरीर यह सब करता है।

प्रत्येक मनुष्य अपना जीवन एक बहुत छोटी-सी कोशिका के रूप में आरम्भ करता है। यह एक विशेष प्रकार की कोशिका होती है। यह दो कोशिकाओं के मेल से बनती है। इनमें से एक कोशिका शुक्राणु कहलाती है जो पुरुष के अंडकोश नामक अंगों में बनती है। दूसरी कोशिका डिम्बाणु कहलाती है जो स्त्री के डिम्बग्रंथि नामक अंग में बनती है। शुक्राणु माता के शरीर में प्रवेश करके डिम्बाणु से मिलता है। इसके बाद डिम्बाणु बढ़ने लगता है। कुछ समय बाद यह माता के दूसरे अंग में चला जाता है, जिसे गर्भाशय (Uterus) कहते हैं। जन्म होने के पहले यहीं बच्चे का विकास होता है।

मार्जरीन (MARGARINE) : देखने में मार्जरीन मक्खन-जैसा ही लगता है और इसका स्वाद भी बहुत-कुछ मक्खन-जैसा ही होता है। मार्जरीन मक्खन की तरह क्रीम से नहीं बनता। यह जानवरों की चर्बी या वसा से तैयार होता है।

मार्जरीन मक्खन की अपेक्षा अधिक नया खाद्य है। आज से सौ वर्ष पूर्व सबसे पहले यह फ्रांस में तैयार हुआ था। फ्रांस में उस समय खाद्य पदार्थों की बहुत कमी पड़ गई थी। फ्रांसीसी सरकार ने उस व्यक्ति को पुरस्कार देने की घोषणा की जो कोई ऐसी चीज़ तैयार कर सके जो मक्खन का स्थान ले सके। एक फ्रांसीसी वैज्ञानिक ने मार्जरीन का आविष्कार करके इस पुरस्कार को जीता। इस वैज्ञानिक का नाम था मेग मोरिज़। आज मार्जरीन तैयार करने के लगभग 1,200 तरीके निकल गए हैं। अब अधिकतर मार्जरीन तेलों से तैयार किया जाता है।

मिठाई की गोलियां (CANDY) : लैमन ड्राप, टॉफ़ी और इसी तरह की दूसरी मिठाई की गोलियां बच्चों को बहुत ही प्रिय हैं। इन्हें मुंह में रखकर देर तक धीरे-धीरे चूसने में वाकई मज़ा आता है। ये गोलियां आजकल तरह-तरह के आकारों और रंगों में बड़े सुन्दर डिब्बों में मिलती हैं।

पहले खजूर, अंजीर और किसी मेवा को एकसाथ कूटकर और शहद में मिलाकर मिठाई की गोलियां बनाई जाती थीं। लेकिन अब ये चीनी या मिश्री से बनती हैं। इनका चलन भी तभी से बढ़ा है जबसे चीनी बड़े पैमाने पर तैयार होने लगी है।

आजकल मिठाई की गोलियों में क्रीम, चॉकलेट, कई तरह के मेवे, फलों के रस या उनकी महक, जिलेटिन, शर्बत आदि अनेक चीज़ें मिलाई जाती हैं। स्वाद और महक के अलावा इनके रंग-रूप पर भी बहुत ध्यान दिया जाता है।

पहले ये गोलियां हाथ से ही बनती थीं। लेकिन अब ये बड़े-बड़े कारखानों में तैयार की जाती हैं। भारत में इनके अनेक कारखाने हैं।

मुक्केबाज़ी (BOXING) : यह एक बड़ा पुराना खेल है। आत्मरक्षा की कला के रूप में इसे संसार के प्राचीनतम खेलों में माना जा सकता है। मुक्केबाज़ी या बॉक्सिंग का खेल ग्रीस के ओलिम्पिक खेलों में भी सम्मिलित था। रोमन युग में यह एक बड़ा लोकप्रिय खेल था। उस युग के मुक्केबाज़ 'सीस्टस' नामक बड़े भारी दस्ताने पहना करते थे। ये दस्ताने धातु और चमड़े के बने होते थे और बड़े खतरनाक होते थे। कभी-कभी खिलाड़ियों की जान तक चली जाती थी। इसीलिए बाद में दस्तानों को इतना खतरनाक बनाना बंद कर दिया गया।

अठारहवीं और उन्नीसवीं सदी में मुक्केबाज़ी का खेल फिर से लोकप्रिय हो गया। पेशेवर खिलाड़ी ही इसमें भाग लेते थे। उन दिनों खेल तब तक जारी रहता था, जब तक कि एक खिलाड़ी थककर या घायल होकर ज़मीन पर नहीं गिर जाता था। उस समय दस्तानों की बजाय

खुले हुए मुक्कों का ही प्रयोग होता था। खिलाड़ी अपनी मुट्ठियों को कड़ा और मज़बूत बनाने के लिए उन्हें नमक के पानी में डुबाया करते थे। मुक्केबाज़ी की प्रतियोगिता के कुछ खेल साठ-सत्तर राउण्ड तक चला करते थे—जब तक कि एक खिलाड़ी पस्त होकर गिर नहीं पड़ता था। विजेता को बहुत बड़ी रकम इनाम में मिलती थी।

इस खेल के नियमों को व्यवस्थित करने का काम 'क्वीन्सबरी' के मार्क्विस ने सन् 1867 में किया। उनके नियम 'क्वीन्सबरी नियम' के नाम से जाने जाते हैं। आजकल मुक्केबाज़ी का खेल बहुत कुछ इन्हीं नियमों के आधार पर खेला जाता है।

मुक्केबाज़ी के खेल में दोनों खिलाड़ी लगभग समान भार के चुने जाते हैं। इसलिए खिलाड़ियों को कई वर्गों में बांट दिया गया है। सबसे हल्के आदमियों का वर्ग 'फ़्लाईवेट' कहलाता है, जिसमें खिलाड़ियों का भार आठ स्टोन से अधिक नहीं होता। अधिकतम भार के अनुसार अन्य वर्ग इस प्रकार हैं: बैंटमवेट (8 स्टोन 6 पौंड), फेदरवेट (9 स्टोन), लाइटवेट (9 स्टोन 9 पौंड), वेल्टरवेट (10 स्टोन 7 पौंड), मिडिलवेट (11 स्टोन 6 पौंड), लाइट-हेवीवेट (12 स्टोन 7 पौंड)। इनके बाद का वर्ग हेवी-वेट कहलाता है जिसमें भार की कोई निश्चित सीमा नहीं है, लेकिन इसमें सबसे भारी खिलाड़ी ही सम्मिलित किये जाते हैं।

मुक्केबाज़ी के कई प्रसिद्ध खिलाड़ी हो चुके हैं। बिना दस्ताने की मुक्केबाज़ी के अन्तिम प्रसिद्ध खिलाड़ी थे जॉन एल० सुलिवन। आधुनिक प्रसिद्ध खिलाड़ियों में संसार के विभिन्न देशों के खिलाड़ी सम्मिलित हैं। इनमें से कुछ के नाम इस प्रकार हैं: जैक डम्पसे (अमरीका), हेनरी आर्मस्ट्रांग (अमरीका), जोए लुई (अमरीका), जो 1937 से 1948 तक विश्व के हेवीवेट चैम्पियन रहे, होगान 'किड' बासे (नाइजीरिया), जिम्मी कैरुदर्स (आस्ट्रेलिया) और अल्ब्राउन (पनामा)। सन् 1962 में अमरीका के सोनी लिस्टन को विश्व हेवीवेट चैम्पियन घोषित किया गया। उसने फ्लायड पैटरसन को हराया था। 1963 में अमरीका के कैसियस क्ले विश्व चैम्पियन घोषित हुए।

भारत के पद्मबहादुर मल्ल मिडिलवेट चैम्पियन के रूप में विख्यात हैं। हेवीवेट मुक्केबाज़ों में सरकार का नाम उल्लेखनीय है। पद्मबहादुर मल्ल को जकार्ता में हुई एशियाई खेल प्रतियोगिता में दो स्वर्ण-पदक मिले थे। एक अपने वर्ग के सर्वश्रेष्ठ मुक्केबाज़ होने के कारण और दूसरा वहां भाग लेनेवाले सभी प्रतियोगी मुक्केबाज़ों में सर्वोत्तम होने के कारण।

मुक्केबाज़ी एक बड़ा खतरनाक खेल है। इसमें घायल होने पर कई खिलाड़ियों को अपने प्राणों से हाथ धोना पड़ा है। 1962 में प्रसिद्ध मुक्केबाज़ बिन्नी पैरट की मृत्यु के बाद से लोग इस खेल के विरुद्ध होते जा रहे हैं।

मैपल चीनी (MAPLE SUGAR): गर्मी के दिनों में जब खूब धूप होती है तब चीनी वाले मैपल पेड़ की पत्तियां बहुत अधिक चीनी पैदा करती हैं। ये पेड़ दूसरे हरे पौधों की ही तरह अपनी चीनी, पानी और कार्बन डाइऑक्साइड से तैयार करते हैं। मैपल के पेड़ अपनी अधिकांश चीनी खुद तत्काल खत्म कर लेते हैं, क्योंकि दूसरे सभी जीव-धारियों की तरह इन्हें भी खुराक की ज़रूरत होती है। लेकिन इसमें से कुछ चीनी ये अपने तनों और जड़ों में जुटा रखते हैं। जाड़ों-भर यह चीनी उन्हींमें पड़ी रहती है। जाड़े के अन्त में या वसन्त के प्रारम्भ में फिर रस तैयार होने लगता है और फिर चीनी तैयार होने लगती है। मैपल की चीनी इसी रस से तैयार होती है।

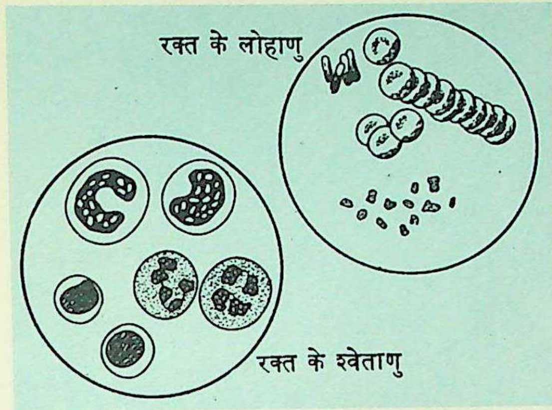
इस चीनी को प्राप्त करने के लिए मैपल के तने में छोटे-छोटे छिद्र बना लिए जाते हैं। एक नली हर छिद्र में लगा दी जाती है और इसके दूसरे सिरे पर एक बर्तन लगा दिया जाता है। इस बर्तन की काफी देखभाल की जाती है। फिर रस इस बर्तन से एकत्र कर लिया जाता है।

इस रस को छानकर उबाला जाता है। उबलकर रस गाढ़ा होता जाता है। जब यह गाढ़ा हो जाता है तो इससे मैपल का शीरा तैयार करते हैं। अगर शीरे को तुरन्त बाल्टियों में न उड़ेल लिया जाए तो यह खराब हो जाता है। चीनी बनाने के लिए इसे और उबालते हैं। फिर शीरा इतना गाढ़ा हो जाता है कि ठंडा होने पर जमकर चीनी के थक्के बना लेता है।। मैपल से इस तरह रस इकट्ठा करने से पेड़ को कोई हानि नहीं होती।

यकृत (LIVER): शरीर के भीतर जो सबसे बड़ी ग्रंथि है उसे यकृत या जिगर कहते हैं। इसका वज़न दो किलोग्राम से कुछ कम होता है। यकृत पसलियों की आड़ में दाहिनी ओर होता है। यह शरीर का एक बहुत ही उपयोगी अंग है। इसका मुख्य कार्य पित्त बनाना है, जो चिकने पदार्थों को पचाने के लिए अत्यन्त आवश्यक है। पित्त हरे-पीले रंग का एक रस है जो तीव्र पाचक होने के साथ-साथ कृमिघ्न और विषनाशक भी है।

यकृत रक्त के बनाने में भी महत्त्वपूर्ण भाग लेता है। यह स्वयं रक्त का भंडार है, क्योंकि शरीर का एक-चौथाई रक्त हर समय इसीमें संचित रहता है। यकृत में विटा-मिन 'ए' की भी पर्याप्त राशि संचित रहती है। हमारे भोजन में जो स्टार्च या निशास्ते का भाग होता है, यकृत आवश्यकता पड़ने पर उसे ग्लूकोज़ में परिवर्तित कर देता है।

रक्त (BLOOD): हम जानते हैं कि जीने के लिए शरीर को भोजन और ऑक्सीजन मिलना ज़रूरी है। लेकिन पेट में खाना डाल लेने या फेफड़ों में ऑक्सीजन-मिली हवा भर लेने से ही काम नहीं चलता। जीने के लिए ज़रूरी है



कि इस भोजन और ऑक्सीजन को शरीर के हर भाग तक पहुंचाया जाए। भोजन और ऑक्सीजन को शरीर के हर भाग तक ले जाने का काम रक्त या खून करता है। यह जिन नलियों में होकर गुज़रता है, उन्हें रक्तवाहिकाएं (Blood-Vessels) कहते हैं। हमारा हृदय रक्त को रक्तवाहिकाओं में पम्प करता है।

रक्त सिर्फ भोजन और ऑक्सीजन के बहने के लिए ही ज़रूरी नहीं है। हमारे लिए यह इतना महत्त्वपूर्ण है कि यदि शरीर का सारा रक्त निकाल दिया जाए तो आदमी जीवित नहीं रह सकता। इसका काम शरीर के लिए इतना आवश्यक है कि पूरे शरीर में इसका परिवहन कराने के लिए हमारा हृदय हमारे जन्म से मृत्यु तक दिन-रात लगातार धड़कता रहता है और इसे पम्प करता रहता है।

रक्त की बूंद देखने में लाल स्याही की एक बूंद-जैसी ही दिखाई देती है। लेकिन इसीको सूक्ष्मदर्शी से देखने पर हम चकित रह जाते हैं। हम देखते हैं कि रक्त का जो द्रव या तरल भाग है वह लाल नहीं है। खून की लाली उसमें मौजूद लाल कणों या लोहिताणुओं (Red Cells) के कारण है। ये इतने छोटे होते हैं कि अगर हज़ारों लाल कणों को एक साथ रख दिया जाए तो वे केवल एक सेंटी-मीटर जगह ही घेरेंगे।

रक्त के लाल कणों का मुख्य कार्य ऑक्सीजन ले जाना है। ये फेफड़ों में सांस द्वारा भरी हवा से ऑक्सीजन ले लेते हैं और उसे पूरे शरीर की कोशिकाओं को पहुंचाते रहते हैं।

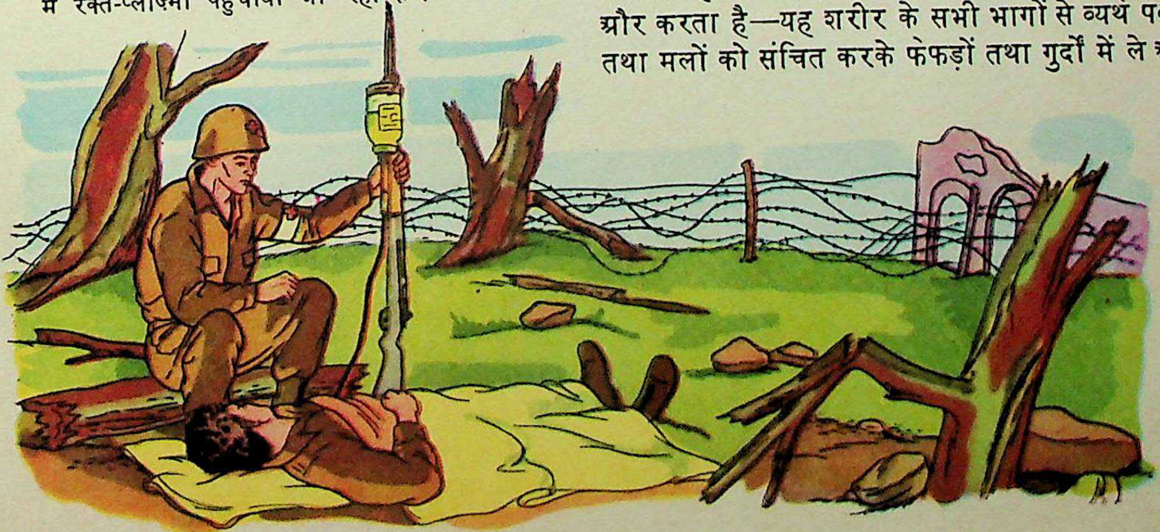
रक्त के लाल कण हमारे शरीर की कुछ हड्डियों के भीतर बनते हैं। हर सेकंड लाखों नये लाल कण बनते रहते हैं। लेकिन उसीके साथ-साथ हमारे यकृत (जिगर) और प्लीहा (तिल्ली) में हर सेकंड लाखों पुराने और टूटे-फूटे लाल कण नष्ट भी होते रहते हैं।

लाल कणों के अलावा, हमारे रक्त में कितने ही प्रकार के सफेद कण या श्वेताणु (White Cells) भी होते हैं। एक प्रकार के श्वेताणु रोगों के कीटाणुओं का सामना करते हैं और उन्हें सचमुच खा जाते हैं। फोड़े-फुन्सी की पीब असल में उस लड़ाई में काम आए श्वेताणुओं से ही बनती है। एक अन्य प्रकार के श्वेताणु शरीर के कीटाणुओं द्वारा हानिग्रस्त अंगों की मरम्मत करते हैं। रक्त में प्रति हज़ार लाल कणों के पीछे एक या दो श्वेत कण होते हैं।

रक्त के द्रव भाग को प्लाज़्मा (Plasma) कहते हैं। इसका अधिकांश तो पानी ही होता है। लेकिन इस पानी में कितने ही महत्त्वपूर्ण रसायन घुले होते हैं। एक रसायन रक्त को गाढ़ा करता है या उसका थक्का बनाता है। एक दूसरा रसायन रक्त के अनावश्यक रूप से थक्का बंधने को रोकता है। इसके कुछ रसायनों के कारण हमारे शरीर को ठीक रहने में सहायता मिलती है। रक्त के द्रव भाग के कुछ रसायन कीटाणुओं से लड़ने में श्वेताणुओं की सहायता करते हैं।

शरीर के सभी भागों को भोजन पहुंचाने का काम प्लाज़्मा ही करता है। इसके अलावा प्लाज़्मा एक काम और करता है—यह शरीर के सभी भागों से व्यर्थ पदार्थों तथा मलों को संचित करके फेफड़ों तथा गुर्दों में ले आता

लड़ाई के मैदान में घायल सिपाही के शरीर में रक्त-प्लाज़्मा पहुंचाया जा रहा है।



है, जहां से वे बाहर निकाल दिए जाते हैं।

इस तरह हमारे शरीर के रक्त की हर बूंद लगातार परिवर्तनों से गुज़रती जाती है—कहीं यह ऑक्सीजन ग्रहण करती है और कहीं भोजन। कहीं यह भोजन छोड़ती है तो कहीं ऑक्सीजन। कहीं यह मलों को एकत्र करती है तो कहीं घाव से शरीर में घुसे रोगाणुओं का सामना करने के लिए कुछ श्वेताणु छोड़ जाती है। इस प्रकार यह चौबीसों घंटे लगातार काम में लगी रहती है।

रक्त सिर्फ मनुष्य के शरीर में ही नहीं होता—सभी रीढ़धारियों के शरीर में रक्त है। कितने ही बिना रीढ़-वाले प्राणियों के शरीर में भी रक्त मौजूद है। केवल सरलतम और निम्नतम जीवधारी ही रक्त के बिना जी सकते हैं। (देखें : हृदय)

रक्त बैंक (BLOOD BANK) : पिछले कुछ वर्षों से रक्त बैंकों का चलन हुआ है। ये बैंक रक्तदान करनेवालों का रक्त लेकर उसमें से प्लाज़्मा (Plasma) या रक्तरस पृथक् करके अलग एकत्रित कर लेते हैं। फिर यह प्लाज़्मा ठंडा करके जमा लिया जाता है या सुखा लिया जाता है। इस प्रकार इसे अधिक समय तक सुरक्षित रखा जा सकता है। यह कहीं भी ले जाया जा सकता है। जब इसे व्यवहार में लाना होता है तो इसे आसवित जल (डिस्टिल्ड वाटर) में सही मात्रा में घोल लेते हैं। जिन व्यक्तियों को संपूर्ण रक्त की नहीं, बल्कि केवल प्लाज़्मा की आवश्यकता पड़ती है, उनके रक्त के बारे में यह जानना आवश्यक नहीं है कि वह किस वर्ग का है। सुखाया हुआ या जमाया हुआ प्लाज़्मा किसी भी व्यक्ति को दिया जा सकता है और इस प्रकार उसकी प्राण-रक्षा की जा सकती है।

कुछ रक्त बैंकों में सम्पूर्ण रक्त भी जमा करके रखा जाता है। इसे एक निश्चित अवधि के लिए विशेष विधियों से सुरक्षित रखा जाता है तथा विभिन्न रक्त-वर्गों के अनुसार वर्गीकृत कर लिया जाता है।

रक्त बैंक युद्ध और शांति दोनों में ही बहुत उपयोगी होते हैं। रक्त बैंक के लिए यह आवश्यक है कि उसमें हर समय पर्याप्त मात्रा में प्लाज़्मा उपस्थित रहे। इसके लिए रक्त बैंक की ओर से समय-समय पर रक्तदान का आन्दोलन चलाया जाता है और लोग स्वेच्छा से रक्त-दान करते हैं। (देखें : रक्त-संक्रामण और रक्त-वर्ग)

रक्त-संक्रामण और रक्त-वर्ग (BLOOD TRANSFUSION AND BLOOD GROUPS) : किसी व्यक्ति के शरीर में बाहर से नया रक्त चढ़ाए जाने की क्रिया को रक्त संक्रामण या खून चढ़ाना कहते हैं। किसी दुर्घटना में घायल हो जाने पर या कोई बड़ा ऑपरेशन होने पर शरीर से बहुत अधिक मात्रा में रक्त निकल जाता है। यदि समय पर नया रक्त चढ़ाकर रक्त की कमी पूरी न की जाए तो रोगी की मृत्यु हो सकती है। ऐसी स्थिति में रोगी को देने के लिए या तो किसी स्वस्थ व्यक्ति के शरीर से नया रक्त प्राप्त किया जाता है या किसी रक्त बैंक से आवश्यक रक्त मंगवाया जाता है।

रक्त बैंक में सुरक्षित रखा जानेवाला रक्त प्लाज़्मा या रक्तरस के रूप में होता है, जिसे ठंडा करके या सुखा-कर बोतलों में तैयार रखा जाता है। सुखाया हुआ या जमाया हुआ प्लाज़्मा डिस्टिल्ड वाटर में घोलकर किसी भी व्यक्ति को इंजेक्शन द्वारा सुरक्षापूर्वक दिया जा सकता है।

लेकिन किसी व्यक्ति का ताज़ा या सम्पूर्ण रक्त हर व्यक्ति को नहीं दिया जा सकता। इसका कारण यह है कि मनुष्यों में मुख्य रूप से चार प्रकार के रक्त-वर्ग पाए जाते हैं, जिन्हें 'ए', 'बी', 'एबी' और 'ओ' के वर्गों में बांटा गया है। रक्त चढ़ाते समय एक वर्ग के रक्तवाले व्यक्ति को अगर किसी ऐसे वर्ग का रक्त चढ़ा दिया जाए जो उसके अनुकूल न हो तो वह बीमार पड़ सकता है, और यहां तक कि उसकी मृत्यु भी हो सकती है। इसलिए रक्त चढ़ाने के पहले रोगी के रक्त की परीक्षा की जाती है और फिर नये रक्त के लिए ऐसे व्यक्ति को ढूंढा जाता है जिसका रक्त-वर्ग रोगी के रक्त-वर्ग के अनुकूल हो।

मानव-शरीर के रक्त-वर्ग की खोज सबसे पहले नोबेल पुरस्कार-विजेता वैज्ञानिक कार्ल लैंड्स्टाइनर ने की थी। (देखें : रक्त बैंक)

संतुलित भोजन और सफाई से
हम स्वस्थ व नीरोग रहते हैं।



रोग (DISEASES) : इस समय भी संसार में बहुत-से लोग बीमार हैं। लोग तरह-तरह के रोगों से पीड़ित हैं। रोग कई प्रकार के होते हैं। कुछ रोग ऐसे हैं जो हमें दूसरे व्यक्तियों से लगते हैं। जैसे, हमें मम्प्स या कनपेड़ का रोग तब तक नहीं हो सकता जब तक कि हम इस रोग से पीड़ित किसी व्यक्ति के सम्पर्क में न आएं। यह एक छूत का रोग है। छूत का रोग उस रोग से पीड़ित व्यक्ति के साथ उठने-

बैठने या उसके द्वारा प्रयोग में लाई गई चीज़ों का प्रयोग करने से होता है।

अन्य कुछ रोग ज़रा घूमकर रोगियों से स्वस्थ व्यक्तियों तक पहुंचते हैं। जैसे, मलेरिया मच्छर के ज़रिये रोगी से स्वस्थ व्यक्ति तक पहुंचता है। प्लेग पिस्सुओं के ज़रिये फैलता है। निद्रालुरोग और टाइफस भी इसी प्रकार के रोग हैं। गन्दे पानी या अशुद्ध दूध के ज़रिये भी रोग फैलते हैं।

लगभग सभी रोग कीटाणुओं के कारण होते हैं। रोग के कीटाणु बैक्टीरिया या जीवाणु नामक सूक्ष्म पौधों के रूप में, या प्रोटोज़ोआ नामक सूक्ष्म जीवों के रूप में, अथवा वाइरस या विषाणु नामक सबसे अधिक सूक्ष्म कीटाणुओं के रूप में हो सकते हैं। वाइरस इतने छोटे होते हैं कि उन्हें मामूली सूक्ष्मदर्शी की सहायता से नहीं देखा जा सकता। वैज्ञानिक उनके बारे में अधिक से अधिक जानकारी प्राप्त करने की कोशिश कर रहे हैं। टिटेनस जैसे कुछ रोगों के कीटाणु ऐसे भी होते हैं जो रोगी से स्वस्थ व्यक्ति तक नहीं पहुंच पाते हैं।

रोग फैलानेवाले कुछ पौधे और जीव रोग के साधारण कीटाणुओं से काफी बड़े होते हैं। लेकिन ये इतने बड़े नहीं होते कि हम इन्हें केवल आंख से देख सकें। एक प्रकार का रोग उन बारीक कीड़ों से होता है जो सूअर के कच्चे मांस में होते हैं। दाद एक प्रकार के रोग के पौधों के कारण होता है।

कई प्रकार के रोग ऐसे हैं जो हमारे शरीर में किसी चीज़ की कमी हो जाने के कारण होते हैं। हमें ऐसा भोजन करना चाहिए जो हमारे शरीर को कई प्रकार के आवश्यक तत्त्व दे सके। अगर हमारे भोजन में किसी तत्त्व की कमी होती है तो हम बीमार पड़ जाते हैं। विटामिन हमारे शरीर को स्वस्थ रखने के लिए बहुत आवश्यक तत्त्व हैं। कैल्सियम की कमी से रिकेट्स नामक रोग हो जाता है। विटामिन 'सी' की कमी से स्कर्वी रोग हो जाता है।

जब हमारे शरीर की कुछ ग्रंथियां ठीक तरह से अपना काम नहीं करतीं तो हमें कई प्रकार के रोग हो जाते हैं। मधुमेह या डायबीटीज़ इसी प्रकार का रोग है। कभी-कभी हमारे शरीर की कोशिकाओं में खराबी आ जाती है और वे असाधारण रूप से बढ़ने लगती हैं। इससे कैंसर नामक रोग हो सकता है।

कुछ रोग कोई खास तरह का काम करने से होते हैं। कोयला खदान के खनिकों को फेफड़े का कोई रोग हो सकता है, क्योंकि उन्हें कोयले की धूल में सांस लेना पड़ता है। जो लोग अपनी सुरक्षा का विशेष प्रबन्ध किए बिना वर्षों सीसे का काम करते रहते हैं उन्हें एक विशेष प्रकार का रोग हो सकता है।

शरीर की भांति हमारा मस्तिष्क भी रोगी हो सकता है। मानसिक रोग अन्य कारणों से होते हैं। इन कारणों के बारे में हमें जितना जानना चाहिए उतना अभी मालूम नहीं हो सका है।



बाज़ार में आने के पहले बोतल के दूध और खाने की कई चीज़ों की प्रयोगशालाओं में परीक्षा की जाती है।

अब हमने रोगों का मुकाबला करने के कई अच्छे तरीके खोज लिए हैं। छूत की वे बीमारियां जो कभी लगभग प्रत्येक बच्चे को हुआ करती थीं, अब बहुत कम बच्चों को होती हैं। छूत की बहुत-सी बीमारियां टीका लगवा लेने के बाद नहीं होतीं। छूत की बीमारियों के रोगियों को दूसरों से अलग रखा जाता है। अब रोगों से लड़ने के इतने अच्छे साधन हमारे पास हैं कि हम अपने गुफावासी पुरखों के जीवनकाल की अपेक्षा तिगुने या चौगुने समय तक जीवित रहने की आशा कर सकते हैं।

केवल मनुष्य ही ऐसे प्राणी नहीं हैं जिन्हें रोग होते हैं। सभी प्रकार के पेड़-पौधों और जीव-जन्तुओं को रोग होते हैं। यहां तक कि बैक्टीरिया भी वाइरस के प्रभाव से मर सकते हैं। बिल्लियां और कुत्ते पागल हो जाते हैं। सूअरों को एक प्रकार का हैज़ा हो जाता है। गायों को टी० बी० या तपेदिक की बीमारी होती है। साग-सब्ज़ियों और फल के पेड़ों को भी तरह-तरह के रोग लग जाते हैं। हमने अपने रोगों की रोकथाम के साधनों की तरह ही पेड़-पौधों और पालतू जानवरों के रोगों से लड़ने के साधन भी खोज निकाले हैं। (देखें : छूत के रोग; रोग के कीटाणु)

रोग के कीटाणु (DISEASE GERMS) : पुराने ज़माने में बहुत-से लोग ऐसा समझते थे कि रोग भूत-प्रेत के प्रभाव से उत्पन्न होते हैं। रोगियों की झाड़-फूंक और टोने-टोटके का बड़ा रिवाज था। अभी लगभग 100 साल पहले तक किसीको रोग के कीटाणुओं के बारे में मालूम नहीं था। लोग यह नहीं जानते थे कि विभिन्न प्रकार के कीटाणुओं के कारण ही तरह-तरह के रोग होते हैं। अब हम अच्छी तरह से जानते हैं कि रोग की असली जड़ रोग के कीटाणु ही हैं। हमें यह भी मालूम हो चुका है कि अन्य जीवों और पौधों को भी कीटाणुओं के कारण रोग होते हैं।

रोग के कुछ कीटाणु बैक्टीरिया या जीवाणु कहलाते हैं। ये अत्यन्त सूक्ष्म पौधे होते हैं, जिन्हें सूक्ष्मदर्शी के बिना नहीं देखा जा सकता। ये अधिकांश पौधों की तरह हरे नहीं होते। इनका कोई रंग नहीं होता। इनमें से कुछ गोल, कुछ मुड़े-तुड़े और कुछ दंडाकार होते हैं। ये इतने छोटे हैं कि एक अकेला बैक्टीरिया अधिक हानि नहीं पहुंचा सकता। लेकिन ये बड़ी तेज़ी से बढ़ते हैं और नये बैक्टीरिया पैदा कर लेते हैं। 20 मिनट में एक बैक्टीरिया से दूसरा बैक्टीरिया तैयार हो सकता है। इस तरह दिन-भर में कई लाख बैक्टीरिया पैदा हो सकते हैं।

रोग के कुछ कीटाणु प्रोटोज़ोआ कहलाते हैं। ये एक-कोशिका वाले सूक्ष्म जीव होते हैं। ये बैक्टीरिया से बड़े होते हैं। लेकिन इन्हें भी सूक्ष्मदर्शी के बिना देख पाना असम्भव है।

रोग के कुछ कीटाणु वाइरस या विषाणु कहलाते हैं। ये इतने सूक्ष्म होते हैं कि इन्हें साधारण सूक्ष्मदर्शी से भी नहीं देखा जा सकता। इन्हें देखने के लिए इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी की आवश्यकता होती है। वाइरस अपने-आपमें एक पहेली हैं। ये सजीव वस्तुओं के और उन वस्तुओं के जो सजीव नहीं हैं, बीच की वस्तुएं हैं। इनके कारण बहुत-से रोग होते हैं।

नीचे के चार्ट में बैक्टीरिया, प्रोटोज़ोआ और वाइरस से होनेवाले कुछ रोगों के नाम दिए गए हैं :

बैक्टीरिया से होनेवाले रोग

डिफ्थीरिया	नेत्रश्लेष्मला शोथ
क्षय रोग	स्कार्लेट ज्वर
न्युमोनिया	हैज़ा
टाइफ़ाइड	गिल्टी रोग (भेड़)
टिटेनस	संक्रामक गर्भस्राव (गाय)
माल्टा ज्वर	दग्ध विवर्णता (फल वृक्ष)

प्रोटोज़ोआ से होनेवाले रोग

मलेरिया	टिक ज्वर
अमीबा-पेचिश	निद्रालुरोग
उष्ण-कटिबंधीय ज्वर	टेक्सास ज्वर (गाय)

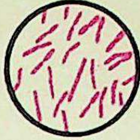
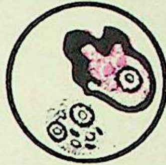
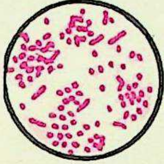
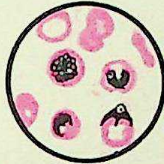
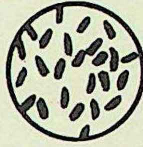
वाइरस से होनेवाले रोग

ज़ुकाम	वाइरस न्युमोनिया
खसरा	छोटी माता
मम्प्स	जर्मन खसरा
पोलियो	पैर व मुंह का रोग (गाय)
इंफ़्लुएंज़ा	मोज़ेक (पौधे)

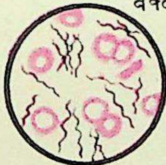
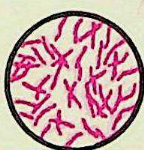
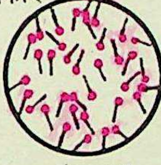
रोग के कीटाणु कई प्रकार से रोग उत्पन्न करते हैं। कुछ कीटाणु बढ़ते समय ज़हर फैलाते हैं। कुछ कीटाणु जीवों और पौधों के शरीर की कुछ कोशिकाओं को ही नष्ट कर डालते हैं।

जब रोग के कीटाणु हमारे शरीर में प्रवेश करते हैं तो हमारे रक्त की श्वेत कोशिकाएं या श्वेताणु पूरे ज़ोर-शोर से उनपर आक्रमण कर देते हैं। हमारे रक्त में ऐसे रसायन भी उत्पन्न होते हैं जो कीटाणुओं के ज़हर को नष्ट कर सकते हैं। आम तौर से कीटाणुओं के विरुद्ध संघर्ष में हमारी विजय होती है। लेकिन कभी-कभी हम इस संघर्ष में कमज़ोर पड़ जाते हैं। आधुनिक दवाइयां रोग



बैक्टीरिया के तीन मुख्य प्रकार

के विरुद्ध संघर्ष में हमारे शरीर की सहायता करती हैं।
(देखें : जीवाणु; प्रोटोज़ोआ; विषाणु)

रोटी (BREAD) : संसार के हर देश के निवासियों की रोटियां अलग-अलग किस्मों की हैं। लेकिन सभी देशों की रोटियों में एक समानता होती है : रोटियां आटे से बनती हैं। आटा आम तौर से अनाज का होता है। लेकिन आलू, सोयाबीन, मटर, केला और कुछ पौधों की जड़ों के आटे से भी रोटी बन सकती है।

रोटियों को दो मुख्य वर्गों में बांटा जा सकता है। एक वर्ग की रोटियां हल्की और फूली हुई डबलरोटीनुमा होती हैं। दूसरे वर्ग की रोटियां पतली, चपटी और चपातीनुमा होती हैं।

हल्की और फूली हुई रोटियों में खमीर डाला जाता है। खमीर आटे में कार्बन डाइऑक्साइड के छोटे-छोटे बुलबुले उठा देता है। इन बुलबुलों से आटा फूल जाता है। रोटी के आटे में कार्बन डाइऑक्साइड के बुलबुले बेकिंग पाउडर से भी उठाए जा सकते हैं। खाने का सोडा और फटा हुआ दूध मिलाने से भी आटे में इस प्रकार के बुलबुले उठ सकते हैं। डबलरोटी और नान इसी प्रकार के आटे से बनाए जाते हैं। तंदूरी या तवे की रोटी के लिए खमीर के आटे का प्रयोग नहीं किया जाता है।

हमारे देश में चपाती या फुलके खाने का रिवाज है। इस प्रकार की रोटियां संसार के बहुत कम देशों में बनती हैं।

रोटी हमारे भोजन का एक प्रमुख अंग है। रोटी हमारे लिए इतनी महत्त्वपूर्ण चीज़ है कि कभी-कभी हम अपने पूरे भोजन के लिए 'रोटी' शब्द का प्रयोग करते हैं।
(देखें : खमीर)

विभिन्न देशों की रोटियां

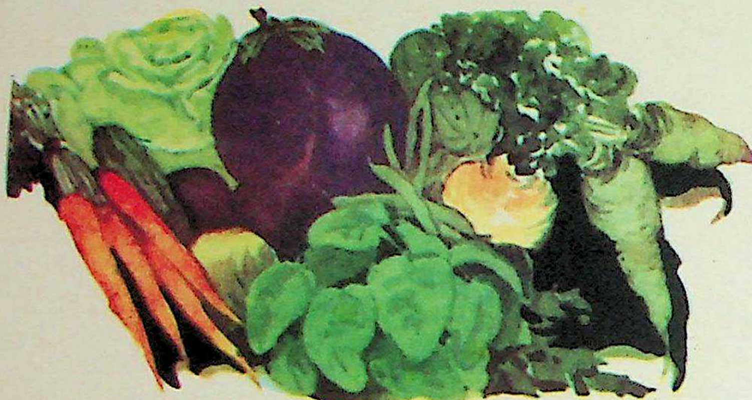


रोडिओ (RODEO) : अमरीकी चरवाहों के खेल-कूद के वार्षिक समारोह को 'रोडिओ' कहते हैं। रोडिओ एक स्पेनिश शब्द है जिसका अर्थ चक्कर खाना होता है। इस समारोह का आरम्भ अमरीका के पश्चिमी भाग में हुआ था।

इन समारोहों में जंगली घोड़े पर बिना जीन के सवारी करने, सांड पर सवारी करने, जंगली बछड़े को नाथने, बछड़ों से कुश्ती लड़ने आदि की प्रतियोगिताएं होती हैं। रस्से के खेल और मसखरी के खेल भी दिखाए जाते हैं। अमरीकी रोडिओ एसोसिएशन ने इन प्रतियोगिताओं के लिए कड़े नियम बना रखे हैं।

लू लगना (SUNSTROKE) : गर्मी के दिनों में तेज़ धूप में निकलने पर लोगों को लू लग जाती है। लू लगने पर कभी-कभी तुरन्त मृत्यु भी हो सकती है। बहुत अधिक गरम

विटामिनों के स्रोत



विटामिन ए, बी$_2$, के और सी।



विटामिन के और सी।



विटामिन डी, बी$_1$, बी$_2$ और नियासिन।



विटामिन ए, डी, बी$_1$ और बी$_2$।



विटामिन बी$_1$, बी$_2$ और नियासिन।

हवा के सम्पर्क में आने से तथा सूर्य की तेज़ किरणों से शरीर के विशेष अंगों की अच्छी तरह से हिफ़ाज़त न करने के कारण, शरीर का तापमान एकदम से बढ़ जाता है। लू लगने से मस्तिष्क विशेष रूप से बहुत अधिक गरम हो जाता है और शरीर की क्रियाओं पर से अपना नियंत्रण खो बैठता है। तेज़ गर्मी के कारण तंत्रिका-केन्द्र को भी बहुत अधिक हानि पहुंचती है और शरीर सुन्न हो जाता है।

लू लगने पर तुरन्त चिकित्सा की व्यवस्था होनी चाहिए। लू से बचने का सबसे अच्छा उपाय यह है कि तेज़ धूप में घर से बाहर नहीं निकलना चाहिए और यदि निकलना ही पड़े तो खूब पानी पीकर तथा सिर और गरदन को इस प्रकार ढंककर निकलना चाहिए कि उनपर सूर्य की किरणें सीधी न पड़ सकें।

विटामिन (VITAMINS) : पुराने ज़माने में लम्बी यात्राओं पर निकलनेवाले मल्लाह अक्सर स्कर्वी रोग के कारण मौत के शिकार हो जाते थे। सन् 1497 में वास्को द गामा की प्रसिद्ध अफ्रीका-यात्रा में 100 आदमी इस बीमारी के कारण मर गए। प्रसिद्ध यात्री मैगेलान को भी इसी बीमारी के कारण अपने अनेक मल्लाहों से हाथ धोना पड़ा। इसी तरह अनेक यात्रियों को अपने साथी मल्लाहों को स्कर्वी के कारण दम तोड़ते हुए देखना पड़ा। 200 वर्षों से अधिक हुए, इंग्लैंड के नाविकों ने अनुभव किया कि यात्रा में नींबू का रस पीने से स्कर्वी रोग नहीं होता। इसके बाद इंग्लैंड के जहाज़ों पर नींबू का रस पीना इतना ज़रूरी-सा हो गया कि लोग अंग्रेज़ मल्लाहों को 'नींबूवाले' (Limeys) कहकर चिढ़ाने लगे। बहुत दिनों तक इस बात का पता न चल सका कि नींबू का रस स्कर्वी को क्यों रोकता है। आज हम जानते हैं कि नींबू तथा दूसरे कई ताज़ा फलों में विटामिन 'सी' नामक अद्‌भुत तत्त्व होता है। स्कर्वी रोग इसी विटामिन की कमी के कारण होता है।

वैज्ञानिकों ने पता लगाया है कि विटामिन कई प्रकार के हैं। हमें नीरोग व स्वस्थ रखने के लिए ये सब बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। विटामिन 'ए' आंखों के एक रोग को रोकता है। विटामिन 'बी$_1$' बेरीबेरी रोग को रोकता है। विटामिन 'डी' सूखे (Rickets) को रोकता है। नियासिन पेलाग्रा नामक रोग की रोक-थाम करता है।

विटामिन तालिका

नाम और लाभ	कहां मिलता है	कमी के परिणाम
विटामिन ए		
स्वस्थ दांत, त्वचा और हड्डियां शरीर का विकास प्रकाश सहने की नेत्रों की शक्ति	दूध, मलाई, मक्खन, पनीर हरे पत्तोंवाली सब्ज़ियां कलेजी	सूखी-खुरदरी त्वचा शरीर-विकास में बाधा रतौंधी और छूत के रोग
विटामिन बी$_1$ (थियामिन)		
अच्छी भूख और पाचन-शक्ति स्नायु-दृढ़ता	मांस, खासकर सूअर का मांस रोटी और अनाज दूध और अंडे	बेरीबेरी थकान कम भूख और कब्ज़
विटामिन बी$_2$ (रिबोफ्लेविन)		
स्वस्थ त्वचा और स्नायु स्वस्थ आंखें	दूध, पनीर, मांस और अंडे हरे पत्तोंवाली सब्ज़ियां रोटी और अनाज	रोगनिरोधक शक्ति में कमी थकान आंखों का दुखना
नियासिन		
अच्छी भूख और पाचन-शक्ति स्वस्थ त्वचा और स्नायु	कलेजी, मांस, मछली, मुर्गी मटर और फलियां रोटी और अनाज	पेलाग्रा रोग कम भूख और अजीर्ण
विटामिन सी (एस्कॉर्बिक एसिड)		
स्वस्थ दांत, हड्डियां और रक्तवाहिकाएं स्वस्थ मसूढ़े और पेशियां	नीबू प्रजाति के फल, टमाटर हरे पत्तोंवाली सब्ज़ियां स्ट्राबेरी	स्कर्वी रक्त की कमी घाव का देर से भरना
विटामिन डी		
स्वस्थ दांत और हड्डियां शरीर आसानी से कैलसियम व फास्फोरस का उपभोग कर सकता है	मछली का तेल विटामिन डी वाला दूध धूप	रिकेट्स (सूखा) दांतों और हड्डियों की कमज़ोरी
विटामिन के		
खून का ठीक से थक्का जमता है	हरे पत्तोंवाली सब्ज़ियां फल	कटने पर बहुत रक्त बहता है

'विटामिन' का विटा लैटिन के एक शब्द से लिया गया है, जिसका अर्थ होता है 'जीवन'। यह नाम पोलैंड में जन्मे अमरीकी वैज्ञानिक कैसिमिर फंक ने सुझाया था। फंक महोदय ने चावल के दानों के बाहरी खोल से थियामिन या विटामिन 'बी$_1$' प्राप्त किया था। विटामिनों के बारे में की गई प्रारंभिक खोज के क्षेत्र में सर फ्रेडरिक गाउलैंड हॉपकिन्स का नाम अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। उन्होंने, अगर उन्हींके शब्दों में कहें तो, 'भोजन के सहायक तत्त्वों' की प्रकृति तथा महत्त्व के बारे में पता लगाया।

भोजन का अध्ययन करनेवाले वैज्ञानिकों ने इस प्रकार की तालिकाएं तैयार की हैं कि हमें क्या खाना चाहिए। अगर हम इनकी बात मानें तो हमें सभी विटामिन मिल सकते हैं। उदाहरणार्थ, चित्र में जिन भोज्य पदार्थों को दिखाया गया है उनमें प्रायः सभी विटामिन मौजूद हैं। अगर अपनी खूराक से हमें पर्याप्त विटामिन न मिलें तो हम दवाइयों की दूकान से उन्हें खरीद सकते हैं। हां, ज़्यादा अच्छा यही है कि हम विटामिनयुक्त भोजन पर ज़ोर दें। इसका एक कारण यह है कि शायद प्राकृतिक भोजन में कुछ ऐसे विटामिन होते हैं जिन्हें अभी वैज्ञानिक खोज नहीं पाए हैं।

(देखें : भोजन)

शरीर-विज्ञान (PHYSIOLOGY) : हमें विटामिनों की ज़रूरत क्यों पड़ती है ? आलुओं में स्टार्च कैसे जमा होता है ? हमारा भोजन खेलने और काम करने की ऊर्जा में किस प्रकार बदल जाता है ? कुत्ता अपना बदन किस तरह ठंडा रखता है ? शरीर-विज्ञान इन प्रश्नों के उत्तर देता है। इस विज्ञान द्वारा हमें इस बात का ज्ञान प्राप्त होता है कि जीवित प्राणियों का शरीर किस तरह काम करता है।

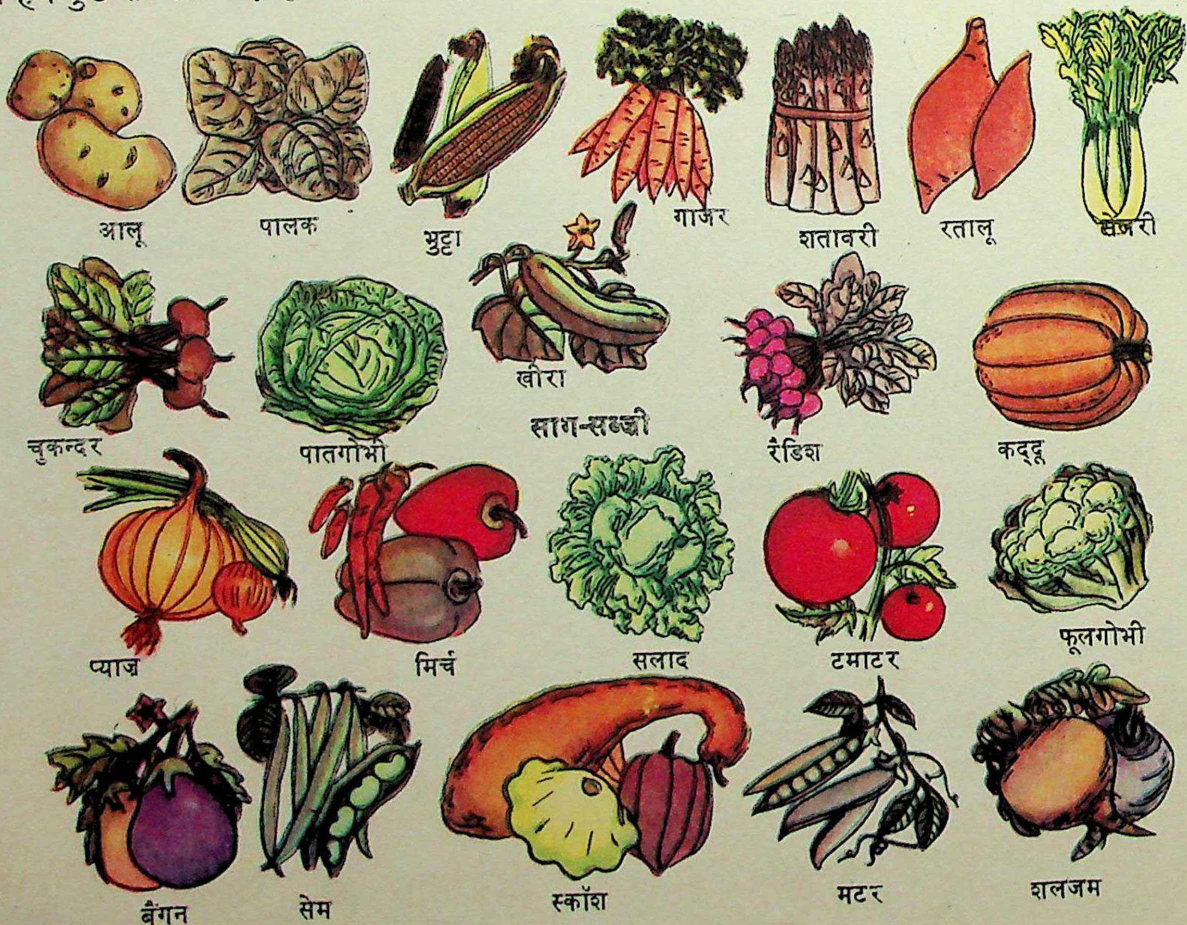
ऐसी बहुत-सी बातें हैं जो शरीर-विज्ञानियों को अभी भी मालूम करनी हैं। इनको जानने के लिए बहुत-से प्रयोग किए जा रहे हैं। लोगों के ऊपर प्रयोग करना कोई सरल बात नहीं है। मानव का शरीर किस प्रकार काम करता है, इस बारे में और अधिक ज्ञान प्राप्त करने के लिए छोटे जानवरों पर प्रयोग किए जाते हैं। गिनी पिग, सफेद चूहे, खरगोश, कुत्ते, ये कुछ जानवर हैं जिनका वैज्ञानिक प्रयोगों में उपयोग किया जाता है। इन जानवरों के शरीर की क्रियाएं किसी हद तक हमारे शरीर की क्रियाओं से मिलती-जुलती हैं, जिनसे कुछ अन्दाज़ हो जाता है कि मानव-शरीर किस प्रकार काम करता है।

साग-सब्ज़ी (VEGETABLES) : हम जितनी भी साग-सब्ज़ी खाते हैं, वह सब पेड़-पौधों का कोई न कोई अंग होती है। कुछ सब्ज़ियां जड़ें होती हैं (जैसे मूली), कुछ कंद (जैसे प्याज़), कुछ पत्तियां होती हैं (जैसे पातगोभी), कुछ फूल (जैसे फूलगोभी)। इसी प्रकार कुछ सब्ज़ियां फल होती हैं (जैसे मिर्च) और कुछ बीज (जैसे सोयाबीन)।

भारत में इतनी तरह की साग-सब्ज़ी होती हैं कि उन सबके नाम गिनाना मुश्किल है। ऊपर गिनाई गई सभी सब्ज़ियां तो यहां होती ही हैं, दूसरी सब्ज़ियों में तोरी, घीया, कद्दू, ककड़ी और करेला प्रमुख हैं। ये सभी सब्ज़ियां बेलों पर होती हैं। ज़मीन के अन्दर से निकलनेवाली सब्ज़ियों में रतालु, जमीकंद, अरवी, शकरकंद आदि का नाम लिया जा सकता है। सिंघाड़ा और कमलककड़ी तालाब में होनेवाली बेलों में होती हैं। हरी सब्ज़ियों में (जिन्हें साग भी कहते हैं) चना, चौलाई, पालक, बथुआ, कुलफा और सरसों प्रमुख हैं। पेड़ों पर लगनेवाली सब्ज़ियों में कटहल, कचनार और सेमलगट्टे का नाम लिया जा सकता है।

डाक्टरों का कहना है कि हमें साग-सब्ज़ी रोज़ खानी चाहिए। उनमें ऐसे विटामिन और खनिज पदार्थ होते हैं जो दूसरे भोज्य पदार्थों में आसानी से नहीं मिलते। मिसाल के तौर पर, हरी सब्ज़ियों में लोहा और विटामिन 'सी' होता है। पीले रंग की सब्ज़ियों में विटामिन 'ए' होता है।

स्किन डाइविंग (SKIN DIVING) : सन् 1945 ई० के आसपास से स्किन डाइविंग किस्म की गोताखोरी एक



साग-सब्ज़ी

जलक्रीड़ा के रूप में कुछ देशों में बहुत लोकप्रिय हो गई है।

'स्किन डाइवर' किस्म के गोताखोर गहरे समुद्र के भारी-भरकम गोता-कवचों को बिना पहने ही गोता लगाते हैं। वैसे ज़्यादातर लोग एक मास्क पहने रहते हैं और पानी के भीतर सांस लेने के उपकरण अपनी पीठ पर बांधे रहते हैं।

कुछ गोताखोर पानी में डूबकर भालों या छुरों से मछलियों का शिकार करते हैं। कुछ समुद्र के भीतर विशेष कैमरों से मछलियों और गहरे समुद्र के सुन्दर दृश्यों के फोटो लेते हैं। कुछ लोग समुद्री गुफाओं और ध्वस्त जहाज़ों के टुकड़ों की खोज करते हैं।

स्किन डाइविंग में खतरे भी हैं। एक बार एक गोताखोर को उसके द्वारा फंसाई गई एक शार्क मछली समुद्र में एक मील तक घसीट कर ले गई थी। उसे फिर एक क्रीड़ानौका में सैर कर रहे लोगों ने बचाया।

(देखें : गोता लगाना)

स्यामी जुड़वां बच्चे (SIAMESE TWINS) : स्याम में सन् 1881 में दो जुड़वां बच्चे हुए। इनके नाम चांग और एंग थे। इनके पिता चीनी थे और मां चीनी-स्यामी थी। चांग और एंग साधारण जुड़वां बच्चों की तरह नहीं थे। वे दोनों एक नली से जुड़े हुए थे।

डाक्टर ने बताया कि चांग और एंग अलग-अलग नहीं किए जा सकते। अगर ऐसा किया गया तो कम से कम एक बच्चा अवश्य मर जाएगा। इसलिए वे ऐसे ही बड़े हुए। दोनों 63 वर्ष की आयु तक जीवित रहे। अक्सर इस तरह के जुड़े हुए बच्चे हो जाते हैं। इन्हें स्यामी जुड़वां बच्चे कहा जाता है। कुछ को तो अलग किया जा सकता है और कुछ को नहीं। बिल्लियों, कुत्तों आदि में भी स्यामी जुड़वां बच्चे होते हैं।

स्वर (VOICE) : एक ज़माना ऐसा था जब जीवों के पास आवाज़ नहीं थी। मेंढकों का टर्राना, चिड़ियों का चहचहाना, कुत्तों का भौंकना, लोगों का बोलना—इस सबके बिना यह दुनिया कितनी खामोश रही होगी। हां, हम जिस ज़माने की बात कर रहे हैं उसमें मेंढक या चिड़ियां, कुत्ते या आदमी भी नहीं थे। तब जो जीव थे उनकी शरीर-रचना बड़ी सरल थी और वे बोल नहीं पाते थे।

दुनिया में जब स्वरवाले जीव पैदा हो गए तो शायद उन्होंने पहले-पहल अपने स्वर का प्रयोग अपने साथियों को बुलाने के लिए किया होगा। नर मेंढक का स्वर एक प्रकार की टर्र है जिसके द्वारा वह सूचित करता है, 'मैं इधर हूं'। यह टर्र सुनकर उसकी मादा उसे जवाब देती हुई उसके पास आ जाती है ताकि वह उसे देख सके। अनेक उभयचर और रेंगनेवाले जीव ऐसे हैं जिनके पास आवाज़ की ताकत है, लेकिन वे उसका उपयोग केवल



सुप्रसिद्ध स्किन डाइवर कैप्टेन जे० वाई० कूस्तो

समागम काल (Mating Time) में ही करते हैं।

प्राय: सभी स्तनपायी जीव अपने साथियों और बच्चों को बुला सकते हैं। जो थोड़े-से स्तनपायी स्वर की शक्ति से वंचित हैं उनमें जिराफ़ का नाम उल्लेखनीय है।

स्वरवाले जीवों में स्वर-तार (Vocal Cords) होते हैं। ये स्वर-तार एक प्रकार की स्वर-मंजूषा (Voice Box) में होते हैं। हमारे स्वर-तार स्वर-यंत्र या कंठ (Larynx) में हैं।

हवा को हमारे फेफड़ों के अन्दर जाते समय और वहां से बाहर निकलते समय हमारे कंठ से गुज़रना पड़ता है। जब कंठ से होती हुई हवा फेफड़ों में जाती है तब कोई आवाज़ नहीं होती। लेकिन जब फेफड़ों द्वारा हवा शरीर के बाहर निकाली जाती है तो वह स्वर-तारों में से गुज़रती हुई स्वर उत्पन्न करती है। हवा स्वर-तारों में कंपन उत्पन्न करती है, अर्थात् हवा के वेग से स्वर-तार बड़ी तेज़ी से आगे-पीछे होने लगते हैं। इस कंपन से ध्वनि उत्पन्न होती है। हमारे स्वर-तारों पर जितना ज़ोर पड़ता है, आवाज़ भी उतने ही ज़ोर से निकलती है। हम अपने स्वर-तारों पर जितनी अधिक हवा का दबाव डालेंगे, आवाज़ भी उतनी ही ऊंची होगी। बचपन में ही हम अपनी आवाज़ को ऊंची या नीची, ज़ोर की या धीमी करना सीख लेते हैं।

स्वास्थ्य (HEALTH) : हमारे लिए स्वास्थ्य एक बड़ा वरदान है। हर किसीको स्वस्थ रहने की यथाशक्ति कोशिश करनी चाहिए। स्वास्थ्य का अर्थ यह है कि शरीर और मन, दोनों रोग और कष्ट से मुक्त रहें और सही ढंग से काम करें।

अच्छा भोजन, ताज़ी हवा, व्यायाम, पर्याप्त विश्राम, धूप, स्वच्छ जल, आरामदेह कपड़े, सफाई और बीच-बीच में अपने स्वास्थ्य व दांतों की परीक्षा कराते रहने से हमारे शरीर की मशीन अपना काम ठीक करती रहती है।

आजकल हर देश की सरकार अपने लोगों के स्वास्थ्य का काफी ध्यान रखती है। वह स्वच्छ और पर्याप्त जल की, मोरियों और सीवर की, बाग-बगीचों और खेल के मैदानों की व्यवस्था करती है। लोगों के लिए खुले और हवादार मकान बनाती है। दवाखाने और अस्पताल खोलती है। प्रयोगशालाएं और अनुसन्धानशालाएं स्थापित करती है, जहां कीटाणुओं और औषधियों के सम्बन्ध में नये-नये प्रयोग और आविष्कार होते रहते हैं।

इन सब कोशिशों का ही यह फल है कि बहुत-सी ऐसी बीमारियां जो पहले असाध्य मानी जाती थीं अब ठीक हो जाती हैं। बाल मृत्यु-संख्या अब पहले से कम हो गई है और लोगों की औसत आयु बढ़ गई है। (देखें : रोग)

हड्डियां (BONES) : मधुमक्खियों, केकड़ों और जेलीफिश के शरीर में हड्डियां नहीं होतीं। इसी प्रकार हज़ारों जीव-जन्तु ऐसे हैं जिनके शरीर में हड्डियां नहीं होतीं। विभिन्न प्रकार की मछलियों, जलस्थलीय जीवों, सरीसृपों, पक्षियों और स्तनपायी जीवों के शरीर में हड्डियां होती हैं। इनके शरीर में हड्डियों का ढांचा या कंकाल होता है।

शरीर के अन्य सजीव तंतुओं की भांति हड्डियां भी कोशिकाओं या सेलों से बनी होती हैं। जैसे-जैसे हड्डियों का विकास होता है, नई अस्थि-कोशिकाएं बनती जाती हैं और पुरानी कोशिकाएं नष्ट होती जाती हैं।

हमारी हड्डियों का दो-तिहाई भाग खनिज पदार्थों से बना है। ये खनिज पदार्थ हैं : कैल्सियम, मैग्नेशियम फॉस्फेट आदि। हड्डियों का शेष अंश चर्बी तथा अन्य पदार्थों का बना होता है।

हड्डी में दो प्रकार की चीज़ें होती हैं—एक तो ऊपरी ठोस वस्तु, और दूसरी अन्दर की स्पंजनुमा और छेदों वाली मुलायम वस्तु। ऊपरी ठोस वस्तु, जो हड्डी को उसका रूप और शक्ति देती है, अधिकांश में कैल्सियम, फास्फोरस जैसे रासायनिक तत्त्वों के यौगिकों से बनी होती है। हड्डी का भीतरी मुलायम भाग मज्जा कहलाता है। अधिकांश मज्जा का रंग कुछ पीला-सा होता है। मज्जा चर्बी की कोशिकाओं से बनी होती है और चर्बी के भंडार का काम करती है।

हॉकी (HOCKEY) : यह खेल पिछले सौ बरसों में विकसित हुआ है। आरम्भ में यह उछल-कूद और मारधाड़ का खेल था, और इसके नियम वगैरह भी बस यों ही थे। सन् 1886 में हॉकी एसोसिएशन स्थापित हुआ। धीरे-धीरे बल-प्रयोग का स्थान गति और चतुराई ने ग्रहण कर लिया।

यह खेल सामान्यतः घास के मैदान में खेला जाता है। यह मैदान लगभग अस्सी मीटर लम्बा और लगभग अड़तालिस मीटर चौड़ा होता है। इस मैदान की लम्बाई तो फुटबॉल के मैदान जितनी ही होती है, लेकिन चौड़ाई कुछ कम होती है। चमड़े की सफेद गेंद पर स्टिक से हिट (चोट) की जाती है। खेल का उद्देश्य फुटबाल की ही तरह गोल करना होता है। गोल के डंडे लगभग तीन, सवा तीन मीटर की दूरी पर गड़े होते हैं। गोल तभी माना जाता है, जब गोल के पास वाले सेमी-सर्किल (अर्धवृत्त) के अन्दर से हिट मारी जाए। यह सेमी-सर्किल गोल से लगभग बारह मीटर की दूरी पर खींचा जाता है।

जब गेंद टच लाइन के बाहर चली जाती है तो उसे मैदान में लुढ़काया जाता है। लुढ़काने के समय खिलाड़ियों को एक लाइन पर खड़ा होना पड़ता है। यह लाइन टच लाइन के समानान्तर खींची जाती है। इसके अलावा लगभग 20 मीटर की दूरी पर भी एक लाइन खींची जाती है। इस लाइन पर बुली से खेल उस समय शुरू किया जाता है जब गेंद गोल में न जाकर गोल लाइन के पार निकल जाती है। जब गोल हो जाता है तब भी बुली से

खेल दुबारा शुरू होता है।

भारत में हॉकी का खेल बड़ा लोकप्रिय है। इसे लगभग पचास वर्ष पहले भारतीयों ने खेलना शुरू किया था। भारतीय खिलाड़ियों की हॉकी खेलने की अपनी शैली है, जो अन्तर्राष्ट्रीय खेलों में बड़ी पसन्द की जाती है। सन् 1928 में ओलिम्पिक हॉकी चैम्पियनशिप शुरू हुई। तब से प्रायः हर बार चैम्पियनशिप भारत ने ही जीती है। हॉकी के भारतीय खिलाड़ी ध्यानचन्द तो 'हॉकी के जादूगर' के नाम से मशहूर हैं।

भारतीय महिलाएं भी बड़ी अच्छी हॉकी खेलने लगी हैं। महिलाओं के हॉकी टूर्नामेंट सन् 1947 में शुरू हुए। भारतीय महिलाओं की हॉकी टीमों ने विदेशों में भी नाम कमाया है। (देखें : खिलाड़ी, भारत के प्रमुख)

हमारे हाथ में चार उंगलियां और एक अंगूठा होता है। अंगूठा हमारे लिए बड़ा उपयोगी है। यह उंगलियों की उल्टी दिशा में मुड़ सकता है और इस तरह दूसरी चीज़ों को पकड़ने में सहायता करता है। छोटी-छोटी मांसपेशियों के बहुत-से जोड़ हमारी उंगलियों और अंगूठे की गतिविधि में मदद करते हैं। इनकी वजह से हम सीने-पिरोने, लिखने तथा सितार बजाने का काम कर सकते हैं।

अपनी उंगलियों के सिरों से छूकर हम बता सकते हैं कि कोई चीज़ ठंडी है या गरम, खुरदरी है या चिकनी, सख्त है या मुलायम। उंगलियों के सिरे बहुत संवेदनशील होते हैं। उन्हें किसी चीज़ को छूते ही स्थिति का पता लग जाता है। नाखून इन सिरों की रक्षा में बड़े सहायक होते हैं और इनकी उपयोगिता को बढ़ा देते हैं।



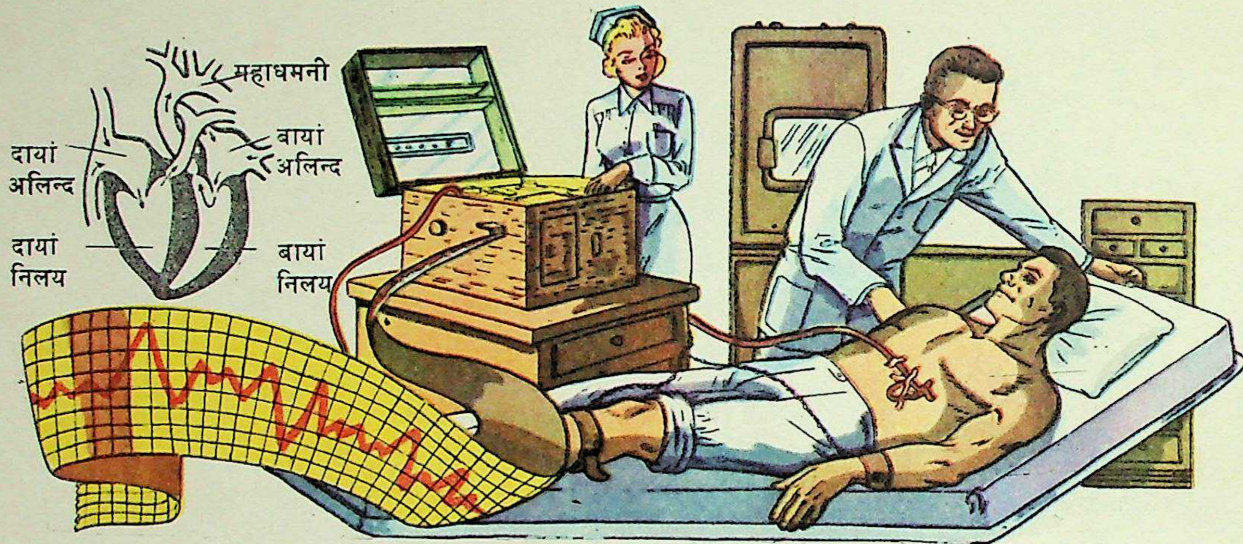
अंगूठे की वजह से हम चीज़ों को अच्छी तरह पकड़ पाते हैं।

हाथ (HAND) : एक समय था जब मनुष्य गुफाओं में रहता था। उस समय यह आशा नहीं थी कि मनुष्य बच सकेगा। यह आशंका बनी रहती थी कि मनुष्य के शत्रु सारी मनुष्य-जाति को खत्म कर देंगे। वह गुफाओं में रहनेवाले भालुओं से शारीरिक बल में कम था। लेकिन वह अपने सारे जंगली दुश्मनों से बच गया। आज वह संसार का स्वामी है।

यह कैसे हुआ? दो कारणों से। एक तो मनुष्य का मस्तिष्क औरों से अच्छा था, दूसरे मनुष्य के हाथ भी अन्य जीवों की तुलना में अच्छे थे। अपने मस्तिष्क की सूझ-बूझ के कारण मनुष्य ने शत्रु से अपनी रक्षा के लिए अस्त्र-शस्त्रों का आविष्कार किया। घर बनाने के लिए औज़ार तथा फसल उगाने के लिए मशीनें बनाईं। अपने हाथों के कारण मनुष्य शस्त्रों, औज़ारों और मशीनों को काम में ला सका।

हृदय (HEART) : मानव का हृदय उसकी मुट्ठी के आकार के बराबर होता है। उसकी शक्ल भी मुट्ठी की ही भांति होती है। मनुष्य के हृदय का वज़न आधे किलोग्राम से कुछ कम होता है। हमारे शरीर में प्रत्येक क्षण रक्त-संचार होता रहना चाहिए। रक्त ही शरीर के प्रत्येक भाग को उसकी ज़रूरत के अनुसार खाद्य और ऑक्सीजन पहुंचाता है। साथ ही वह शरीर के हर भाग का मल भी हटाता रहता है। रक्त तीन प्रकार की रक्तवाहिकाओं से होकर प्रवाहित होता है। ये हैं : धमनियां (Arteries), शिराएं (Veins) और केशिकाएं (Capillaries)। हृदय का काम रक्त के संचार को बनाए रखना है।

हृदय का आधा भाग रक्त को फेफड़ों से बाहर लाने और अन्दर ले जाने में लगा रहता है। दूसरा आधा भाग रक्त को सारे शरीर में प्रवाहित करने में जुटा रहता है।



इलेक्ट्रोकार्डियोग्राफ से पता चलता है कि किसी व्यक्ति का हृदय किस तरह काम कर रहा है।

हृदय के हर आधे भाग में दो कक्ष होते हैं। इनमें से एक को अलिन्द (Auricle) और दूसरे को निलय (Ventricle) कहते हैं। हृदय की बाईं ओर जो अलिन्द होता है उसमें फेफड़ों से निकला ताज़ा रक्त जमा होता है। बायां अलिन्द उस रक्त को बांएं निलय में भेजता है। बायां निलय रक्त को एक बड़ी धमनी में भेज देता है। इस महा धमनी की शाखाएं सारे शरीर में फैली होती हैं। धमनियों से रक्त छोटी-छोटी केशिकाओं में पहुंचता है। केशिकाओं से रक्त शिराओं में जाता है। शिराएं रक्त को दाईं तरफ के अलिन्द में ले जाती हैं। दाएं अलिन्द से रक्त फिर दाएं निलय में जाता है। दायां निलय धमनियों से रक्त को फेफड़ों में भेजता है। वहां यह फेफड़े की केशिकाओं में से गुज़रता है। इसके बाद शिराओं में होता हुआ फिर हृदय में वापस आ जाता है। यहां से यही क्रम फिर आरम्भ होता है।

हृदय में कपाट (Valves) होते हैं। ये कपाट रक्त को गलत स्थान पर जाने से रोकते हैं। हृदय की दीवारें पेशियों की होती हैं। हृदय की पेशियों को कभी विश्राम नहीं मिलता। पम्प को निरन्तर काम करते रहना पड़ता है। हर बार जब भी हृदय की पेशियां संकुचित होती हैं और रक्त को निचोड़कर धमनियों में प्रवाहित होने के लिए भेजती हैं, तब हम कहते हैं कि यह हृदय की धड़कन है। हर धड़कन पर रक्त के प्रवाह को हम नाड़ी में भी अनुभव करते हैं। रक्त के प्रवाह के इस क्रम को गिनने से नाड़ी की गति का ज्ञान होता है।

किन चीज़ों का हमारे हृदय की धड़कन पर असर पड़ता है? मुख्य चीज़ कार्बन डाइऑक्साइड की हमारे रक्त में कमी या अधिकता है, जो धड़कन को तेज़ या कम करती है। जैसे, दौड़ने में हम अपनी पेशियों पर ज़ोर डालते हैं। इस ज़ोर के पड़ने से कार्बन डाइऑक्साइड बनती है। इस तत्त्व को पेशियां रक्त में छोड देती हैं जो साफ होने के लिए फेफड़ों में पहुंचाया जाता है। हृदय के कपाटों के बार-बार खुलने और बन्द होने से धड़कनों की गति बढ़ जाती है। यदि हम बीमार हैं और बुख़ार है तो हृदय की धड़कनों की संख्या बढ़ जाती है। अगर हम क्रोध में आ जाएं या किसी वजह से डर जाएं तो भी हृदय की धड़कन बढ़ जाएगी।

मनुष्य ही नहीं, अन्य जीवों के भी हृदय होता है। लेकिन स्तनपायी जीवों और चिड़ियों को छोड़कर अन्य किसीके ऐसा हृदय नहीं होता जिसमें मनुष्य के हृदय की तरह चार कक्ष हों। (देखें : रक्त)

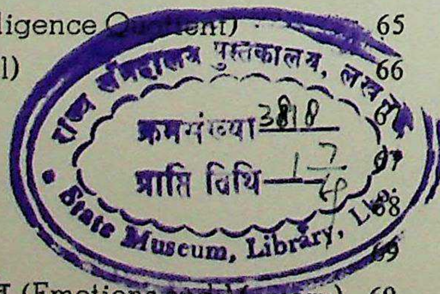
हैज़ा (CHOLERA) : गरम देशों में हैज़े का प्रकोप अधिक होता है। भारत में हर साल हज़ारों व्यक्ति इस बीमारी से मरते हैं। हैज़ा एक बहुत ही घातक रोग है और एक से दूसरे व्यक्ति को लग जाता है। कभी-कभी तो यह महामारी का रूप धारण कर लेता है।

हैज़े के कीटाणु कॉमा (,) की शक्ल के होते हैं। यह रोग प्रायः गर्मियों में अचानक शुरू हो जाता है। इसमें दस्त और कै होने लगते हैं, साथ ही शरीर और हाथ-पैर ऐंठने लगते हैं। आंखें भीतर धंस जाती हैं, ओठ नीले पड़ जाते हैं, शरीर से चिपचिपा और ठंडा पसीना छूटता है, आवाज़ बैठ जाती है, और पेशाब बंद या बहुत ही कम हो जाता है। प्यास से जीभ ऐंठने लगती है और रोगी मरणासन्न स्थिति में पहुंच जाता है।

हैज़े के कीटाणु रोगी की कै और दस्त दोनों में रहते हैं। रोगी के मल-मूत्र से सने कपड़ों या बर्तनों का धोवन जब पीने के पानी में मिल जाता है तो उस पानी के पीने से दूसरे लोगों को भी यह रोग हो जाता है। इसीलिए हैज़े के रोगी के कपड़े, बिछौने, बर्तन दूर रखने चाहिए और उसकी तीमारदारी करनेवाले को खूब सावधानी बरतनी चाहिए।

अनुक्रमणिका

पारिभाषिक शब्द



△ △ △





सचित्र विश्वकोश

3 मनुष्य * स्वास्थ्य * खेलकूद



